यूरोप की कहानियां



श्रीगोपाल नेवाटिया

सूची

जर्मनी

स्पेन

बेल्जियम

डेनमार्क

शुद्धिपत्र

प्रूफ रीडर की भूल से पृष्ठ २२६ पर जर्मनी के स्थान पर इटली छप गया है। कृपया सुधार लीजिये।

भूमिका

मन में किसी भाव का उदय होता है, मनुष्य उसे किसी न किसी रूप में प्रकट करता है—वाणी-द्वारा अथवा आकृति-द्वारा। आकर्षण के लिए वह अपने भाव-प्रकाश में सौन्दर्य और रोचकता का समावेश करता है। अपने मनोगत भावों से लोगों को रिझा लेने के लिए वह कर्ण-मधुर शब्दों की योजना करता है, कविता करता है, भाषा को अनेक आभूषण पहनाता है और उससे भी अधिक प्रयास करता है एक ऐसी बात खोज लाने का, जिसके सहारे वह अपने श्रोताओं को प्रभावान्वित कर सके। वही प्रवृत्ति कहानी को जन्म देती है। अतीत इतिहास के पात्रों को लेकर अथवा अपने कल्पना-बल से नवीन पात्रों की सृष्टि करके, वह उनका ऐसा चित्रण करता है, उनके जीवन को ऐसे घटना-क्रमों से आबद्ध करता है, जिनसे उसे मन-वाञ्छित फल मिले—जन-समाज के हृदयों तक उसकी बात सरलता से पहुँच सके। भाव-प्रकाश का यह रूप अति प्राचीन है। मनोभाव प्रकट करने का प्रारंभिक साहित्यिक स्वरूप गीत माना जाता है और उसमें भी तो कथा-भाग का प्राधान्य होता है। पद्य में हो, अथवा गद्य में, कहानी कहने की प्रवृत्ति का जन्म उसी समय हो गया था, जब मनुष्य ने होश सँभाला था।

"एक था राजा और एक थी रानी। दोनों बड़े सुखी थे। दुःख था तो केवल इस बात का, कि उनके कोई संतान नहीं थी।" एक चार वर्ष के बालक को कहानी सुना दीजिए, वह 'हूँ' करके कौतूहल से पूछेगा—

'आगे ?' । यौवन के मृदुल उल्लास में निमग्न किसी युवक अथवा युवती को सुना दीजिए—"फूल की पँखुड़ियों के समान कोमल और चाँद के समान मनमोहिनी नयना सुन्दरी जब अपने प्रेमी की प्रतीक्षा में—" श्रोता के दिल में एक गुद-गुदी होने लगेगी, उस अज्ञात प्रेमी-द्वय की प्रेम-क्रीड़ाका वह सुख-दुःखानुभव करने लगेगा। जीवन की संध्या में समय बिताते हुए किसी निर्धन वृद्ध जन को सुना दीजिए—"ऊपर आसमान रो रहा था, नीचे उसका टूटा छप्पर और उसमें वे तीन प्राणी। न तन ढकने को वस्त्र और न पेट भरने को अन्न। बिलखते हुए बच्चे माँ की निरीह गोद में पड़े थे। उनके लिए सर्वत्र अंधकार था। माँ सोचती थी—हाय, वे कब आयेंगे और कुछ नहीं, बस, दो मुट्ठी चने लेकर!" श्रोता की आँखें छल-छला आयेंगी। ग़रीबी पर एक लम्बा-चौड़ा लेक्चर' भी ऐसा प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकता। यही है कथा-कहानी का महत्व!

कहानी कहने की पुरानी और वर्त्तमान रीति में बहुत अन्तर पड़ गया है। मानव-जीवन भी तो परिवर्त्तित होता जाता है। कहानी-लेखक श्री धूमकेतु के शब्दों में कालिदास-द्वारा उज्जयिनी के रसिक नर-नारियों के वर्णित विनोद-प्रांगण के एकांत में खटोले पर बैठकर चंदन सरीखी ठंडी चाँदनी में एकत्रित सारे कुटुम्ब का 'एक था राजा', से आरंभ होने वाला वार्त्ता-विनोद अब अरुचिकर सिद्ध हो गया है। किन्तु यह आवश्यक है वह प्राचीन विनोद आज नवीन रूप में प्रकट हो। संभवतः अपने ही जीवन का, जगत का, मन का हूबहू चित्र देखने के लिए यह इच्छा हुई हो; अथवा तो किसी आदर्श, किसी कल्पना में से प्रोत्साहन, प्रेरणा और

प्राण प्राप्त करने की वृत्ति जागी हो। चाहे जो हो; मनुष्य जीवन के मर्म समझने के लिए, आराम के लिए, आनन्द के लिए, प्रोत्साहन के लिए, आदर्श के लिए-- अथवा तो घड़ी दो घड़ी जीवन की चिन्ताओं को भूलने के लिए ही—कथा-वार्त्ताओं की ओर आकर्षित हुआ हो। चाहे जिस हेतु से वह उसकी ओर आकर्षित हुआ हो, कहानी में आज वह शक्ति समन्वित है, जिससे वह मनुष्य में नवजीवन जाग्रत कर सकती है।

जनक की ब्रह्मसभा में शास्त्रार्थ करती गार्गी से लेकर बेबीलोन के धर्म-मन्दिर के पास बैठी हतभागी स्त्रियों तक और रति-विलाप से लेकर वर्त्तमान जीवन-विग्रह में रक्त के आँसू बहाते मजदूर तक कहानी के विशाल प्रदेश में आते हैं। जीवन में जहाँ रस, सौन्दर्य और सच्चा प्रेम दिखाई दे, जीवन में जहाँ अज्ञान, दुःख और कलह दिखाई दे, जीवन में जहाँ निर्दोष आनन्द और दूषित विलास दिखाई दे, वहाँ सब स्थलों और सब समयों में कहानी के लिए विषय दिखाई देंगे।

कहानी के विस्तृत क्षेत्र के संबंध में लिखते हुए श्री हडसन ने बताया है कि एक रोचक घटना अथवा परिस्थिति, एक हृदय-ग्राही दृश्य, संयुक्त घटनाओं की एक श्रेणी, पात्र का एक स्वरूप, अनुभव की एक बात, जीवन का एक चित्र, सदाचार-संबंधी एक पहेली—इनमें से कोई एक बात और दूसरे अनेक विषय एक सफल कहानी के बीज का काम दे सकते हैं। वास्तव में कहानी मानव-जीवन के घात-प्रतिघात, हर्ष-विषाद की, समय व स्थान विशेष में घटी हुई किसी घटना का अथवा किसी व्यक्ति विशेष का एक चित्र ही तो है; अथवा यही कहिए कि कहानी जीवन का चित्र नहीं, पर स्वयं जीवन ही है। वह चित्र कहिए अथवा जीवन, इतना स्वाभाविक होना

चाहिए कि उसमें चित्रित घटना आप-बीती-सी और उसमें चित्रित पात्र का हर्ष-विषाद अपना-सा मालूम दे। कहानी का सौन्दर्याधार यही है।

साहित्य व कला के किसी अंग को देख लीजिए, उसके निर्माण व उत्थान में स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आकर्षण का बहुत बड़ा हिस्सा स्पष्ट दिखाई देगा। कहानी भी उससे वञ्चित ही नहीं है, पर अबतक का कथा-साहित्य तो—पूर्वीय और पाश्चात्य दोनों—स्त्री-पुरुष के उस पारस्परिक आकर्षण और मानव-जीवन के मनोराग से परिपूर्ण है। यही कहानी का विशेष विषय रहा है। पर, वह उसी परिधि में कैद नहीं है, संभव-असंभव, सत्य-असत्य, वास्तविक-काल्पनिक किसी भी बात का कहानी में समावेश हो सकता है। हाँ, उन विषयों की हृदय-ग्राही अभिव्यक्ति करने की योग्यता होनी आवश्यक है, और यही है कहानी लेखक की कला।

साहित्य-संसार में अब हम जिसे 'कहानी' कहते हैं उसके सौन्दर्य का आदर्श और उसकी अभिव्यक्ति के नियम प्रायः निश्चित-से होगए हैं। उसी से हम कहानी के सौन्दर्य को तोलते हैं।

सौन्दर्य क्या है? मनुष्य ने अपनी बुद्धि से, रुचि से और अपने अनुभव से सौन्दर्य की बाह्य रेखायें निश्चित कर दी हैं। बड़ी-बड़ी आँखें, नोकदार नासिका, सुचिक्कण कपोल और गौरवर्ण रमणी के सौन्दर्य की निशानी हैं। उसी प्रकार प्रत्येक वस्तु के सौन्दर्य का स्वरूप निश्चित हो गया है। व्यक्ति-विशेष की रुचि के अनुसार उसमें परिवर्त्तन संभव है, किन्तु बहुत कम मात्रा में। उसकी वे मोटी बाह्य रेखायें तो निश्चित ही हैं। और, किसी वस्तु को कलामय सौंदर्य प्रदान करने के लिए तो उस निश्चत पथ का अनुसरण करना ही पड़ता है।

कहानियों को सौंदर्य प्रदान करने के लिए कलाविदों को वैसा ही करना पड़ा है। तो भी 'निरंकुशाः कवयः', यदि लेखक की कलम में कला का बल है, तो ये नियम उसके लिए बंधन-स्वरूप नहीं, उसमें तो नए नियम निर्माण करने की शक्ति होती है। और यही कारण है कि अतीत काल से कहानी कहने और सुनने की रीति में भेद होता चला आया है। हमारी अभिरुचि के अनुसार हम उस परिवर्त्तन को विकास ही कहेंगे। एक समय, था जब भारतीय व अन्य पूर्व देशीय सभ्यता पराकाष्ठा को प्राप्त हो गई थी। उस समय के साहित्यिक कलाविदों ने अपनी कहानियों का एक स्वरूप निश्चित कर दिया था। और आज ज़माना है पश्चिम का। उसी भू-भाग की कहानियों के संग्रह की यह भूमिका लिखी जा रही है। उसका प्रयोजन भी उसी से है।

विकसित होते-होते पाश्चात्य कहानियों का स्वरूप निश्चित हो गया है। विद्वानों ने उनके तत्वों का—आकार-प्रकार का पूरा विवेचन कर दिया है। युरोप की कहानियों के इस संग्रह की भूमिका में, कहानी-लेखन की कला के उन तत्वों का उल्लेख कर देना उचित होगा।

आधुनिक साहित्य में कथा-वार्त्ता के दो स्पष्ट भेद होगए हैं—उपन्यास व कहानी। दोनों ही में मानव-जीवन के विविध दृश्यों का चित्रण होता है तो भी दोनों में बहुत अन्तर है। कहानी को उपन्यास का संक्षिप्त रूप नहीं समझ लेना चाहिए। दोनों में अन्तर केवल चित्रपट के छोटे-बड़े होने ही का नहीं है। उपन्यास में अनेक घटनाओं का—अनेक पात्रों का चित्रण किया जाता है। उसमें वर्णित घटनायें विविध स्थान और समय की होती हैं। इस प्रकार उपन्यास में अपना कौशल दिखाने के लिए वार्त्ता-लेखक

843

के सामने एक विस्तृत क्षेत्र रहता है। उपन्यास का आकार भी सुविधा-नुसार बड़ा-छोटा रखा जा सकता है। किन्तु कहानी लिखने में तो एक छोटे-से क्षेत्र ही में वार्त्ता-लेखक को अपनी कला का परिचय देना पड़ता है। इसीलिए अधिकतर सफल उपन्यास लेखक की अपेक्षा सफल कहानी लेखक होना अधिक कष्ट-साध्य है।

इस ज़माने की दौड़धूप में बड़े-बड़े उपन्यास पढ़ने का धीरज लोगों में नहीं रह गया है। घड़ी आध घड़ी ही में पाठक का मनोरंजन कर दे, मानव-जीवन के किसी एक चित्रण से उसे हँसा दे अथवा रुला दे। बस, ऐसी कहानियों की पूछ बढ़ती जाती है। कहानी के उस छोटे क्षेत्र में तभी सफलता मिल सकती है जब आवश्यकता से एक भी अधिक शब्द नहीं कहा जाय। अनावश्यक वर्णन भी न हो और आवश्यक वर्णन में कोई त्रुटि भी नहीं रहे। केवल एक ही उद्देश को लेकर कहानी लिखी जाय और उसमें एक ही घटना-विशेष और व्यक्ति-विशेष का पूर्ण चित्रण किया जाय, वाक्य-विन्यास व वार्त्तालाप संक्षिप्त व सर्वथा निर्दोष हो, और सब से अधिक ध्यान इस बात का रखा जाय कि आदि से अंत तक कहानी के कथानक में पाठक की रुचि बनी रहे, और जहाँ उस कथानक की चरम सीमा आ जाय, वहीं कहानी समाप्त हो जाय। एक शब्द भी आगे और न लिखा जाय।

सर वाल्टर बीसेंट का यह कथन ध्यान देने योग्य है कि कहानी-लेखन की कला के लिए किसी बात के वर्णन की चतुराई, सत्य व शीलता, सत-र्कता, चुनाव की खूबी, भावना व बाह्य रेखाओं की स्वच्छता, नाटक की सी सजावट, अभिप्राय की स्पष्टता, अपनी कहानी की वास्तविकता के प्रति अटूट विश्वास और कौशल का सौंदर्य होना आवश्यक है।

कहानी के सौंदर्य को तीन विभागों में बाँटा जा सकता है। यथा—कथानक, चरित्र-चित्रण और शैली। जितना मूल्य कथानक का है उतना ही चरित्र-चित्रण और शैली का भी। इसीलिए दो प्रकार की कहानियाँ देखने में आती हैं—एक वे, जिनमें घटनाओं की अद्भुतता के कारण कथानक सजीव रहता है, दूसरी वे, जिनमें किसी चरित्र-विशेष का महत्वपूर्ण चित्रण किया जाता है। किन्तु सर्व-श्रेष्ठ कहानी वही है, जिसमें रोचक और अनोखे कथानक, मननीय चरित्र-चित्रण और सुन्दर शैली तीनों का समावेश हो। तीनों में से किसी एक को प्रधान स्थान नहीं दिया जा सकता। उसी प्रकार किसी एक को गौण भी नहीं कहा जा सकता। तो भी यह मानना होगा कि कथानक, चरित्र-चित्रण अथवा शैली में से किसी एक की सुन्दरता को लक्ष्य करके लिखी हुई कहानी भी आकर्षण में कम न होगी। कहानी के इन तीनों गुणों का संक्षिप्त अध्ययन कर लेना उचित होगा।

पहले यह देख लेना चाहिए कि कथानक की रचना का आधार क्या हो? कहानी लिखने के लिए एक उद्देश का होना आवश्यक है। किसी एक गुण अथवा अवगुण की अभिव्यक्ति को ध्यान में रखकर कथानक की सृष्टि करनी चाहिए। फिर उस कथानक के लिए चाहिए पात्र और उस पात्र का होना चाहिए चरित्र-चित्रण। जगत् के दैनिक जीवन में ऐसी अनेक घटनायें घटती हैं, ऐसे अनेक पात्र देखे जाते हैं, जिनकी सहायता से कहानी की रचना सरलता-पूर्वक हो सकती है। कभी कथानक मिल जाता है, तो उसके लिए पात्र खोज लाने पड़ते हैं; और यदि पात्र मिल गए तो उनके कार्य की कल्पना करनी पड़ती है। उनका वह कार्य-घटनाओं का क्रम—ऐसा हो, जो पाठक को अनायास आकृष्ट कर ले। वे घटनायें

चाहे दैनिक जीवन में घटित होनेवाली हों अथवा हों अनोखी, अलौकिक; किन्तु उन में अस्वाभाविकता लेश-मात्र भी न हो। स्वाभाविकता ही में कथानक का वास्तविक सौन्दर्य है। किसी अनहोनी घटना का भी कहानी में समावेश किया जाय तो इस तरह कि पाठक को वह उचित और स्वाभाविक मालूम दे। वर्णित घटनाओं का क्रम ऐसा हो कि पाठक स्वयं कहानी के अन्त की कल्पना करने लगे; किन्तु वही कहानी लेखक सिद्धहस्त है जो पाठक के सम्मुख उनकी कल्पना से भी परे कहानी का एक अत्यधिक कलापूर्ण अंत उपस्थित करे। पाठक उस अंत को देख कर मोहित-सा हो जाय, कहानी वहीं समाप्त हो जाय और पाठक उस आनन्द का रसास्वादन करता रह जाय।

एक सच्ची घटना है—दो मित्र थे। एक था राज्य-कर्मचारी, दूसरा नागरिक। नागरिक का विवाह हुआ। मित्र ने विवाह-कार्य में पूरा भाग लिया। विवाह के छः महीने बाद ही नागरिक को किसी कारण-वश मृत्यु-दण्ड मिला, और वह भी अपने मित्र राज्य-कर्मचारी-द्वारा।

मित्र की प्राण-रक्षा के लिए लोगों ने बहुत कुछ बीच-बचाव किया। किन्तु अधिकारी अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहा। नागरिक को फाँसी दे दी गई।

कर्त्तव्य और मैत्री के इस घोर संग्राम की अपेक्षा अधिक नाटकीय बात तो यह थी कि मृत नागरिक दान-पत्र के द्वारा अपनी सारी सम्पत्ति मृत्यु-दण्ड देनेवाले उसी मित्र अधिकारी को दे गया था!

मैत्री का उद्देश लेकर यदि ऐसे कथानक के आधार पर कहानी लिखी जाय तो वह कितनी सुन्दर होगी, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। उन दोनों मित्रों के चरित्र-चित्रण में भी सिद्धहस्त लेखक

कलम तोड़ सकता है। ऐसे कथानक के द्वारा ही चरित्र-चित्रण सजीव होता है।

कहानी लेखक को चाहिए कि वह जिस पात्र का चित्रण करे उसका हूबहू चित्र, चित्रकार की भाँति, पाठकों के सन्मुख उपस्थित कर दे—उसके मनोभावों ही का नहीं, किन्तु उसकी आकृति का भी। लेखक अपनी कल्पना से पात्र का जैसा रूप निश्चित करे, पाठकों की आँखों के आगे भी उसका ठीक वैसा ही रूप नाचने लग जाय। पात्रों के चित्रण के संबंध में श्री हडसन का यह कथन ध्यान देने योग्य है :—

"यह देख लेने की बात है कि उपन्यास-लेखक अपने पुरुष व स्त्री पात्रों को हमारी कल्पना के सम्मुख असली सिद्ध करने में सफल हुआ है, या नहीं ? वे अपने पावों पर खड़े हैं, या नहीं ? सुप्रसिद्ध लेखकों के सिरजे हुए पात्र अवश्य ही इन शर्तों को पूरी करते हैं। जीवन के वास्तविक गुण के प्रभाव से वे हमें वशीभूत कर लेते हैं; हम उनका ऐसा विश्वास करते हैं, उनके साथ ऐसी गहरी सहानुभूति प्रकट करते हैं, ऐसा हार्दिक प्यार, ऐसी घृणा उनसे करते हैं, मानो वे हमारे इसी सजीव जगत के प्राणी हैं। चरित्र-चित्रण के संबंध में हम सब से पहली जो आशा उपन्यास-लेखक से करते हैं, वह यह है, कि लेखक साधारण अनुभव ही का अनुगमन करता है अथवा वीरता-पूर्वक लकीर की फ़क़ीरी छोड़ने तथा अपनी तरंग के अनुसार कुछ कहने के प्रयोग भी करता है, उसके पुरुष व स्त्री पात्र, उसकी रचना के पृष्ठों पर जीते-जागते विचरण करेंगे और पुस्तक एक ओर रख देने तथा संभवतः उसके सूक्ष्म विवरणों की विस्मृति के बाद भी वे हमारी स्मृति में सजीव प्राणियों की भाँति बने रहेंगे।"

उपन्यास के विशाल क्षेत्र में पात्र का स्वरूप धीरे-धीरे करके पाठकों के आगे सरलता-पूर्वक उपस्थित किया जा सकता है; किन्तु कहानी के संकुचित क्षेत्र में उस सफलता का संपादन सिद्धहस्त लेखक ही का काम है। अच्छे वार्त्ता-लेखक अपनी योग्यता का परिचय ऐसी कहानियों के द्वारा ही देते हैं। यही कारण है कि जिन्हें हम कलापूर्ण कहानियाँ मानते हैं वे कथानक-प्रधान की अपेक्षा चरित्र-चित्रण-प्रधान होती हैं। केवल मन-बहलाव और समय बिताने के लिहाज़ से लिखी-पढ़ी जानेवाली कहानियों और इन कहानियों में यही महत्व-पूर्ण अन्तर होता है। इन कहानियों में पाठक को स्तम्भित कर देने के लिए चरित्र-चित्रण की क़ुर्बानी करके एक चटपटे कथानक मात्र ही पर ध्यान दिया जाता है, इसीलिए साहित्यिक क्षेत्र में उनका बहुत कम मूल्य है। पढ़ते समय तो कहानी के घटना-चक्र से काफ़ी लुत्फ़ उठाया जा सकता है, पर वह होता है हलका और क्षणिक ही; दूसरी ओर एक सुन्दर से चरित्र-चित्रण का आनन्द अक्षय और गंभीर होता है।

चरित्र-चित्रण की चाहे जितनी महत्ता हो, जिस प्रकार कथानक की रोचकता के लिए चरित्र-चित्रण की क़ुर्बानी क्षम्य नहीं, उसी प्रकार चरित्र-चित्रण के लिए कथानक की परवा न करना भी उचित नहीं। दोनों एक साथ अपने सुन्दर स्वरूप में प्रकट होने पर सोने में सुगंध का काम देते हैं।

कथानक-प्रधान हो अथवा चरित्र-चित्रण-प्रधान, कहानी की शैली ख़राब हुई तो सारा मज़ा किरकिरा हो जाता है। इसीलिए शैली की ख़ूबी कहानी के सौन्दर्य को बढ़ाने में बहुत काम देती है। कहानी लिखने

को कई शैलियाँ प्रचलित हैं—यथा, पात्र के अपने मुख से, किसी तीसरे व्यक्ति के मुख से, पत्रों से, कथोपकथन से। पहली शैली में लेखक अलग खड़ा रहता है, पात्र स्वयं अपना परिचय देता है, अपने कृत्यों के द्वारा अपना चित्र उपस्थित करता है। और दूसरे प्रकार में लेखक अधिक स्वतंत्र रहता है, वह स्वयं बीच-बीच में आता है, पात्रों पर अपने 'रिमार्क पास' करता है, उनकी प्रशंसा करता है, बुराई करता है, और जैसा चाहता है उनके प्रति अनुराग-विराग उत्पन्न करता है। पत्रों के द्वारा कहानी कहना भी बहुत रोचक होता है। हाँ, केवल कथोपकथन के द्वारा कहानी कहना तो नाटक का एक दृश्य ही उपस्थित करना-सा है। किन्तु, कुशल लेखक तो उस में भी कमाल दिखा सकता है।

कहानी के शरीर को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—आरंभ, मध्य और अंत। किसी सदाचरण अथवा सद्व्यवहार की दुहाई देकर कहानी आरंभ करने की प्रणाली अब अरुचिकर सिद्ध हो गई है। जिस स्थान विशेष की घटना कहानी में हो, उसके दृश्य से, पात्र के परिचय से, घटना के सीधे उल्लेख से, कथोपकथन से कहानी का आरंभ करना अधिक रोचक सिद्ध हुआ है। आरंभ और मध्य के प्रत्येक वाक्य अन्तिम लक्ष्य को ध्यान में रखकर लिखे जाने चाहिए। वही रचना सफल हो सकती है, जिसका प्रत्येक वाक्य कहानी के अंत की पुष्टि करे—उसके प्रवाह को उस ओर ले जाने में सहायक हो। क्योंकि, कहानी का अंत ही उसका सब कुछ है। कहानी का प्रवाह उसी चरम-सीमा की ओर हो, जहाँ जाकर कहानी की समाप्ति अनिवार्यतः होने को है। यही चरम-सीमा कहानी-लेखक के लिए ध्यान देने की बात है। जैसा पहिले लिखा जा चुका है, जहाँ

यह चरम-सीमा आ पहुँचे, वहाँ कहानी समाप्त हो जाय, और आगे लिख-कर कहानी के सौन्दर्य को नष्ट न होने दिया जाय।

कहानी का अंत ऐसा होना चाहिए, जिसकी पाठक ने कल्पना भी न की हो। उस अंत को देखकर वह झूमता रह जाय। उदाहरण के लिए मोपासाँ की 'चन्द्रहार' कहानी को लीजिए, जो इस संग्रह में संग्रहीत है—(पृष्ठ १२८)। नृत्य-समारोह में सम्मिलित होने के लिए पति अपनी पत्नी को एक पोशाक तो बनवा देता है, किन्तु धनहीनता के कारण आभूषण पत्नी को अपनी सहेली के यहाँ से माँगकर लाना पड़ता है। दैव-वशात् नृत्य के बाद वह चन्द्रहार खो जाता है। पति-पत्नी एक नया हार ख़रीदकर लौटाते हैं, और उसकी क़ीमत का क़र्ज़ चोटी का पसीना एँड़ी तक बहाकर चुकाते हैं। उनका जीवन ही बदल जाता है। फिर वर्षों बाद दोनों सहेलियों की सहसा मुलाक़ात होती है। बात-चीत में सहेली कहती है :—

"तुमने क्या कहा? मेरे हार के बदले में तुमने हीरे का हार ख़रीद कर दिया था?"

"हाँ। अच्छा, तुम्हें मालूम नहीं हुआ? दोनों थे भी बिलकुल एक-से।"

गर्व और निश्छलता-पूर्ण हर्ष से वह मुस्कुराने लगी।

श्रीमती फोरेस्टियर ने भावावेश में उसे भुजाओं में भर लिया।

"ओह, मेरी सखी मथिल्दे! मेरा हार तो झूठे हीरों का था। वह ज़्यादा से ज़्यादा पाँच सौ फ़्राँक का रहा होगा।"

एक इस अंतिम वाक्य से कहानी का सारा मज़ा और का और ही हो जाता है। एक रहस्य का उद्घाटन यहाँ आकर होता है जिसकी पाठक कल्पना भी नहीं करता है, और यहीं कहानी समाप्त हो जाती है !

इस प्रकार कथानक, चरित्र-चित्रण और शैली के सौन्दर्य से सुसज्जित कहानी ऐसी हो, जिसको देखते ही उसमें निहित विषय की बाह्यरेखायें स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लग जायँ। कहानी में कोई भी बात न कम हो, न ज़्यादा—जिस अभिप्राय से वह लिखी गई है, उससे परिपूर्ण हो, तो भी उसमें 'अति' की लेश-मात्र भी गंध न हो। कहानी के सौन्दर्य की इसे कसौटी ही समझना चाहिए कि वह अपने छोटे-से स्वरूप में स्वयं पूर्ण हो, उसमें केवल एक ही उद्देश हो और उसका एक ही प्रभाव पाठक पर पड़े। एक—केवल एक—लक्ष्य को सामने रखकर लेखक अपने पाठकों को कहानी के संकुचित, किन्तु सुहावने मार्ग पर ले चले और उस लक्ष्य पर पहुँचकर वहाँ के सौन्दर्य से पाठकों को आनन्द-विभोर कर दे।

❀ ❀ ❀

कहानी के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा जा चुका। इस तोल का मूल्य समझकर, जब कहानी-संसार में प्रवेश किया जायगा तो मालूम होगा कि १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में युरोप में कहानियों के एक नवयुग का निर्माण और विकास हुआ है। उस काल के प्रायः सभी लेखकों ने न्यूनाधिक कहानियाँ लिखी हैं और अपनी बेजोड़ कहानियों के द्वारा साहित्य-जगत् में अमर होने वाले अधिकांश कहानी-लेखक भी इसी काल में हुए हैं।

इससे पहले कि युरोप के विभिन्न देशों के कथा-साहित्य व लेखकों का परिचय दिया जाय, यह उचित होगा कि उस मत-भेद का उल्लेख कर दिया जाय, जो युरोप में कहानियों के विषय में रहा है।

चरित्र-चित्रण के लिए यह आवश्यक नहीं कि किसी गुणवान् सच्चरित्र और भले पात्र ही का चित्रण किया जाय। एक महानीच, दुष्कर्मी का चरित्र-चित्रण भी उतना ही सफल हो सकता है जितना कि एक महापुरुष का। मानव-जीवन के उज्ज्वल अंश का, चाहे कालिमामय अंश का— दोनों का चित्रण करने का अधिकार कहानी-लेखक को है, बशर्त्ते कि वह चित्रण कला-पूर्ण हो। एक भावना होती है विलक्षण काल्पनिक बातों को प्रस्तुत करने की, दूसरी होती है वास्तविक बातों को ठीक उसी रूप में प्रकट करने की। प्राचीन लेखक पहली भावना से प्रेरित होकर ही लिखा करते थे, किन्तु १९वीं शताब्दी में युरोप के कथा साहित्य का जो विकास हुआ है उसकी प्रवृत्ति दूसरी भावना की ओर ही रही है। इन दो विरोधी भावनाओं ने वहाँ के साहित्य में एक क्रान्ति-सी मचा दी। प्राचीन 'रोमांटिक' लेखक नवीन 'रियलिज़्म'—अर्थात् सत्यानुकरण अथवा प्रकृत्यनुकरण के आगे हत-प्रभ-से हो गये। नवीन सिद्धान्त को लेकर उपस्थित होने वाले लेखकों का मत था कि उनकी रचनायें किसी दूसरे जगत की न हों, पर इसी पाप-पुण्यमय मृत्युलोक की हों। कहानियों में चित्रित करने के लिए अलौकिक पात्रों अथवा घटनाओं की आवश्यकता नहीं; आवश्यकता है ऐसे पात्रों की, जो प्रायः प्रतिदिन देखने में आते हैं और ऐसी घटनाओं की, जो सदैव घटती रहती हैं। संसार वासनाओं से परिपूर्ण है, उनका अद्भुत ताण्डव-नृत्य यत्र-तत्र देखने को

मिलता है। संसार के जीव उन वासनाओं में डूबे हुए हैं। उन्हीं का तदनुरूप कला-पूर्ण चित्रण क्यों न किया जाय? इसी भावना ने युरोप में "रियलिज़्म' को जन्म दिया और आज एक शताब्दी से उसी का बोलबाला है। इस प्रवृत्ति के कारण लेखकों ने ऐसे नग्न सत्य उपस्थित किये कि उन रचनाओं को देखकर लोग सहसा अवाक् रह गये। किन्तु उनकी वे रचनायें कला-पूर्ण थीं; उनके प्रसार को कौन रोक सकता था? सुन्दर वस्तु की सर्वत्र पूछ होती है। उन 'रियलिस्टिक' लेखकों की क़लमों में प्रतिभा थी। उन्होंने कला-पूर्ण सत्य जनता के सम्मुख उपस्थित किया। लोग उसे देखकर मोहित हो गये। अर्वाचीन युरोपीय कथा-साहित्य में इसी मत का प्राधान्य रहा है। तो भी 'रोमांटिज़्म' का बहिष्कार नहीं हुआ, हो भी नहीं सकता। 'रियलिज़्म' के इस ज़माने में भी ऐसी 'रोमांटिक' कहानियाँ लिखी और पढ़ी गईं, जो 'रियलिस्टिक' कहानियों से टक्कर लेने में समर्थ सिद्ध हुईं।

'रियलिज़्म' है जैसे को तैसा उपस्थित करना। उसके हिमायतियों का कहना है कि एक सुलेखक किसी दृश्य का विकृत चित्र उपस्थित नहीं करेगा, उसका जैसा का तैसा चित्र खींच देगा। दूसरी ओर 'रियलिज़्म' पर उतनी आस्था न रखने वाले ऐसा करने में 'हूबहू फोटोग्राफी' की बू पाते हैं। लेखक की कल्पना शक्ति के हाथ-पाँव बाँध देने को वे अनुचित समझते हैं। सत्यानुकरणवादी यदि किसी समीप के लुभावने चित्र से पाठकों को मोहित करता है, तो 'रोमांटिक' लेखक किसी अज्ञात के विलक्षण चित्र के द्वारा भी तो अपने पाठकों को मोहित करने का अधिकार रखता है।

कहानी में भी सत्य, सदाचार और शालीनता का ख़याल रखना पड़ता है। सत्य के लिए न सदाचार और शालीनता को तिलांजलि दी जा सकती है और न सदाचार की दुहाई देकर सत्य को अप्रकट रक्खा जा सकता है। इस बात को ध्यान में रखकर एक निष्पक्ष पाठक 'रोमांटिक' और 'रियलिस्टिक' दोनों प्रकार की कहानियों का आनन्द लूट सकेगा। इस संग्रह में दोनों प्रकार की कहानियाँ मिलेंगी।

युरोप की सभ्यता के प्राचीन केन्द्र यूनान और रोम रहे हैं, इसलिए वहीं से युरोपीय साहित्य—और तदनुसार कहानियों—का आरम्भ १३वीं शताब्दी में हुआ था। किन्तु, जिन कहानियों के लिए युरोप के विभिन्न देशों ने साहित्य-जगत् में नाम कमाया है, वे तो १९वीं शताब्दी में पराकाष्ठा पर पहुँची थीं। उसी काल की कहानियाँ इस संग्रह में संग्रहीत हैं, इन थोड़े से पृष्ठों में १३वीं शताब्दी से लेकर अब तक की नमूने की भी कहानियों का आ जाना सम्भव नहीं था। जिस काल की कहानियाँ यहाँ संग्रहीत हैं, उसे युरोप की कहानियों का स्वर्ण-युग कहा जा सकता है, उसी का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जायगा।

रूस को ही पहिले लीजिए ऐसे बहुत कम देश हैं जो रूस के प्रथम श्रेणी के कहानी लेखकों से टक्कर ले सकें। रूसी लेखक कहानी साहित्य को अपनाकर उसे उच्च कोटि पर पहुँचाने में सफल-प्रयत्न हुए हैं। रूस के प्रसिद्ध लेखकों में प्रायः सभी उपन्यास अथवा कहानी-लेखक हो गये हैं। यों तो रूस का साहित्य सदियों पुराना है, किन्तु १९वीं शताब्दी में ही वह पनपा है। युरोप के अन्य देशों की भाँति रूसी लेखकों में भी 'रोमांटिज़्म' और 'रियलिज़्म' की अलग-अलग छाप पाई जाती है। आरम्भ के

लेखक 'रोमांटिक'—भावना प्रधान—कहानियाँ लिखा करते थे, पुश्किन उनमें अग्रगण्य था। रियलिस्टिक कहानियों का नवयुग गोगोल से आरम्भ होता है। उसी के निर्दिष्ट पथ का अनुकरण बाद के लेखकों ने किया है।

रूस की राजनैतिक परिस्थिति का प्रभाव उसके साहित्य के प्रत्येक अंग पर पड़ा है। यहाँ तक कि तुर्गनीव और चेखव सरीखे प्रतिभा-शाली साहित्यिक कलाविद् भी ऐसी कहानियाँ न लिख सके, न लिखना चाहते थे, जो केवल पाठकों का मनोरंजन कर दें अथवा जीवन के एक पहलू का रहस्योद्घाटन कर दें। उन्होंने जो कुछ लिखा, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से, गिरी हुई हालत को सुधारने के लिए, पद-दलितों के प्रति दया भाव जाग्रत करने के लिए, ईश्वर के मार्ग और जीवन के अर्थ को जानने के लिए! वे कहानी-लेखक अपने समय की दुरवस्थाओं को सुधारने में तल्लीन थे तो भी वे थे कलाकार, किसी दूसरे उद्देश की सिद्धि के लिए कला का त्याग उनके लिए संभव नहीं था। टॉलस्टॉय सरीखा उपदेशक भी अपनी रचनाओं में यह नहीं भूल सका कि वह है एक कलाकार। विशेषता यह कि उनकी यह कला कला के लिए ही नहीं थी, उससे तो उन्होंने रूस के सामाजिक-जीवन के सुधार का बहुत बड़ा काम लिया था।

रोमांटिक और रियलिस्टिक लेखकों के बाद अब इस ज़माने में रूस में बारी आई है 'सिम्बोलिक'—संकेतात्मक—लेखकों की। ऐसा मालूम देता है उनकी रचनायें पहिले के लेखकों से बढ़ जावेंगी। इस संग्रह में उन लेखकों की कहानियाँ सम्मिलित नहीं हैं।

फ्रांस की कहानियों का स्थान कहानी-जगत् में बहुत ऊँचा है। फ्रेंच

भाषा में ही एक ऐसा अज्ञात गुण है जिसके कारण कहानी के रूप में भावों की अभिव्यक्ति बहुत ही उत्तमता से होती है। सौभाग्य से फ्रांस में ऐसे कहानी लेखक पैदा हुए हैं जो अपनी लेखनी के बल पर अपना नाम अजर-अमर कर गए हैं। उन्होंने नवीन भाव, नवीन सिद्धांत, उपस्थित किए, कहानी जगत् में एक क्रांति मचा दी। सन् १८३० से १८७० तक फ्रांस के पद्य और गद्य साहित्य में रोमांटिज़्म की छाप विद्यमान है। किन्तु इसी बीच में रियलिस्टिक रचनाओं के हिमायती साहित्यिक क्षेत्र में आगए थे, उनमें पहला गोतिये था। उसे रोमांटिज़्म और रियलिज़्म में संमिश्रण का लेखक मानना ठीक होगा। उसके बाद तो फ़्लोबर्त्त, जोला, दोदे, अनातोले, मोपासाँ आदि साहित्यिक क्षेत्र में आए, जिन्होंने अपनी रचनाओं से जन-समाज को स्तम्भित कर दिया। प्रकृत्यनुकरण-वाद के पक्षपाती होने से इन लेखकों ने कैसी बातें उपस्थित की थीं उसका आभास इसी बात से हो जायगा कि जोला चाहता था कि पुरुष स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट है और एक स्त्री को विषय-वासना की लालसा है, तो उनमें विशुद्ध पशुत्व ढूँढ़ा जाय।

'सुधा' में प्रकाशित एक लेख में मोपासाँ का एक वाक्य उद्धृत है, जिससे मालूम हो जायगा कि इस नवीन विचार-धारा को प्रवाहित करने में उन लेखकों का क्या अभिप्राय था। मोपासाँ ने 'पियर-ए-जाँ' में लिखा है—"पाठक कई तरह के हैं, और उनकी माँगें भी नाना प्रकार की हैं। किन्तु थोड़े ही पाठक ऐसे हैं, जो कला-विधाता लेखक से कहते हैं—मुझे कोई सुन्दर चीज़ बनाकर दो; उसका रूप तुम अपनी रुचि तथा स्वभाव के अनुसार गढ़ो। कला-निर्माता वह सुन्दर प्रतिमा गढ़ने की चेष्टा करता है, कभी सफल होता है, कभी असफल। उस साहित्यिक मार्ग के बाद,

जिसने हमें विकृत, अलौकिक, काव्यमय, करुणापूर्ण, मनोहर और अत्यंत सुन्दर स्वरूप देने की चेष्टा की अब नया मार्ग निकला है, जिसे सत्यानुकरणवाद या प्रकृत्यनुकरणवाद कहा जाता है। इसका दावा है कि यह हमें सत्य के दर्शन कराता है। यह सत्य है; विशुद्ध सत्य, संपूर्ण सत्य।"

सन् १८५६ में फ़्लोबर्त्त की एक रचना प्रकाशित हुई, जिसमें रोमांटिज़्म और रियलिज़्म का अद्भुत हृदय-ग्राही संमिश्रण था, वह रचना फ्रेंच साहित्य की एक अनमोल वस्तु है। सन् १८७१ में जोला की रचना ने रियलिज़्म को जन्म दिया और सन् १८८० में मोपासाँ की 'प्यास का प्याला' कहानी प्रकाशित हुई, जो बक़ौल फ़्लोबर्त्त के औरों को कुचल डालने में समर्थ थी। विस्तारभय से अधिक न लिखकर इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि ये फ्रेंच कहानी लेखक अद्वितीय कलाकार थे।

ग्रेट ब्रिटेन में रूस और फ्रांस की भाँति कहानियों का उतना और वैसा विकास नहीं हुआ। वहाँ कथा-कहानियों का आरंभ इटली की कहानियों के अनुवाद ही से हुआ था, फ्रेंच-कहानियों के अनुवादों का भी बहुत समय तक प्रचार बना रहा। १७वीं शताब्दी के मध्य तक इन्हीं अनुवादों का दौरदौरा था। दर असल, अँग्रेज़ी साहित्य के एलिज़ाबेदियन काल में उपन्यास और कहानियों की अभिवृद्धि हुई ही नहीं। उसके बाद विदेशी लेखकों की स्पर्द्धा में अँग्रेज़ी लेखकों ने क़लम उठाई, जिसके फल स्वरूप अँग्रेज़ी में अच्छी मौलिक रचनायें उपस्थित हुईं।

१८ वीं शताब्दी में अँग्रेज़ी गद्य की अत्यधिक उन्नति हुई तो भी कहानियों की ओर लेखकों का रुख़ बहुत हो कम रहा। इस काल में हाक्सवर्थ और गोल्डस्मिथ ने सदाचार संबंधी लेखों के तौर पर कहानियाँ

लिखीं। उपन्यास उपदेशक का काम करने लगे, जिसके कारण घटनाक्रम और चरित्र-चित्रण का वह विस्तार कहानियों की छोटी परिधि में नहीं आ सका। १६ वीं शताब्दी के मध्य में ही कहानियाँ अपने स्वरूप में प्रकट हो पायीं। उस शताब्दी का उत्तरार्द्ध तो एक ग्रेट ब्रिटेन में ही क्या समग्र युरोप में कहानियों की उन्नति का युग रहा है। रूस और फ्रांस की भाँति ग्रेट ब्रिटेन के प्रायः सभी उपन्यास-लेखक छोटी कहानियाँ लिखने में सिद्धहस्त नहीं हुए हैं। ग्रेट ब्रिटेन के कहानी लेखकों में किंग्सली, मेरेडिथ, हार्डी, स्टीवेंसन के नाम उल्लेखनीय हैं, और वर्त्तमान लेखकों में एच्० जी० वेल्स, गॉल्सवर्दी और अरनॉल्ड बेनेट के।

इटली में रोम की परम्परा सदैव बनी रही है। उसकी कला प्रियता की स्पष्ट छाप उसके साहित्य में वर्त्तमान है। आधुनिक कथा कहानियों का आरंभ ही १३ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इटली से हुआ था। एक सौ प्राचीन कहानियों के तत्कालीन संग्रह में विभिन्न कलाओं का चित्रण पाया जाता है। इसी संग्रह से इटली में नोवेला—अर्थात् छोटी कहानी—के विकास का आरंभ हुआ। जनता की अभिरुचि के अनुकूल 'नोवेला' साहित्य का ऐसा अंग बन गया कि उसका तीन सौ वर्ष तक विकास होता चला गया। इटली के आरंभिक गद्य-लेखकों में सर्व श्रेष्ठ बोकेशियो ने नोवेला के स्वरूप को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। उसके बाद के लेखकों ने उसका अनुकरण किया, पर कोई उसे पा नहीं सका। इटली के ये 'नोवेला' प्रायः रूखे, बेडौल, निर्दय और आधुनिक रुचि के प्रतिकूल हैं, तो भी उनमें कभी-कभी बहुत ही कोमल और प्रिय वस्तु मिल जाती है।

घरेलू झगड़ों और युद्धों के कारण इटली के साहित्यिक स्वर्ण-युग का

कुछ काल तक तो पतन-सा ही होगया। इटली की उत्पादक शक्ति ही मारी गई। १६ वीं शताब्दा के आरंभ में जाकर उसका पुनरुत्थान हुआ, और माँजोनी की प्रथम श्रेणी की रचना में 'रोमांटिक' मनोभाव प्रकट हुए। किन्तु, माँजोनी, फ़ोसकोलो आदि थे कवि और उपन्यास लेखक, 'नोवेला'--छोटी कहानियों—से उन्हें कोई मतलब नहीं था। कहानियों का वास्तविक सौन्दर्य तो वेर्गा की लेखनी से प्रकट हुआ। उसके अनुयायियों ने युरोप के आधुनिक कहानी--साहित्य की भाँति वहाँ की कहानियों को भी उन्नत बनाने में काफ़ी सफलता प्राप्त की है। उनमें से एदमोन्दो, मातिल्दा सेराव, पिरंदलो, दान्यूँजिओ के नाम उल्लेखनीय हैं।

जर्मनी के कहानी लेखकों ने जो रचनायें अर्पित की हैं, उनसे संसार का कहानी साहित्य उन्नत हुआ है, उसकी कला का विकास हुआ है। जर्मन-भाषा-भाषी लोगों के राजनैतिक उतराव-चढ़ाव के कारण उनका कथा-साहित्य फ्रांस, इटली आदि की अपेक्षा अधिक रंग-विरंगा और विविध-विषय-विभूषित है। सदियों तक वहाँ ईसा के पूर्व की कहानियों और परम्पराओं का प्रभाव बना रहा। और उस भावुकता और कल्पना की छाया अब तक वहाँ के वर्त्तमान लेखकों में विद्यमान हैं, जिसका दूसरे देशों की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में अभाव पाया जाता है। इसका कारण है, जर्मन मनोभाव, फ्रांस, रूस आदि की भाँति भौतिक नहीं रहा है। वे चाहे जितने भौतिक विचार प्रकट करें, उनमें भावुकता और आध्यात्मिकता का रंग ज़रूर होगा। १६ वीं शताब्दी के आरंभ में रिशटर की 'रोमांटिक' कहानियों का बहुत आदर था। इसी सदी के उत्तरार्द्ध में जब दूसरे देशों में यथार्थ-वाद का आन्दोलन आरंभ हुआ, तो जर्मनी भी उससे वंचित नहीं रह

सका। तो भी वहाँ वह बात नहीं आ सकी जो फ्रांस और रूस में आई थी। जर्मन-भाषा-भाषियों का स्वाभाविक आदर्श-प्रिय मस्तिष्क 'नग्न-सत्य' प्रकट करने को बात को पूरी तौर से ग्रहण नहीं कर सका। जर्मन लेखकों ने रियलिज़्म को आधे मन से ही स्वीकार किया था। इसी लिए, उसका प्रभाव स्थायी नहीं रहा और कुछ समय बाद ही वहाँ की कहानियों का रुख़ मनोवैज्ञानिक भावना पूरित बातों की ओर पलट गया। भौतिक-वाद में जरमन-साहित्य बहुत कम विश्वास कर सका है। 'रियलिज़्म' को ध्यान में रखकर लिखते समय भी उन्होंने आन्तरिक मनोभावों के तत्वों-कार्य की अपेक्षा कारण—का विशेष विचार रखा है। इस वैज्ञानिक-युग में भी उन्होंने विज्ञान और कलामय भौतिक बातों से आध्यात्मिक स्वरूप का बहिष्कार नहीं होने दिया है।

जर्मन-साहित्य अकेले जर्मनी का नहीं है। स्वीज़रलेंड, आस्ट्रिया और प्रशिया आदि के उन भागों का भो जर्मनी में समावेश समझना चाहिये, जो जाति और भाषा के कारण जर्मनी से सर्वथा हिले-मिले हैं। जर्मन-भाषा की जो सब से पुरानी कहानी मिलती है, उसका लेखक भी आस्ट्रियन हो था। जर्मन भाषा के अर्वाचोन प्रसिद्ध कहानो लेखकों में हेस खास जर्मनी का, केलर स्वीज़रलेंड का, शीज़लर आस्ट्रिया का और सदरमैन पूर्वीय प्रशिया का है।

स्पेन में जिसे हम 'कहानी' कहते हैं, उसका उतना विकास नहीं हुआ। हाँ, दूसरे प्रकार की कथा-वार्त्ताओं का काफ़ी प्रचलन आरम्भ से ही रहा है। दूसरे देशों की भाँति स्पेन के उपन्यासों का इतिहास १२वीं, १३ वीं शताब्दी से मिलता है। किन्तु, साहित्य में वास्तविक आदर का

स्थान प्राप्त किया सरवाँते की रचनाओं ने। सरवाँते उस काल का लेखक है, जब स्पेन उन्नति के शिखर पर विराजमान था। सरवाँते के 'डॉन क्विहॉट' उपन्यास का वहाँ अत्यधिक आदर है। सरवाँते ने कुछ कहानियाँ भी लिखी थीं, जो आकार में बड़ी होने पर भी बहुमूल्य हैं।

तदनन्तर राजनैतिक पराजय के कारण १७ वीं और १८ वीं शताब्दियों में सारे देश का ही वह ओज और उत्साह मारा गया। गत शताब्दी के पूर्वार्द्ध की रचनाओं में फ्रांस की छाप स्पष्ट देखने में आती है। तो भी आश्चर्य की बात है कि स्पेनिश लेखक 'रोमांटिज़्म' से सर्वथा परे रहे, जिसका प्रभाव एक बार तो सारे युरोप पर होगया था। स्पेनिश कथा-कहानियों के नवयुग का आरम्भ एक गम्भीर 'रियलिस्टिक' लेखक काबालेरो और एक दक्ष कहानी लेखक आलरसों से होता है। तत्कालीन लेखकों में पेरैदा, बालेरा, अलास आदि मशहूर हैं, और इधर के लेखकों में बारोज़ा ने काफ़ी नाम कमाया है।

बेल्जियम के मौलिक साहित्य का निर्माण हुआ १९ वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में। उससे पहले कोई इक्के-दुक्के मौलिक-लेखक ही हुए। इससे पहले के काल में चार्ल्स-द-कोस्टर हो गया है, जिसकी 'युलेन्स्पीगल' की वार्त्ताओं ने वहाँ के लोगों में नवोत्साह पैदा करने का काम किया है। किन्तु, यह लेखक बेल्जियम के वर्त्तमान साहित्य के उदय-काल के पहले ही अस्त हो गया।

बेल्जियम का आधुनिक कथा-साहित्य सुसम्पन्न है। यद्यपि वहाँ के सुप्रसिद्ध साहित्यिक नाटक, कविता आदि लिखने में दक्ष थे, तो भी प्रायः उन सभी ने कहानियाँ—बहुत ही सुन्दर कहानियाँ—लिखी हैं। बेल्-

जियम की कहानियाँ वर्णनात्मक होने की अपेक्षा चित्र-रूप अधिक हैं। बेल्जियम के दुःखी जीवन की छाया वहाँ की कहानियों में स्पष्ट है, और वे कहानियाँ हैं उस सर्व-सम्पन्न शक्तिशाली राष्ट्र के ह्रास के चित्र-स्वरूप। बेल्जियम के कहानी-लेखकों में मेटरलिंक, वेरहर्न, रॉडनवैच के नाम उल्लेखनीय हैं।

स्केन्डिनेवियन देशों में आइसलेंड, डेनमार्क, नार्वे, और स्वीडन का समावेश है। आइसलेंड की पुरानी कहानियाँ इन्हीं देशों के लिये नहीं, किन्तु अन्य युरोपीय देशों के लिए भी अनुकरणीय रही हैं। आइसलेंड का यह कथा-साहित्य 'सागा' के नाम से ख्यात है। नूतन रूप प्रदान करने के लिए सागा बार-बार लिखे गए हैं। आइसलेंड का वर्त्तमान कथा-साहित्य भी अतीव रोचक है। आइसलेंड और डेनमार्क का पारस्परिक सम्पर्क बहुत काल से रहा है। डेनिस साहित्य है एक हज़ार वर्ष प्राचीन; किन्तु १९ वीं शताब्दी में ही उसके फलने-फूलने का समय आया। अर्वाचीन कहानी-लेखकों में पहला ऑडरसर था। गोल्डस्मिज़ था तो यथार्थवाद की प्रवृत्ति का लेखक, किन्तु उसने अपनी चतुराई से निराली शैली की ही कहानियाँ प्रस्तुत की हैं। जेकब्सन डेनिस उपन्यासकारों में प्रमुख है, उसकी रचनायें यथार्थवादी और मनो-वैज्ञानिक हैं।

१८१४ में डेनमार्क से अलग होते ही नार्वे ने अपने साहित्य का निर्माण आरम्भ कर दिया। नार्वे का प्रतिभाशाली लेखक ब्जार्सन वर्षों तक वहाँ का राष्ट्रीय नेता था, वहाँ के शिक्षित-जीवन का संचालक था। उसकी छोटी कहानियों का प्रभाव समस्त स्केन्डिनेवियन देशों पर

पढ़े बिना नहीं रहा। नार्वे के अन्य कहानी-लेखकों में हम्सन और जॉन बॉजेर उल्लेखनीय हैं।

१६ वीं शताब्दी तो स्वीडन की साहित्यिक-उन्नति का स्वर्ण-युग था ही, किन्तु स्वीडन उससे भी पहले के अपने साहित्य का गर्व कर सकता है। गत शताब्दी के अन्तिम काल में स्ट्रिंबर्ग सरीखा विद्वान लेखक स्वीडन में होगया है। वह नाटककार, उपन्यासकार और वैज्ञानिक था। उसने कहानियाँ भी लिखी हैं, जिनसे उसके संदेहात्मक दर्शन का परिचय मिलता है। सेल्मा लेगर्लव की रचनायें सम्बन्ध रखती हैं ग्राम-समाज से, जिसके बीच वह लेखिका निवास करती है। वर्त्तमान स्वीडिश लेखकों ने अपनी कहानियों को पूर्णता पर पहुँचा दिया है। वे अपने देशी भावों से तिल भर भी परे नहीं हुए हैं। स्वदेश के उनके वे उद्देश्य और वर्णन ज्यों के त्यों रहे हैं।

अन्य देशों के कहानी-साहित्य का परिचय विस्तार-भय के कारण और भी संक्षेप में देना होगा। ज़ेकोस्लोवेकिया में १७ वीं शताब्दी के पहले ज़ेक साहित्य की यत्किञ्चित प्रगति रही है। किन्तु १७ वीं शताब्दी में तो आस्ट्रियन शासन के कारण ज़ेक भाषा पर ही रुकावट कर दी गई थी। हाँ, १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वहाँ के साहित्य में नव-प्रगति आरंभ हुई और सेश, नरूदा आदि बहुत से साहित्यक कलाविद् कहानी-लेखक आगे आये। ज़ेक कहानियों पर रूसी साहित्य का काफ़ी प्रभाव पाया जाता है, तो भी उनमें उनके ग्रामीण पदार्थ और स्वदेश के प्रति मनोभाव अक्षुण्ण पाये जाते हैं। जिस प्रकार ज़ेकोस्लोवेकिया को पराधीन रहना पड़ा, उसी प्रकार १६ वीं शताब्दी के आरंभ तक जुगो-

स्लेविया को भी तुर्की-शासन में रहना पड़ा, जिससे उसका राष्ट्रीय-जीवन सर्वथा नष्ट होगया। उस पराधीनता के बंधन से मुक्त होने पर भी वहाँ स्व-भाषाओं का साहित्य नहीं बढ़ने पाया। कारण तुर्कों ने सारे छापेखाने नष्ट कर डाले थे। किन्तु धीरे-धीरे जुगोस्लेविया की तीनों भाषाओं—सरबियन, क्रोशियन और स्लोवेनियन की उन्नति होने लगी। वहाँ के लेखकों में उपन्यासकार ऐसे अच्छे नहीं हुए हैं, हाँ, उन्होंने कहानी-लेखन में अच्छी सफलता पाई है।

हंगरी के वास्तविक साहित्य का आरंभ होता है १८ वीं शताब्दी से। इस शताब्दी के अन्त में 'कैरोली-बन्धु' सुप्रसिद्ध लेखक हो गए हैं। १९ वीं शताब्दी हंगरी के युद्ध, क्रान्ति और राजनैतिक अशान्ति का समय था, और इसी काल में हंगरी के साहित्य को प्रोत्साहन मिला, कहानी-साहित्य भी ख़ूब पनपा। उस समय के कहानी लेखकों में जोकई विशेष उल्लेखनीय हैं। बाद के लेखकों में मोल्नर, गीले आदि मशहूर हैं।

रोमानिया का पद्य-साहित्य पूर्वकाल में जितना उन्नत हुआ उतना गद्य-साहित्य नहीं हुआ। १९ वीं शताब्दी में मेरेसू ने अपने प्रभाव से कुछ राष्ट्रीय लेखकों को प्रोत्साहित किया, जिनमें काराजियेल ने बहुत ही सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं। विदेशी होते हुए भी रूमानिया की दो रानियों—सिल्वा और मेरी—ने रूमानियन साहित्य को उन्नत बनाया है।

बलगेरिया के साहित्य का तो अभी बाल-काल है। १८३५ ई० में तो पहला बलगेरियन व्याकरण प्रकाशित हुआ था। प्रारम्भिक लेखकों में ज्यार्ज रेकोवस्की की देश-प्रेम पूर्ण रचनाओं ने वहाँ की जनता में अच्छा जोश पैदा किया था। दिमित्र इवानॉव ने कहानियों के द्वारा अपनी

कला का बहुत अच्छा परिचय दिया है। बलगेरिया के किसानों के अज्ञात जीवन का उसने बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है।

यिद्दी एक जूडो-जर्मन भाषा है जिसके साहित्य ने भी गत शताब्दी में उल्लेखनीय उन्नति की है। रूस और पोलैंड में इसका आरंभ हुआ और ऐसा कहना चाहिए कि यह भाषा घर खोजती फिरती रही है। इस भाषा के बहुत से वर्त्तमान सुप्रसिद्ध लेखक निवास करते हैं अमेरिका में। यिद्दी भाषा की रचनाओं में वर्त्तमान रूस की छाया है, पर उनकी जड़ तो यहूदी-जीवन की परम्पराओं में ही है। यिद्दी लेखकों की रुचि अपने लोगों की विचार-धारा और भावनाओं ही से रही है, इसीलिए उन्होंने यहूदियों के सामने यहूदी-जीवन को चित्रित करने का सफल प्रयास किया है। इन वर्षों में यिद्दी भाषा में बड़ी सुन्दर कहानियाँ लिखी गई हैं, जिसका अधिकांश श्रेय शॉलम ऐश और इसाक पेरेज़ को हैं। इस भाषा का भविष्य चाहे जो हो, गत पचास वर्षों में उसमें जो रचनायें प्रकाशित हुई हैं, वे अमर रहेंगी

जितने थोड़े शब्दों में हो सकता था, हमने युरोप के विभिन्न देशों के कहानी-साहित्य का परिचय यहाँ दिया है। उसी प्रकार हिन्दी पाठकों की जानकारी के लिए हमने इस संग्रह में युरोप के विभिन्न देशों के चुने हुए लेखकों की कहानियों का अनुवाद किया है। स्थान के संकोच के कारण हम सभी सुप्रसिद्ध कहानी-लेखकों की एक-एक कहानी भी इस संग्रह में नहीं दे सके हैं। कई जगह तो यह निर्णय करना अत्यन्त कठिन होगया कि किसे लिया जाय? और किसे छोड़ा जाय? तो भी हमने ऐसा चुनाव किया है जिससे युरोप के कहानी-साहित्य की एक बानगी

पाठकों के सम्मुख उपस्थित हो जाय। हमारा उद्देश सफल हुआ, तो हमें बड़ा हर्ष होगा।

अन्यान्य लेखकों और अन्य रोचक व प्रसिद्ध कहानियों के चुनाव की हमें सलाह मिल सकती है। भविष्य के लिए हम उसका स्वागत करेंगे। एशिया और अमेरिका की कहानियों का भी ऐसा ही संग्रह तैयार करने का हमारा विचार है। आशा है, हमें उनके लिए प्रोत्साहन मिलेगा। जिन पुस्तकों से हमें सहायता मिली है, उनके लेखकों व प्रकाशकों का हम सविनय आभार मानते हैं, विशेषतः इन दो पुस्तकों का, जिनसे अधिकांश कहानियाँ चुनी गई हैं—

Great Short Stories of the World.
Great Short Stories of All Nations.

इस पुस्तक को तैयार करने के लिए प्रोत्साहित करने वालों में पूज्य श्री रामनरेशजी त्रिपाठी का तो क्या आभार माना जाय, यह तो उनकी ही कृपा का फल है। हाँ, श्री रामचन्द्रजी टण्डन ने समय-समय पर अपने सत्परामर्श से अवश्य बाधित किया है, जिसके लिए उन्हें अनेक धन्यवाद।

आशा है, हिन्दी-संसार हमारी इस सेवा को अपनायेगा।

श्रीगोपाल नेवटिया।

युरोप की कहानियाँ—



लियो टॉल्स्टॉय

युरोप की कहानियाँ

रूस : : : लियो टॉल्स्टॉय

सत्य का साक्षी भगवान्

व्लाडिमिर नगर में ईवान ग्निग्निच अक्षयानफ़ नामक एक युवक व्यापारी रहता था। उसकी अपनी दो दूकानें और एक मकान थे।

अक्षयानफ़ था सुन्दर, सजीला, घुँघराले बालों वाला और विनोदी स्वभाव का। संगीत में तो मानो उसका प्राण ही बसता था। भरी जवानी में वह खूब पीता; पी-पिलाकर मचाता ऊधम। किन्तु बीबी के घर में आने से वह आदत छूट गई। पीता भी तो कभी-कभी।

ग्रीष्म के दिन अक्षयानफ़ ने विचार किया निझनी के मेले में जाने का। परिवार से बिदाई लेते समय पत्नी ने कहा—"ईवान ग्निग्निच! आज घर मत छोड़ो। मैंने तुम्हारे बारे में एक बुरा सपना देखा है।"

अक्षयानफ़ ने हँसकर कहा—"क्यों ? इस बात का डर है कि मैं मेले में जाकर राग-रंग और सुरापान में लीन हो जाऊँगा ?"

उसकी पत्नी ने उत्तर दिया—"यह तो नहीं जानती कि किस बात से भयभीत हूँ। हाँ, मैंने एक बुरा सपना ज़रूर देखा है। शहर से लौटकर जब तुमने टोपी उतारी, तब मैंने सपने में देखा—तुम्हारे सब बाल सफेद हो गए हैं !"

अक्षयानफ़ फिर हँसा। "यह तो शुभ लक्षण है।" उसने कहा—"देख लेना मेरी सारी चीजें बिक जायँगी और मैं तुम्हारे लिए एक अच्छी-सी सौगात लेता आऊँगा।"

इस प्रकार अपने परिवार से विदा होकर वह मेले की ओर चल दिया।

आधा रास्ता तय करने पर उसे एक परिचित व्यापारी मिला। दोनों ने एक ही सराय में रात बिताई। एक साथ चाय पीकर दोनों आस-पास के कमरों में सोने चले गए।

अक्षयानफ़ की आदत तड़के उठने की थी। प्रातःकाल की ठण्ड में सफ़र के इरादे से उसने साईस को पौ फटने के पहले ही उठाकर घोड़े जोतने की आज्ञा दी।

सराय के मालिक को, जो पीछे ही एक झोपड़े में रहता था, दाम चुकाकर वह आगे बढ़ा।

पचीस मील चलकर उसने घोड़ों को खिलाने-पिलाने के लिए खुलवा दिया। खुद सराय में आराम करने लगा। थोड़ी देर आराम करके उसने चाय के लिए देगची चढ़ाने का आदेश दिया। इतना समय उसने सितार बजाकर बिता दिया।

सहसा वहाँ एक दूसरी गाड़ी आ पहुँची। उसकी घण्टियाँ बज रही थीं। उसमें से उतरा एक राज-कर्मचारी, दो सिपाहियों के साथ। अक्षयानफ़ के पास आकर वह पूछ-ताछ करने लगा—"कौन हो? कहाँ से आये हो?" अक्षयानफ़ ने सब बातों का पूरा-पूरा उत्तर देकर कहा—"क्यों, आप थोड़ी चाय नहीं लेंगे?" किन्तु वह सरकारी आदमी तो जवाब तलब करता ही गया—"तुमने रात कहाँ बिताई? तुम अकेले ही थे? या एक दूसरा व्यापारी भी था? उस व्यापारी से तुम्हारी आज सबेरे मुलाक़ात हुई? तुम इतने तड़के सराय छोड़कर क्यों चल दिए?"

अक्षयानफ़ अचम्भे में पड़ गया कि उससे इतने प्रश्न क्यों पूछे जा रहे हैं। तो भी उसने सब बातें ब्यौरेवार बता दीं और पूछा—"आप मुझसे इस प्रकार क्यों जवाब तलब कर रहे हैं? क्या मैं कोई चोर या डाकू हूँ? मैं अपने काम से सफ़र कर रहा हूँ। आपको इतनी पूछ-ताछ से मतलब?"

कर्मचारी ने सिपाहियों को बुलाकर कहा—"मैं हूँ इस ज़िले का पुलिस-अफ़सर। तुम्हारे उस साथी व्यापारी का खून इसी रात को हो गया है। इसीलिए मैं तुमसे पूछ-ताछ कर रहा हूँ। हमें तुम्हारी तलाशी लेनी होगी।"

वे घर में घुस आए। पुलिस-अफ़सर और सिपाहियों ने अक्षयानफ़ की एक-एक चीज़ बिखेरकर तलाशी ली। सहसा अफ़सर ने उसके थैले में से एक छुरा निकालकर पूछा—"अब बताओ, यह छुरा किसका है?"

अक्षयानफ़ अपने थैले में से उस रक्त-रंजित छुरे को निकलते देखकर भयभीत हो गया।

"बताओ, छुरे पर यह खून कहाँ से आया ?"

अक्षयानफ़ ने उत्तर देने का प्रयास तो किया, पर कम्पित स्वर में वह कठिनता से इतना ही कह पाया—"मैं—मुझे मालूम नहीं—मेरा तो नहीं।"

अब पुलिस-अफ़सर ने कहा—"आज सबेरे वह व्यापारी अपने बिछौने में मरा पाया गया है, गला कटा हुआ। यह काम तुम्हारा ही है। घर भीतर से बन्द था और तीसरा कोई भीतर था भी नहीं। और यह खूनी खंजर भी तुम्हारे थैले में मिल गया। तुम्हारे चेहरे की दशा ही तुम्हारे पेट का हाल कह रही है। बताओ, कैसे तूने उसका गला काटा ? और कितने माल पर हाथ मारा ?"

अक्षयानफ़ ने शपथ खाकर कहा कि यह काम उसका नहीं। रात को चाय पीने के बाद उसने उस व्यापारी को देखा भी नहीं। अपने निजी आठ हज़ार रूबल के सिवा उसके पास और कोई रक़म नहीं है। और यह छुरा भी उसका नहीं है। किन्तु, उसकी वाणी लड़-खड़ा रही थी, चेहरा पीला पड़ गया था, और वह भय से इस प्रकार काँप रहा था, मानो सचमुच वही दोषी है।

पुलिस-अफ़सर ने अक्षयानफ़ को गिरफ़्तार करके गाड़ी में बाँध देने का हुक्म सिपाहियों को दिया। हाथ-पाँव बाँधकर जब उन्होंने उसे गाड़ी में पटक दिया, तब वह बिचारा फूट-फूटकर रोने लगा। उसका सारा माल असबाब और धन छीन लिया गया। एक समीपस्थ शहर में भेजकर वह कैद कर दिया गया। ब्लाडिमिर में उसके चाल-चलन की जाँच-पड़ताल की गई। वहाँ के व्यापारी और दूसरे निवासियों ने बताया

कि पहले तो उसे शराबख़ोरी की लत थी और वह यों ही आवारा फिरा करता; किन्तु वह है तो भला आदमी। उस पर मुकदमा चला। रायज़ान के एक व्यापारी की हत्या और उसके बीस हज़ार रूबल लूट लेने का अपराध उसपर लगाया गया।

उसकी पत्नी निराशा के सागर में गोते खाने लगी। वह समझ ही नहीं सकी कि किस बात का विश्वास करे। बच्चे थे सभी छोटे-छोटे। एक तो अभी गोद ही में था। उनको लेकर वह उस शहर में पहुँची, जहाँ उसका पति कैद था। पहले तो उस बेचारी को पति से भेंट करने की आज्ञा ही नहीं मिली; किन्तु बार-बार अनुनय-विनय करने पर अफ़सरों का हृदय पसीजा; उन्होंने आज्ञा दे दी। बन्दी-पोशाक में हथकड़ी-बेड़ियों से आबद्ध अपने पति को चोर-डाकू और हत्यारों के साथ बन्द देखकर वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। बहुत देर तक उसे होश नहीं आया। अपने बच्चों को छाती से लगाकर वह उसके पास बैठ गई, घर का हाल-चाल बताकर उसने उसके बारे में पूछा। उसने सारा हाल बता दिया। पत्नी ने पूछा—"अब क्या किया जाय?"

"हमें ज़ार से प्रार्थना करनी चाहिये कि एक निरपराध का जीवन कहीं नष्ट न हो जाय।"

उसकी पत्नी ने बताया कि वह ज़ार की सेवा में प्रार्थना-पत्र भेज चुकी है; पर वह स्वीकार नहीं हुआ है।

अक्सयानफ़ ने कोई उत्तर नहीं दिया; चुपचाप धरती में नेत्र गड़ाए देखता रहा।

पत्नी ने कहा—"सपने में तुम्हारे बालों को सफेद होते मैंने झूठे ही नहीं देखा था। क्यों? याद है? उस दिन तुम्हें घर नहीं छोड़ना चाहिए था।" अपने पति के बालों को अँगुलियों से सहलाते हुए उसने पूछा—"अक्षयानफ़! प्यारे! अपनी पत्नी को तो सच-सच बताओ। क्या यह काम तुम्हारा नहीं था?"

"तुम भी संदेह करती हो!" अक्षयानफ़ ने कहा। दोनों हाथों से मुँह ढाँपकर वह आँसू बहाने लगा। सिपाही ने आकर सूचना दी कि स्त्री और बच्चों को अब चला जाना होगा; अक्षयानफ़ ने अपने परिवार से अन्तिम विदाई ली।

उनके चले जाने पर अक्षयानफ़ ने सोचा–हाय! उसकी स्त्री भी उस पर संदेह कर रही है! उसने मन ही मन कहा—"मालूम होता है, सत्य का साक्षी एक भगवान् है। उसीके दरबार में विनती करनी चाहिए। उसीके यहाँ से दया की भीख मिल सकती है।"

अक्षयानफ़ ने और प्रार्थना-पत्र नहीं भेजे। सारी आशाओं को छोड़-कर वह भगवान् के भजन में लग गया।

अक्षयानफ़ को कोड़ों से पीटकर खानों में निर्वासित कर देने का दण्ड सुनाया गया। कोड़ों की मार के घाव ठीक होने पर वह दूसरे अपराधियों के साथ साइबेरिया में भेज दिया गया।

साइबेरिया में बन्दी-जीवन बिताते अक्षयानफ़ को छब्बीस वर्ष बीत गए। उसके केश हिम के समान श्वेत होगए। दाढ़ी बढ़कर लम्बी होगई, पतली और सफ़ेद। उसका सारा आनन्द विलीन होगया। उसकी

कमर झुक गई। वह धीरे-धीरे क़दम उठाता। थोड़ा बोलता। हँसता तो कभी नहीं। बहुधा भगवद्भजन में रत रहता।

कैदखाने में उसने जूते बनाने सीख लिए। उसीसे कुछ कमाकर उसने 'सन्तों का जीवन' ख़रीद लिया। बन्दी-घर में जब तक प्रकाश रहता, वह उस पुस्तक को पढ़ता रहता। प्रति रविवार को वह बन्दी-गृह के गिरजे में जाकर पाठ पढ़ता और समूह के साथ भजन गाता। उसकी वाणी में मिठास तो थी ही।

क़ैदख़ाने के कर्मचारी अक्षयानफ़ को उसकी विनम्रता के कारण बहुत चाहते, और उसके साथी कैदी उसका आदर करते। वे उसे 'दादा' कहते अथवा "सन्त"। जब कभी उन्हें जेल के अधिकारियों से कोई प्रार्थना करनी पड़ती तो अक्षयानफ़ ही को अपना अगुआ बनाते, और जब कभी कैदियों में आपस में कोई झगड़ा होता तो उसका निपटारा कराने के लिए वे उसीके पास आते।

अक्षयानफ़ को घर की कोई ख़बर नहीं मिलती थी। उसे यह भी ज्ञात नहीं था कि उसकी पत्नी और बच्चे जीते हैं या मर गए।

एक दिन कैदख़ाने में नए अपराधियों की एक टोली आई। संध्या के समय पुराने कैदी अपने इन नए साथियों को घेरकर उनसे पूछ-ताछ करने लगे—किस गाँव या शहर से आए हैं? किस अपराध पर सज़ा मिली है? अक्षयानफ़ भी नवागतों के पास बैठकर, गर्दन झुकाए, उनकी बातें सुन रहा था।

नए बन्दियों में से एक ६० वर्ष का लम्बा और मज़बूत आदमी, जिसको सफ़ेद दाढ़ी बहुत महीन छँटी हुई थी, अपनी गिरफ़्तारी का हाल दूसरों को सुना रहा था।

"दोस्तो," उसने कहा—"मैंने तो सिर्फ एक खूंटे से बँधे हुए घोड़े को खोल लिया था। गिरफ़्तार करके मुझ पर जुर्म लगा दिया गया चोरी का। मैंने बहुत कहा कि मुझे घर जल्दी पहुँचना था। वहाँ पहुँचते ही मैंने घोड़े को छोड़ भी दिया था। यही नहीं, गाड़ीवान मेरा दोस्त भी है। मैंने तो कहा—"मैंने कोई अनुचित काम नहीं किया।" किन्तु उन्होंने कहा—"नहीं, तुमने चोरी की है।" पर वे यह नहीं बता सके कि मैंने कैसे और क्यों चोरी की? हाँ, एक बार मैंने सचमुच दुष्कर्म किया था और उसके लिए मुझे यहाँ बहुत पहले ही आ-जाना चाहिए था। पर उस समय तो मैं पकड़ में आया नहीं। और इस बार मैं यहाँ भेज दिया गया हूँ बिना कारण ही...ऊँह्, मैं यों ही बक रहा हूँ। मैं तो पहले भी साइबेरिया में आ चुका हूँ। पर ज़्यादा दिन नहीं टिका।"

"कहाँ से आये हो तुम?" किसी ने पूछा।

"व्लाडिमिर से।" मेरा परिवार वहीं का है। मेरा नाम है मकार। लोग मुझे सैम्योनिच भी कहते हैं।"

अक्षयानफ़ ने अपना सिर उठाकर कहा—"कहो सैम्योनिच! तुम व्लाडिमिर के अक्षयानफ़ व्योपारियों को भी जानते हो? उनमें से कोई अब भी जीता-जागता है क्या?"

"जानता हूँ। ज़रूर जानता हूँ। अक्षयानफ़ परिवार बड़ा धनी है। पर मालूम देता है, उनका बाप हमारी ही तरह साइबेरिया में पापो का जीवन बिता रहा है। और तुम्हीं बताओ दादा! तुम्हारा आना यहाँ कैसे हुआ?"

अक्षयानफ़ अपने दुर्भाग्य की गाथा उसे सुनाना नहीं चाहता था। एक आह भरकर उसने कहा—"मैं भी अपने पाप का फल छब्बीस वर्ष से इस बन्दी-गृह में भोग रहा हूँ।"

"कैसा पाप ?" मकार सैम्योनिच ने पूछा।

किन्तु अक्षयानफ़ ने केवल इतना ही कहा—"ख़ैर—यही मेरे भाग्य में बदा था।" वह और अधिक नहीं बताता; किन्तु उसके साथियों ने नवागत को बता दिया कि अक्षयानफ़ किस प्रकार साइबेरिया में भेज दिया गया; किस प्रकार किसी ने एक व्यापारी की हत्या कर दी, और अपना छुरा अक्षयानफ़ के सामान में छिपा दिया। बेचारे अक्षयानफ़ के साथ अन्याय हुआ।

मकार सैम्योनिच ने यह गाथा सुनकर अक्षयानफ़ की ओर बड़े ध्यान से देखा। अपनी ताल ठोककर वह कह उठा—"अच्छा; बड़े आश्चर्य की बात है यह ! सचमुच ही आश्चर्य की ! क्यों दादा ! उमर कितनी बीत गई ?"

दूसरों ने पूछा—"उसे इतना अचरज क्यों हो रहा है ?" उसने अक्षयानफ़ को पहले कहाँ देखा है ? किन्तु मकार सैम्योनिच ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने बस इतना ही कहा—"आश्चर्य की बात कि हम दोनों यहाँ आकर मिले !"

अक्षयानफ़ उसकी यह बात सुनकर ताड़ गया—"हो, न हो यह आदमी उस व्यापारी के हत्यारे को ज़रूर जानता है। उसने पूछा—"सैम्योनिच ! तुमने उस घटना का हाल सुना था क्या ? तुमने मुझे पहले कभी देखा है ?"

"सुनता कैसे नहीं ? दुनिया में अफवाहों के पर होते हैं । पर यह तो बहुत पुरानी बात है । मैं तो भूल गया, क्या सुना था ।"

"ख़ैर, इतना तो सुना होगा कि उस व्यापारी को किसने मारा ?" अक्षयानफ़ ने पूछा ।

मकार सैम्योनिच ने हँसकर उत्तर दिया—"और कौन ? वही होगा जिसके थैले में खूनी खंजर मिला था । किसी दूसरे ने यदि वह छुरा वहाँ छिपा दिया था, तो वह यदि नहीं पकड़ा जा सका, तो अपराधी कैसा ? थैला तो तुम्हारे सिर के नीचे था; कोई दूसरा उसमें छुरा छिपाता भी, तो कैसे ? ऐसा करने से तो तुम ज़रूर जाग जाते ।"

उसकी ये बातें सुनकर अक्षयानफ़ को विश्वास हो गया कि इसीने उस व्यापारी का खून किया था । वहाँ से वह उठकर चला गया । सारी रात अक्षयानफ़ ने जागकर बिताई । उसके दुःख का पार नहीं था, विभिन्न प्रतिमायें उसके ध्यान में आ रही थीं । उसे दिखाई दी अपनी पत्नी, जिस समय वह उससे मेले में जाने के लिए विदा ले रहा था । उसे मालूम दिया कि वह सन्मुख उपस्थित है; अपना मुख-मण्डल और नेत्रद्वय उठाकर वह उसकी ओर निहार रही है; उसे उसकी मधुर वाणी और हास्य सुनाई दिया । तत्पश्चात् उसे दिखाई दिए उसके नन्हें नन्हें बच्चे—एक छोटा-सा लबादा लपेटे और एक अपनी माँ की छाती से चिपटा हुआ । और तब उसके ध्यान में आया उसका अपना यौवन और आनन्दमय जीवन । उसे याद आया—किस प्रकार आनन्दमग्न होकर वह गिरफ़्तारी के दिन सराय के द्वार पर बैठकर सितार बजा रहा था । चिन्ताओं से कितना मुक्त था वह उन दिनों ! उसके स्मृति-पटल से

कोड़े खाने का वह स्थल, बधिक, लोगों की वह भीड़, जंजीरें, अपराधी, बन्दी-जीवन के वे छब्बीस वर्ष। उसके मन पर सब बातें ज्यों की त्यों अंकित थीं। इन सब बातों के विचार ने उसे इतना अधम बना दिया कि वह अपघात करने को तैयार हो गया।

"और यह सब करतूत है उस दुष्ट की!" अक्षयानफ़ ने सोचा। मकार सैम्योनिच के प्रति उसके क्रोध का पार नहीं रहा। वह प्रतिशोध के लिए आतुर हो उठा। मानों प्रतिशोध की उस अग्नि में स्वयं भस्मीभूत हो जायगा। रात भर वह भजन गाता रहा। किन्तु शान्ति नहीं मिली। दूसरे दिन भी वह मकार सैम्योनिच के पास नहीं गया। उसकी ओर आँख उठाकर भी उसने नहीं देखा।

एक पक्ष तक यही हाल रहा। अक्षयानफ़ को रात में नींद नहीं आती। उसकी अवस्था इतनी दयनीय हो गई थी कि वह स्वयं नहीं समझ सकता था कि क्या करे, और क्या नहीं करे।

एक रात को जेल में घूमते समय उसने देखा—कैदियों के सोने के एक घर में से धूल निकलकर आ रही है। ठहरकर वह देखने लगा कि क्या हो रहा है। सहसा मकार सैम्योनिच ने बाहर की ओर मुँह निकालकर, भयभीत होकर अक्षयानफ़ की ओर देखा। अक्षयानफ़ ने उसे अनदेखा करके यहाँ से टल जाने का प्रयत्न किया। किन्तु मकार ने उसका हाथ पकड़कर बताया कि उसने कैदखाने की दीवार के नीचे धरती खोदकर एक रास्ता बना लिया है और दूसरे कैदियों के साथ बाहर काम पर जाते समय अपने जूतों में छिपाकर गड्ढे की धूल रोज बाहर फेंक आया करता है।

"देखो बुड्ढे, किसी को कहना मत । तुम भी इसी तरह से निकल भागना । तुमने ज़रा भी ज़बान हिलादी तो वे तो कोड़े मार-मारकर मेरी जान ले ही डालेंगे, पर मैं भी तुम्हें जीता नहीं छोड़ूँगा ।"

अक्षयानफ़ अपने शत्रु को देखकर क्रोध से काँपने लगा । उसने अपना हाथ छुड़ाते हुए कहा—"न तो मुझे निकल भागने की इच्छा है, और न तुम्हें मुझे मारना पड़ेगा । मुझे तो तुम बहुत पहले मार चुके । और तुम्हारी बात बता देने के बारे में तो जैसा भगवान् का आदेश होगा, करूँगा—कहूँगा या नहीं कहूँगा ।"

दूसरे दिन बन्दियों को बाहर काम पर ले जाते समय पहरेदार सिपाही ने देखा—किसी कैदी ने धूल निकालकर अपना जूता खाली किया है । कैदखाने की तलाशी ली गई और वह सूराख मिल गया । बन्दीगृह के प्रबंधक ने आकर सब कैदियों से उसका नाम पूछा, जिसने यह काम किया था । सभी ने इन्कार कर दिया कि उन्हें इस बात का कुछ भी पता नहीं । जिन्हें मालूम था, वे भी मकार सैम्योनिच को धोखा देना नहीं चाहते थे । वे जानते थे कि चमड़ी उधेड़-उधेड़कर उसकी जान ले ली जायगी । अंत में प्रबंधक ने अक्षयानफ़ को सच्चा जानकर पूछा :—

"बूढ़े, तुम सच्चे आदमी हो । भगवान् को साक्षी देकर कहो, यह काम किसका है ?"

मकार सैम्योनिच इस प्रकार खड़ा था, मानो इस बात से उसका कोई सरोकार ही नहीं । वह अक्षयानफ़ की ओर नहीं देखकर प्रबंधक की ओर देख रहा था । अक्षयानफ़ के ओंठ फड़कने लगे, हाथ काँपने लगे ।

बहुत देर तक वह एक शब्द भी नहीं बोल सका। उसने सोचा—जिसने मेरे जीवन का विनाश कर दिया, मैं उसके पाप पर परदा क्यों डालूँ? मेरे कष्ट का दण्ड उसे भी तो भोगना चाहिए। किन्तु, यदि मैं कह दूँगा तो वे उसे मारते-मारते बेदम कर डालेंगे। हो सकता है, मेरा सन्देह गलत हो। और कह देने में मेरी भलाई भी क्या होगी?"

"क्यों बूढ़े" प्रबंधक ने फिर पूछा—"सच-सच बता, किसने दीवार में यह गड्ढा बनाया है?"

अक्षयानफ़ ने सैम्योनिच को कनखियों से देखकर कहा—"महाशय, क्षमा करें; मैं नहीं बता सकता। भगवान् की यह मरज़ी नहीं है कि मैं यह बात बताऊँ। आप मुझे चाहे सो दण्ड दे सकते हैं। मैं आपके अधीन हूँ।"

प्रबंधक ने बहुत प्रयत्न किये; किन्तु अक्षयानफ़ ने और कुछ नहीं बताया। अंत में मामला वहीं छोड़ देना पड़ा।

उसी रात को जब अक्षयानफ़ अपने बिस्तरे पर पड़कर सोने ही वाला था कि कोई चुपके से आकर उसके बिस्तरे पर बैठ गया। अंधकार को भेदकर उसने मकार को पहचान लिया।

"क्यों? अब मुझसे और क्या चाहिए?" अक्षयानफ़ ने पूछा—"अब यहाँ आना क्यों हुआ?"

सैम्योनिच था चुप। अक्षयानफ़ उठ बैठा और बोला—"क्यों? क्या काम है? यहाँ से चल दो। नहीं तो मैं पहरेदार को बुला लूँगा।"

मकार सैम्योनिच ने उसके चरणों में नत-मस्तक होकर कहा—"ईवान ग्रीन्निच्। मुझे क्षमा करो।"

"किसलिए ?" अक्षयानफ़ ने पूछा।

"उस व्यापारी का हत्यारा मैं ही हूँ। मैंने ही तुम्हारे सामान में वह छुरा छिपा दिया था। मेरा इरादा तो तुम्हारी हत्या करने का था। पर बाहर हल्ला-गुल्ला सुनकर मैं छुरा तुम्हारे थैले में छिपाकर खिड़की की राह भाग निकला था।"

अक्षयानफ़ चुप था। क्या कहे ? कुछ समझ में नहीं आरहा था। मकार सैम्योनिच बिछौने से उतरकर जमीन पर घुटने टेककर बैठ गया। "ईवान ध्मीत्रिच !" उसने कहा—"क्षमा करो, भगवान् के प्रेम के नाम पर मुझे क्षमा करो ! मैं सब बातें सच-सच कह दूँगा, बता दूँगा कि उस व्यापारी का हत्यारा मैं हूँ। तुम छूट जाओगे और और फिर एक बार अपने परिवार से जा मिलोगे।"

"बात बनाना बहुत आसान है" अक्षयानफ़ ने कहा—"मैं तो तुम्हारे कारण छब्बीस वर्ष से यह कष्ट भोग रहा हूँ। अब मैं जाऊँगा भी कहाँ ?......... मेरी पत्नी अब इस संसार में नहीं है। बाल-बच्चे भी मुझे भूल गए होंगे। इस जगत में मेरे लिए कोई स्थान नहीं...... ।"

मकार सैम्योनिच अपनी जगह से नहीं उठा। वह सिर धुन-धुनकर पछताने लगा। "ईवान ध्मीत्रिच ! क्षमा करो मुझे, क्षमा करो !" उसने चिल्लाकर कहा—"कोड़े खाने की पीड़ा को सहन करना तो आसान; पर यह कष्ट तो......ओह !! कितने दयावान् हो तुम ! तुमने मेरी बात नहीं ही कही। प्रभु ईसामसीह के नाम पर मुझे क्षमा करो; इस अधम को क्षमा करो !" वह फूट-फूटकर रोने लगा।

उसके रुदन को सुनकर अक्षयानफ़ के नेत्र भी भर आए।

"भगवान् तुम्हें क्षमा करेंगे !" उसने कहा—"मैं तो तुमसे सौगुना अधिक बुरा हूँ।" ऐसा कहने पर उसका हृदय हलका होगया। घर-बार देखने की उसकी लालसा तिरोहित होगई। बंदी-गृह छोड़ने की अभिलाषा अब उसे नहीं रह गई। केवल आकांक्षा अवशेष थी—अन्तकाल के आगमन की।

अक्षयानफ़ के समझाने-बुझाने पर भी मकार सैम्योनिच ने अपने अपरकराध को स्वीकार लिया। किन्तु, उसके बंधन-मुक्त क़रने की आज्ञा के आते-आते अक्षयानफ़ का प्राण ही देह-पिञ्जर से मुक्त होगया !

रूस : : : ईवान तुर्गनीव

मुद्रिका

एक सुदूर गाँव से लौटते समय सरदी खाकर मैं बीमार होगया। खैरियत यही थी कि मैं बीमार पड़ा शहर की एक सराय में। मैंने डाक्टर को बुला भेजा। आध घण्टे में डाक्टर आ गया। वह था दुर्बल-काय, नाटा और स्याह बालों वाला। साधारण पसीना लानेवाली दवा और राई का लेप बताकर, पाँच रूबल का नोट सावधानी से जेब में सरका-कर, खाँसता हुआ, वह सामने की ओर देखकर, जाने को उद्यत होगया। किन्तु एक चर्चा छिड़ जाने से वह वहीं रुक गया। बुख़ार के मारे मैं हैरान था। रात सामने थी। नींद आने का कोई भरोसा नहीं था। उस खुश-मिज़ाज साथी से बातचीत करने का मौका पाकर मुझे प्रसन्नता होनी स्वाभाविक थी। चाय आई। मेरा डाक्टर अब खुले दिल से बात करने लगा। वह था समझदार; बात कहता तो वज़न के साथ, विनोद के साथ। दुनिया भी अजीब है। किसी के साथ बहुत समय से रहने पर भी—उसके साथ मैत्री का व्यवहार होने पर भी—दिल खोल-कर कभी बात नहीं होती। दूसरी ओर किसी से पूरी तरह परिचित

होने का भी मौक़ा नहीं मिलता कि एक दूसरा अपना दिल खोलकर रख देता है, गोपनीय बातें भी बता देता है। मानो दोनों अपने-अपने अपराध स्वीकार कर रहे हों। मैं स्वयं नहीं जानता मेरे दोस्त को मेरा इतना विश्वास क्यों हो गया? उसने मुझे एक बहुत ही अनोखी घटना सुनाई। यहाँ मैं उसी घटना को दयालु पाठकों की जानकारी के निमित्त स्वयं डाक्टर ही के शब्दों में लिखने का प्रयत्न करूँगा।

"तुम शायद नहीं जानते" उसने क्षीण और विकंपित स्वर में कहा—"माइलॉव, तुम यहाँ के जज पावेल लूकिश को नहीं जानते?...खैर, न सही।" (उसने अपना गला साफ़ कर लिया और आँखें मल लीं।) "खैर, तुम्हें ठीक-ठीक बताता हूँ। यह घटना हुई थी लेंट में, बरफ़ गलने के दिनों में। मैं उनके घर पर—जज साहब के यहाँ बैठा ताश खेल रहा था। सहसा (डाक्टर 'सहसा' शब्द का बार-बार प्रयोग कर रहा था) मुझे किसी ने कहा—'एक नौकर बुला रहा है।' मैंने कहा—'क्या काम है?' उत्तर मिला—'वह एक चिट्ठी लाया है। किसी रोगी ने भेजा होगा।' 'कहाँ है चिट्ठी?' मैंने कहा। रोगी ही की चिट्ठी है—बहुत ठीक—तुम तो जानते हो—यही हमारी रोटी है।...पर बुलाने वाली थी एक औरत; वह भी विधवा। उसने लिखा था—'मेरी पुत्री मृत्यु-शय्या पर पड़ी है। भगवान् के नाम पर जल्दी आओ।' और भी लिखा था—'तुम्हारे लिए घोड़ा भेजा है,...खैर, यह तो ठीक हुआ। किन्तु उसका घर था बीस मील दूर। आधी रात का समय हो गया था, और सड़कों की हालत को तो कुछ न पूछो! बुलाने वाली थी गरीब। दो चाँदी के टुकड़ों के सिवा अधिक पाने की आशा तो क्या होती? उतने ही का

भरोसा नहीं था। चाहे जो हो, तुम जानते हो कर्त्तव्य-पालन सबसे पहला काम है। एक नरदेहधारी का प्राण संकट में था। मैं अपने पत्ते प्रान्तीय कमीशन के एक सदस्य कालिओपिन को सौंपकर घर लौट आया। मैंने देखा, द्वार पर एक छोटा-सा मनहूस पींजड़ा खड़ा था। किसान के मोटे घोड़े उसमें जुते थे। गाड़ीवान आदर प्रदर्शित करने के लिए अपनी टोपी उतारे बैठा था। ख़ैर, मैंने मन ही मन सोचा, 'यह स्पष्ट है कि इस बीमार के घर वाले लक्ष्मी के लाड़ले तो नहीं हैं।' ...क्यों हँसते हो तुम? किन्तु मैं बता देना चाहता हूँ कि मेरे जैसे गरीब को सभी बातों का विचार करना पड़ता है।...यदि गाड़ीवान एक राज-कुमार की तरह से शान से बैठा हो, अपनी टोपी को छुए भी नहीं और अपनी दाढ़ी के भीतर नाक-भौं सिकोड़कर बार-बार अपना कोड़ा फटकारता हो, तो निश्चय जानो, छः रूबल से कम तो नहीं। पर इस मामले में तो बात ही दूसरी थी। 'चाहे जो हो,' मैंने सोचा—'और कोई उपाय भी तो नहीं। कर्त्तव्य सर्वोपरि है।' जरूरी दवा-दारू लेकर मैं चल पड़ा। तुम इस बात का विश्वास करोगे? मैं तो जैसे-तैसे करके वहाँ पहुँचा। सड़क तो नरक को भी मात कर रही थी। जगह-जगह पानी और बरफ़ पड़े थे। यही नहीं, रास्ते के नदी-नालों में बाढ़ आ रही थी। चाहे जैसे हो, वहाँ पहुँच गया। घास-फूस का बना छोटा-सा घर था। खिड़कियों में से प्रकाश दिखाई दे रहा था; उसका अभिप्राय था—वे मेरी प्रतीक्षा में हैं। सबसे पहले मेरी भेंट हुई एक आदरणीय वृद्धा से। 'बचाओ, उसे बचाओ!' उसने कहा—'वह तो मर रही है।' मैंने कहा—'इतनी चिंता मत करो—लड़की कहाँ है?' 'इधर आओ'—मैं एक साफ़-सुथरे छोटे से कमरे

में पहुँचा। कोने में दीपक जल रहा था; बिस्तरे पर पड़ी थी एक बीस बरस की बेहोश कन्या। ताप से वह जल रही थी। साँस भारी थी—बुखार का ज़ोर था। उसकी दो बहनें और थीं। बिचारी दोनों रो रही थीं। 'कल' उन्होंने बताया—'वह राज़ी-खुशी थी, उसने सदा की भाँति खाया-पीया था। आज सबेरे उसे सिरदर्द की शिकायत हुई और शाम को अकस्मात् यह हालत हो गई, आप देख ही रहे हैं।' मैंने फिर कहा—'चिन्ता की कोई बात नहीं।' तुम जानते हो, डाक्टर का तो यही काम है—मैं उसके पास गया, उसकी फ़स्द खोलकर मैंने राई के लेप का आदेश दिया, और पीने की दवा भी बता दी। इतनी देर तक मैं देख रहा था एकटक उसकी ओर। ओह भगवान्, मैंने वैसा मनोहर मुखड़ा कभी नहीं देखा था। एक शब्द में वह थी—सुन्दरता से भी सुन्दर! मैं दयाभाव से उद्वेलित हो उठा। ओह! ऐसा प्रिय रूप! ये आँखें!... खैर, भगवान् के अनुग्रह से वह ठीक होती दिखाई दी। उसे पसीना आने लगा। धीरे-धीरे होश भी होने लगा। चारोंओर देखकर अपने मुँह पर हाथ फेरकर वह मुस्करा दी।...उसकी बहनें उस पर झुक गईं। उन्होंने पूछा—'क्यों कैसी हो?' 'ठीक हूँ' कहकर उसने करवट बदल ली। मैं उसे देखता रह गया। उसे नींद आ गई। 'रोगी को अब अकेले रहने देना चाहिये—मैंने कहा। एक नौकरानी को छोड़कर हम सब लोग बाहर आ गए। बाहर बैठक में एक टेबिल पर चाय की देगची चढ़ी हुई थी। पास में रक्खी थी हलकी शराब की बोतल। इस पेशे में इन चीज़ों के बिना काम भी तो नहीं चलता। उन्होंने मुझे चाय पिलाकर रात-भर वहीं टिकने को कहा। मैंने स्वीकार कर लिया।

रात्रि को उस समय जाता भी तो कहाँ ? वृद्धा रोती-कलपती रही। 'यह क्या?' मैंने कहा, 'लड़की बच जायगी, आप चिन्ता क्यों कर रही हैं ? दो बजने को आया, आप जाकर थोड़ा विश्राम कर लें।' 'कोई नई बात हो तो आप मुझे बुला लेंगे न ?' 'हाँ, हाँ ज़रूर।' वृद्धा चली गई। दोनों लड़कियाँ भी अपने कमरे में चली गई। मेरे लिए उन्होंने बैठक ही में बिछौना बिछा दिया। मैं लेट तो गया; पर मुझे नींद नहीं आई। मैं थका तो बहुत था; पर उस बीमार लड़की का ध्यान मेरे दिमाग से हटता ही नहीं था। आखिर मैं उसे नहीं सह सका। सहसा उठ खड़ा हुआ। मैंने सोचा—'जाऊँ रोगी की देख-भाल कर आऊँ।' बैठक की बगल ही में उसका शयनागार था। आहिस्ते से मैंने उसका दरवाज़ा खोला—ओह, मेरी छाती किस तरह धड़क रही थी! मैंने देखा—नौकरानी सो रही थी—मुँह बाए खर्राटे ले रही थी। रोगिणी कन्या अपने दोनों हाथ फैलाकर मेरी ओर मुँह करके लेटी हुई थी; दुखिया बेचारी ! मैं उसके पास गया······सहसा अपने नेत्रद्वय उघाड़-कर वह मेरी ओर देखने लगी। 'कौन है ? कौन है ?' मैं घबड़ा गया। 'डरो मत,' मैंने कहा—'मैं हूँ डाक्टर; मैं तुम्हारी तबीयत का हाल देखने आया हूँ।' 'तुम ! तुम हो डाक्टर ?' 'हाँ, डाक्टर। तुम्हारी माताने मुझे शहर से बुलाया है। हमने तुम्हारी फस्द खोल दी है। हाँ, अब तुम नींद ले लो। भगवान् ने चाहा तो तुम एक-दो दिन में भली-चंगी हो जाओगी।' 'ओह ! बहुत ठीक, बहुत ठीक डाक्टर ! मुझे मरने मत देना······कृपा करके, ज़रूर।' 'ऐसी बात क्यों करती हो तुम ? भगवान् सब अच्छा करेगा।' मैंने सोचा—उसे फिर ज्वर हो आया है। मैंने

उसको नब्ज़ देखी। हाँ, ज्वर हो गया था। उसने मेरी ओर देखकर मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया। 'मैं तुम्हें बताऊँगी कि मैं क्यों नहीं मरना चाहती, हाँ ज़रूर बताऊँगी।......हम अकेले ही तो हैं! कृपा करके और किसी से नहीं...किसी को भी नहीं...सुनो...।' मैं नीचे झुक गया। उसने मेरे कान में अपने ओंठ लगा दिये। उसका केशपाश मेरे गालों पर झुक गया—सत्य कहता हूँ मेरा सिर चक्कर खाने लगा।...मैं उसकी एक भी बात समझ नहीं सका, ।...ओह, वह प्रलाप कर रही थी।......वह कानाफूसी करती ही रही। वह इतनी जल्दी-जल्दी बोल रही थी, मानों वह कोई भाषा ही नहीं थी। अपनी गाथा समाप्त करके उसने तकिए पर अपना सिर पटककर मुझे अँगुली दिखाते हुए कहा—'याद रखना डाक्टर, किसी को भी नहीं।' मैंने उसे शांत करके पीने को कुछ दिया। नौकरानी को जगाकर मैं बाहर चला आया।

इतना कहकर डाक्टर ने ज़ोर से तमाखू सूँघी। उसके प्रभाव से वह कुछ देर तक मन्दमति-सा हो गया।

"ख़ैर," उसने पुनः कहना आरम्भ किया—"मेरी आशा के प्रतिकूल रोगिणी की अवस्था दूसरे दिन भी सुधरती नहीं दिखाई दी। मैं विचार में पड़ गया। मेरे दूसरे रोगी प्रतीक्षा में थे। मैंने वहीं रहने का निश्चय कर लिया......और तुम जानते हो, मैं उसकी अवहेलना भी नहीं कर सकता था। यदि ऐसा करता, तो उससे मेरी पूछ कम पड़ जाती। रोगिणी का प्राण सङ्कट में था। दूसरे, सच तो यह है कि उसके प्रति मेरा आकर्षण बढ़ता जाता था। परिवार भर को मैं चाहने लगा। वे लोग थे निर्धन, पर थे बड़े भले।...उनका पिता विद्वान् और लेखक था। निस्संदेह

वह धनहीन ही था; किन्तु अपनी मृत्यु के पहले उसने अपने बाल-बच्चों के शिक्षण का सुप्रबन्ध कर दिया था। पुस्तकों का एक समूह वह अपने पीछे छोड़ गया था। मैं रोगिणी की सँभाल दिलोजान से रखता था। इसलिए, अथवा किसी दूसरे कारण से परिवार के सभी लोग मुझे इस तरह प्यार करने लगे, मानो मैं भी उन्हीं के कुटुम्ब का एक व्यक्ति हूँ।......इधर सड़कों की हालत और भी खराब होगई। आवाजाही का व्यवहार बन्द होगया। शहर से दवा मँगाने का साधन भी नहीं रह गया......रोगिणी बाला की अवस्था में कोई सुधार नहीं हो रहा था······दिन पर दिन—दिन पर दिन···किन्तु······" (यहाँ डाक्टर थोड़ी देर के लिए रुक गया) "सच कहता हूँ, मुझे मालूम नहीं; आगे की बात कैसे कहूँ।···" (उसने पुनः तमाखू सूँघकर, खाँसकर, चाय की एक घूँट पी ली।) "ख़ैर, बिना नमक-मिर्च के सब बातें कह दूँगा। मेरी रोगिणी...आगे कैसे कहूँ?...ख़ैर, वह थी मेरे प्रेम में पागल... अथवा, नहीं; ऐसा नहीं था कि वह प्रेम में पागल थी...चाहे जो हो... सचमुच, उसे कैसे बताऊँ?" (डाक्टर नीचे की ओर देखने लगा, उसका चेहरा सुर्ख होगया।) "नहीं," वह शीघ्र बोल उठा,—"प्रेम में सचमुच मनुष्य को इतना ऊँचा अनुमान नहीं करना चाहिए। वह थी पढ़ी-लिखी और चतुर; पर मैं तो मेरी लैटिन भी भूल गया था। खूबसूरती में भी" (डाक्टर ने हँसकर अपनी ओर देखा), "मेरे पास अभिमान करने जैसी कोई वस्तु नहीं है। किन्तु सर्वशक्तिमान् ने मुझे मूर्ख बनाकर इस जगत् में नहीं भेजा है। मैं स्याह को सफ़ेद नहीं समझ बैठता; मैं तो एक बात जानता हूँ—मैं साफ जान गया कि एलेक्ज़ेंड्रिया

ऐरिड्याना—यही उसका नाम था—मेरे प्रति प्रेम का अनुभव नहीं कर रही थी; किन्तु उसके मन में मेरे प्रति मैत्री और आदर या ऐसी ही कोई भावना अवश्य थी। मुझे ही क्या? स्वयं उस युवती को भी अपने मनोभावों के सम्बन्ध में ग़लतफ़हमी हो गई थी। चाहे जो हो, उसकी ऐसी ही प्रवृत्ति हो रही थी। अब तुम उसका चाहे जो अर्थ लगा सकते हो। "किन्तु" डाक्टर ने—जो अब तक ये असम्बन्धित वाक्य बिना साँस लिए और अत्यन्त रूप से व्याकुल-सा होकर कह रहा था, कहा—"मैं भी बहुत भटक रहा हूँ। इस तरह तो तुम एक भी बात नहीं समझोगे। ख़ैर, माफ़ करना, अब मैं सब बातें क्रमबद्ध सुनाऊँगा।"

चाय का एक गिलास पीकर उसने शांत स्वर में कहना आरम्भ किया—

"हाँ, तो। मेरी रोगिणी की हालत बिगड़ती ही चली गई। कैसे डाक्टर हो तुम? तुम्हें यह भी मालूम नहीं कि बेचारे रोगी के मन में क्या गुज़रती है, जब वह यह जान जाता है कि अब तो वह रोग के चंगुल में फँस गया? उसका आत्म-विश्वास उठ जाता है। तुम हो जाते हो कायर। ओह! वह तो वर्णनातीत है। तुम अपनी सारी कला को भूल गये-से मालूम देते हो; रोगी का भी तुम पर से विश्वास उठ गया, और दूसरे लोग भी तुम्हारी घबराहट पर आँख रखने लग जाते हैं; रोग के सम्बन्ध में अपनी विमुख राय देने लग जाते हैं; लोग सन्देह की नज़र से देखने लग जाते हैं; कानाफूसी करते हैं।...यह तो बड़ा भयानक होता है। इस रोग का भी तो कोई इलाज होना चाहिए? क्या यही बात नहीं है? अज़माकर

देखो। पर ऐसा तो नहीं होता। दवा को अपना गुण दिखाने का तो समय ही नहीं दिया जाता।...एक इलाज को छोड़कर दूसरे के पीछे भागते हो। कभी दवा-दारू की कोई पुस्तक हाथ लग गई, तो वही डाक्टर बन बैठता है।...इधर बेचारे रोगी का प्राण-सङ्कट बढ़ता जाता है। दूसरा डाक्टर होता तो शायद रोग का निवारण हो जाता। 'दूसरों से सलाह तो करनी ही चाहिए।' तुमने कहा, 'सारी जिम्मेदारी मैं अकेला ही कैसे लूँगा?' और ऐसे समय तुम कितने भोंदू दिखाई देते हो! खैर, धीरे-धीरे यही सब सहन होने लगता है। इन बातों की परवा ही नहीं रह जाती। रोगी मर गया—पर इसमें तुम्हारा क्या दोष है? तुमने तो नियमानुसार उपचार कर दिया। किन्तु इससे भी अधिक कष्ट की बात है अयोग्य होने पर भी अपने प्रति अंध-विश्वास का अनुभव। अलेक्ज़ेंड्रा एंड्रियाना के परिवार का यही अंध-विश्वास मेरे प्रति था। वे यह भूल गए थे कि उनकी बेटी का जीवन संकटापन्न है। मैं भी उन्हें आश्वासन देता रहा कि कोई डर की बात नहीं है। किन्तु मेरा मन तो शंकित था ही। उस पर एक आफ़त यह भी थी कि सड़कों की ख़राबी के कारण गाड़ीवान दवा लाने में सारा दिन बिता देता। मैं रोगिणी के पास से नहीं हटता। मैं हट ही नहीं सकता था। मैं उसे मनोरंजक कहानियाँ सुनाता रहता; उसके साथ ताश खेलता रहता। रातभर उसके पास बैठकर मैं उसकी सँभाल रखता। वृद्धा माता आँखों में आँसू भरकर मुझे धन्यवाद देती; किन्तु मैं मन ही मन सोचता—'इस कृतज्ञता-प्रकाश का मैं अधिकारी नहीं।' मैं स्पष्ट और सच कहता हूँ—उसे अब गोपनीय रखने से मतलब भी नहीं—मैं अपनी रोगिणी

को प्यार करने लगा था। और अलेक्ज़ैंड्रा एण्ड्रियाना को भी मेरा रोग लग गया था। कभी-कभी तो वह मेरे सिवा किसी दूसरे को अपने पास आने ही नहीं देती थी। वह मुझसे बातें करती, प्रश्न पूछती—"मैंने कहाँ शिक्षा पाई है? मैं कैसे रहता हूँ? मेरे नाते रिश्तेदार कौन हैं? मैं किन्हें देखने अक्सर जाया करता हूँ?" मैं जानता था कि उसे ज्यादा नहीं बोलना चाहिए। किन्तु उसे रोकना—दबाव डालकर रोकना—मेरे लिए सर्वथा असम्भव था। कभी-कभी मैं अपने सिर को हाथों पर थामकर अपने-आप प्रश्न करता—"अरे खल, तू यह क्या कर रहा है?"...... और वह मेरे हाथ को अपने हाथ में लेकर, बहुत देर तक मेरी ओर टुकुर-टुकुर ताककर, एक आह भरकर, करवट बदल लेती और कहती—'कैसे भले हो तुम?' उसके हाथ ज्वर की ज्वाला से जलते रहते। उसके विशाल नेत्र निस्तेज-से होगए।...'हाँ', वह कहती—'तुमतो बड़े भले हो; तुम हमारे पड़ोसियों की तरह नहीं हो।...नहीं, तुम वैसे नहीं हो।...ओह! मैं अभी तक तुम्हारे परिचय में क्यों नहीं आई थी?' 'अले-क्ज़ेंड्रा एण्ड्रियना! चित्त को शांत करो', मैं कहता—'मैं अनुभव करता हूँ, मेरा विश्वास करो। नहीं जानता, मैंने कैसे और क्या प्राप्त किया है...किन्तु देखो, तुम चित्तको शांत रखो।...सब ठीक होगा, तुम जल्दी ही स्वस्थ हो जाओगी।' "हाँ, तुम्हें एक बात तो बता दूँ।" आगे की ओर झुककर अपनी भौंवों को उठाकर डाक्टर ने कहा—"वे पड़ोसियों से बहुत ही कम मिलते-जुलते थे। क्योंकि ओछे लोग उनकी बराबरी के नहीं थे और धनी लोगों की मैत्री के बीच में अभिमान बाधक था। सच कहता हूँ, उनके परिवार का आचार-व्यवहार कुछ अनोखा ही

था। मेरे लिए तो यह संतोष की बात थी। वह दवा लेती भी, तो मेरे ही हाथ से...मेरे हाथ का सहारा लेकर वह निर्धन कन्या बैठकर दवा लेती और मेरी ओर ताकती रहती।...उसे देखकर मेरा हृदय फटने लगता। हाय! उसकी हालत दिन पर दिन बिगड़ती जा रही थी। वह मर जायगी। मैं सोचता, उसका अन्त अनिवार्य है। मेरी बात मानो, उसके बदले मैं क़ब्र में खुशी-खुशी चला जाता; उसकी माता और बहनें मेरी ओर आतुरता से देखती रहतीं...उनका यह विश्वास मुझे सालता रहता। 'क्यों? अब कैसी है!' 'ओह, बहुत ही ठीक।' मेरी बुद्धि मुझे धोखा दे रही थी। एक रात्रि को मैं रोगिणी की शैया के समीप बैठा था। नौकरानी भी थी, पर वह पड़ी ऊँघ रही थी। उस बेचारी का भी दोष नहीं था। दिन भर की मेहनत से थकी हुई थी। अलेक्ज़ैंड्रा एंड्रियाना की हालत उस दिन बहुत ख़राब हो रही थी; ज्वर का ज़ोर बढ़ रहा था। मध्यरात्रि तक वह बिछौने में पड़ी कराह रही थी। आख़िर उसे नींद आगई। कम से कम बिना हिले-डुले पड़ी रही। पवित्र प्रतिमा के सामने दीपक जल रहा था। मैं सिर झुकाए वहाँ बैठा था। रह-रह कर ऊँघता भी जाता था। सहसा मैंने अनुभव किया कि कोई मुझे स्पर्श कर रहा है। मैंने घूमकर देखा।...अलेक्ज़ैंड्रा एंड्रियाना मेरी ओर अर्थ-भरी दृष्टि से निहार रही थी...उसके ओंठ अधखुले थे; कपोल जल रहे थे। 'यह क्या?' 'डाक्टर! मैं मर जाऊँगी क्या?' 'ओ, दया-मय देव!' 'नहीं डाक्टर, नहीं; कृपा करके यह मत कहो कि मैं जी जाऊँगी...नहीं, ऐसा कदापि मत कहो...सुनो! भगवान् के नाम पर असली हालत को मत छिपाओ।' उसकी साँस ज़ोर-ज़ोर से चल रही

थी। 'यदि मैं यह जान जाऊँगी कि मैं निश्चय ही मर जाऊँगी...तो मैं तुम्हें सब बातें बता दूँगी! मेरी बात मानो। सुनो, मेरी आँखों में नींद का नाम भी नहीं है। मैं इतनी देर से तुम्हारी ही ओर देखती रही हूँ।...मुझे तुम्हारा भरोसा है; तुम भले आदमी हो, विश्वासपात्र हो; इस जगत् की पवित्रतम वस्तु मैं तुम्हें सौंपती हूँ—सच-सच कहो। यदि तुम जान जाते कि यह बात कितनी आवश्यकीय है...डाक्टर! भगवान् के नाम पर सच कहो...क्या मैं संकटापन्न हूँ?' 'मैं क्या कहूँ, अलेक्ज़ैंड्रा एंड्रियाना?' 'तुम्हें मेरे सिर की शपथ; मेरी विनय सुनो!' 'मैं तुमसे कुछ भी नहीं छिपा सकता' मैंने कहा—'अलेक्ज़ैंड्रा एंड्रियाना! तुम्हारे प्राण अवश्य सङ्कट में हैं। किन्तु वह भगवान् दयामय हैं।' 'मैं मरूँगी, ज़रूर मरूँगी।' मुझे मालूम पड़ा, वह खुश होगई। उसका चेहरा खिल उठा; मैं तो भयभीत होगया। 'डरो मत; डर किस बात का? मुझे तो मृत्यु का तनिक भी भय नहीं!' वह सहसा उठ बैठी और अपनी कोहनियों का सहारा लेकर झुक गई। 'अब...हाँ, मैं कह सकती हूँ,—मैं तुम्हें हृदय से धन्यवाद देती हूँ... तुम बड़े दयालु और सज्जन हो—मैं तुम्हें प्यार करती हूँ!' मैं उसकी ओर निहारने लगा। दासानुदास की भाँति। ओह, वह स्थिति कितनी भयावह थी? 'क्यों? सुना? मैं प्यार करती हूँ तुम्हें!' 'अलेक्ज़ैंड्रा एंड्रियाना! मैं इस योग्य हूँ?' 'नहीं, नहीं, तुम मेरी बात नहीं समझे।'

...सहसा उसने अपनी भुजाएँ पसार कर, मेरे सिरको अपने हाथों में पकड़कर चूम लिया।...सच मानो, मैं तो ज़ोर से चिल्ला उठा। मैंने घुटने टेककर तकिए में अपना मुँह छिपा लिया। उसने और कुछ

नहीं कहा; उसकी अँगुलियाँ मेरे बालों को सहलाती रहीं। मैं सुन रहा था; वह रो रही थी। मैं उसे सांत्वना देने लगा, विश्वास कराने लगा।...सचमुच मुझे मालूम नहीं, मैंने उस समय क्या कहा। 'देखो, नौकरानी जाग जायगी', मैंने उसे कहा—अलेक्ज़ैंड्रा एंड्रियाना ! मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ...मेरा विश्वास करो...चित्त को शांत करो।' 'बहुत हुआ, बहुत हुआ !' उसने साग्रह कहा—'उनकी चिन्ता मत करो।' सभी को जग जाने दो; आने दो, सबको यहाँ आ जाने दो—इस बात की कोई चिन्ता नहीं; तुम देखते हो, मेरा अन्तिम समय उपस्थित हो गया है।...तुम्हें किस बात का भय है ? तुम क्यों डर रहे हो ? सिर उठाओ।...अथवा, संभवतः तुम मुझे प्यार नहीं करते होगे; मेरा अनुमान गलत होगा।...ऐसा हो, तो कृपापूर्वक मुझे क्षमा करना। 'अलेक्ज़ैंड्रा एंड्रियाना ! तुम यह क्या कर रही हो ?...मैं तो तुम्हें प्यार करता हूँ !' अलेक्ज़ैंड्रा एंड्रियाना ने मेरी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर भुजाएँ पसार दीं। 'मुझे अपनी भुजाओं में भर लो।' सच कहता हूँ, नहीं जानता, उस रात को मैं पागल क्यों नहीं होगया। मैं अनुभव कर रहा था कि रोगिणी अपनी मृत्यु को बुला रही थी। मैं स्पष्ट देख रहा था कि वह आपे में नहीं थी। मैं जान गया कि यदि उसे यह विश्वास नहीं हो जाता कि वह मरणासन्न है, तो वह मेरी कल्पना भी नहीं करती; और वास्तव में बात यह है कि बीस बरस की उमर में बिना प्रेम से परिचित हुए मरना भी आसान नहीं है; वह इसी बात की यातना भोग रही थी। इसलिए निराशा में उसने मुझे ही पकड़ लिया, क्यों ? अब तो समझे ? किन्तु उसने मुझे अपने बाहु-पाश में जकड़

लिया, छोड़ती ही नहीं थी। 'दया करो, अलेक्ज़ैंड्रा एंड्रियाना! मुझ पर ही नहीं, अपने आप पर भी'—मैंने कहा। 'क्यों' ?, उसने कहा—'विचार किस बात का है ? तुम जानते हो मैं मरूँगी, तो ज़रूर।...' वह बार-बार इसी बात को दोहराती थी।...'यदि मुझे यह मालूम हो जाय कि मैं स्वस्थ होकर पुनः युवती कन्या बन जाऊँगी तो यह लज्जा की बात होगी...सचमुच लज्जा की...अब क्या है ?' 'पर कौन कहता है कि तुम मर जाओगी ?' 'ओह, नहीं तुम मुझे धोखा नहीं दे सकोगे; तुम्हें झूठ बोलना भी नहीं आता—अपने चेहरे की ओर तो देखो।...' "तुम ठीक हो जाओगी अलेक्ज़ैंड्रा एंड्रियाना! मैं तुम्हारा इलाज करूँगा; तुम्हारी माँ का आशीर्वाद लेकर हम दोनों एक हो जायँगे—बहुत ही आनन्दित हो जायँगे हम !' 'न, न, तुमने कह दिया है; मैं अवश्य मरूँगी...तुमने मुझे वचन दिया है...तुमने मुझे कह दिया है।...' ओह, कैसी क्रूर बात थी यह—कई कारणों से क्रूर। और देखो कभी कभी एक छोटी-सी बात, देखने में तो तुच्छ मालूम देती है; किन्तु उसका परिणाम कितना दुःखद हो जाता है। वह मेरा नाम पूछ बैठी; जाति नहीं, मेरा अपना नाम—मुझ अभागे का नाम—ट्रिफ़ॉन इवानिच। घर में सभी मुझे डाक्टर कहते। इस बात का कोई उपाय भी तो नहीं था। मैंने कहा—'ट्रिफ़ान, श्रीमतीजी।' उसने भृकुटी चढ़ाकर, सिर हिलाकर, फ्रेंच में कुछ गुनगुनाकर कहा—एक अप्रिय सी बात !—वह हँस पड़ी—अप्रियता से ! इसी प्रकार सारी रात उसके साथ बीत गई। सवेरा होने के पहले ही मैं बाहर चला गया। उस समय मैं पागल-सा हो रहा था। इसके बाद दिन उगने पर चाय पीकर

मैं उसके पास गया। ओ भगवन् ! मैं तो उसे पहचान ही नहीं सका। और लोग तो उससे अच्छी हालत में ही पाँव पसार देते हैं। सच कहता हूँ, शपथ-पूर्वक कहता हूँ—मेरी समझ में ही नहीं आता—उस कष्टानुभव में मैंने कैसे समय बिताया। और तीन रात और तीन दिन तक मेरी रोगिणी जीवन और मृत्यु के बीच झूलती रही। वे रातें ! कैसी-कैसी बातें कहीं उसने ? और उस अन्तिम रात को—तुम स्वयं उसकी कल्पना कर लो—मैं उसके पार्श्व में बैठा था और भगवान् से केवल एक बात की प्रार्थना कर रहा था;—'इसे उठा लो' मैंने कहा—'शीघ्र हो, और साथ में मुझे भी।' सहसा वृद्धा माता ने कमरे में प्रवेश किया। एक दिन पहले ही मैंने उसे—माता को—कह दिया था कि अब बहुत कम आशा शेष है। अच्छा हो, किसी पादरी को बुला लिया जाय। अपनी माता को देखकर रोगिणी युवती ने कहा—'अच्छा हुआ तुम आगई; हमारी ओर देखो, हम दोनों एक दूसरे को प्यार करते हैं—हम वचन-बद्ध हो चुके हैं।' 'यह क्या कहती है, डाक्टर ? यह क्या कहती है ?' मेरा चेहरा फीका होगया। 'यह प्रलाप में है।' मैंने कहा, 'ज्वर।' किन्तु वह बोल उठी—'चुप, चुप; मुझे तो अब तुम दूसरी ही बात कह रहे थे; और तुमने मेरी मुद्रिका भी लेली है। अब क्यों बहाना बनाते हो ? मेरी माँ बड़ी भली है—वह क्षमा कर देगी—वह समझ जायगी-मैं तो मरणासन्न हूँ।...मुझे झूठ बोलने से प्रयोजन ? लाओ, अपना हाथ लाओ।' मैं कूदकर एक झपाटे में कमरे के बाहर होगया। वृद्धा अवश्य समझ गई होगी कि बात क्या है।

"ख़ैर, मैं अब आपको अधिक हैरान नहीं करूँगा। उन सब बातों का संस्मरण भी कष्टदायक है। रोगिणी दूसरे दिन चल बसी। भगवान् उसकी आत्मा को शांति प्रदान करे।" एक आह भरकर जल्दी में डाक्टर ने इतना और कहा—"मृत्यु के पहले परिवार के लोगों को बाहर भेजकर उसने अकेले में मुझे अपने पास बुलाया।"

"क्षमा करना मुझे," उसने कहा—"संभवतः मुझे तुम्हें दोष देना है...मेरा रोग...विश्वास रखो, मैंने तुमसे अधिक और किसी को प्यार नहीं किया है...मुझे भूल मत जाना...मेरी मुद्रिका को अपने पास रखना।"

डाक्टर ने मुँह फेर लिया, मैंने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया।

"आह !" उसने कहा, "किसी दूसरी बात की चर्चा छेड़ो, अथवा बोलो ताश का कौन-सा खेल खेलोगे ? मेरे जैसे व्यक्ति का काम ऐसे ऊँचे मनोभावों की आलोचना करना नहीं है। मेरे लिए तो बस एक ही विचारणीय विषय है—किस प्रकार बुरा-भला कहने से औरत और रोने-चिल्लाने से बच्चे चुप रह सकते हैं। तुम जानते हो, तभी से मुझे विवाह-बन्धन में बँध जाना पड़ा है...मैंने एक व्यापारी की कन्या से शादी कर ली—दहेज में मिले पूरे सात हज़ार। उसका नाम है अक-लिना। ट्रिफ़ान के साथ उसकी ठीक पटती है। हाँ, वह है तो रूखे स्वभाव की, पर ख़ैरियत यही है कि वह दिन भर पड़ी सोती रहती है।...ख़ैर, बोलो कौन-सा खेल होने दूँ ?

आधी-आधी पेनी की बाज़ी लगाकर हम दोनों खेलने लगे। ट्रिफ़ान इवानिच ढाई रूबल जीतकर अपनी विजय पर प्रसन्न होकर देरी से घर पहुँचा।

रूस : : : ऐन्टन चेखव

होड़

शरद् ऋतु की अँधेरी रात का समय था। वह बूढ़ा वणिक् अपने कमरे में इधर-उधर टहलता हुआ पन्द्रह वर्ष पहले की अपनी उस गोष्ठी की बात सोच रहा था। उस प्रीति-सम्मेलन में बहुत से चतुर व्यक्ति आए थे और बहुत ही मनोरञ्जक बातें हुई थीं। आपस में फाँसी की सज़ा की चर्चा भी छिड़ी। आमन्त्रित सज्जनों में से प्रायः सभी ने मृत्यु-दण्ड का विरोध किया। उनकी राय में दण्ड की यह प्रणाली बेहूदी, अधार्मिक और एक खिस्ती सरकार के लिए अनुचित सिद्ध हुई। कुछ ने यह राय प्रदर्शित की कि फाँसी के बदले आजन्म कैद की सज़ा ही पर्याप्त समझी जानी चाहिए।

"मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ।" वणिक् ने कहा—"न तो मुझे फाँसी की सज़ा ही का अनुभव है और न आजन्म-कैद का। किन्तु यदि सब प्रकार से विचार किया जाय, तो मैं समझता हूँ कि जेल भेजने

की अपेक्षा मृत्यु-दण्ड ही अधिक मानुषी और उचित सिद्ध होगा। कौन है अधिक दयालु? एक ही क्षण में प्राण हनन कर देने वाला? अथवा वर्षों तक दम घोट-घोट कर जान लेने वाला?"

"दोनों हो अन्यायी हैं," आमंत्रित सज्जनों में से एक ने कहा—"क्योंकि, दोनों का एक ही उद्देश्य है—प्राण लेना। राज्य परमेश्वर तो है नहीं। उसे क्या अधिकार है कि जिस वस्तु को वह वापस नहीं लौटा सकता, उसे छीन ले?"

मण्डली में एक पचीस वर्ष का कानून-दाँ युवक भी था। राय पूछने पर उसने कहा—

"मृत्यु-दण्ड और आजन्म कैद दोनों ही का अनौचित्य समान है। तो भी, मुझे दोनों में से एक को चुन लेने को कहा जाय, तो मैं निश्चय ही जन्म-कैद को पसन्द करूँगा। मृत्यु की अपेक्षा तो किसी भी तरह का जीना अच्छा ही है।"

एक ख़ासा वाद-विवाद छिड़ गया। वणिक् था जवान और धैर्य-हीन; सहसा क्रुद्ध होकर मेज़ पर ज़ोर से हाथ पटककर, उस वकील की ओर घूमकर, उसने कहा—

"सब झूठ है। मैं बीस लाख की बाज़ी लगाता हूँ, तुम पाँच वर्ष भी एक कोठरी में नहीं टिक सकते!"

"सचमुच तुम्हारी मन्शा है, तो मैं भी वचन दे सकता हूँ कि मैं पाँच नहीं, पन्द्रह वर्ष तक वहाँ से नहीं हिलूँगा।"

"पन्द्रह? शर्त्त पक्की हुई। सज्जनो! मैं बाज़ी लगाता हूँ, बीस लाख की!"

"मंज़ूर है। तुम बाज़ी लगाते हो बीस लाख की और मैं बाज़ी लगाता हूँ मेरी स्वाधीनता की!" वकील ने उत्तर दिया।

मज़ाक ही मज़ाक में एक बेहूदी होड़ होगई। वणिक् के धन का पार नहीं था। लाखों की सम्पत्ति उसके पास थी। इसीके साथ वह था एक बिगड़ा हुआ सनकी। भोजन के समय उसने वकील से मज़ाक़ करते हुए कहा—

"अक़्ल तो दुरुस्त है न वकील साहब? मेरे लिए तो बीस लाख कोई बड़ी बात नहीं है। पर तुम अपने जीवन के बहुमूल्य तीन-चार वर्ष मिट्टी में मिला दोगे। तीन-चार ही इसलिए कि इससे ज़्यादा तुम एक काल-कोठरी में नहीं टिक सकोगे। यह भी याद कर लेना कि स्वेच्छा से क़ैद में बैठा रहना मजबूरी की जेल से कहीं अधिक असह्य है। इच्छा करते ही तुम बंधन-मुक्त हो सकते हो, इस बात के विचार से तुम्हारा सारा जीवन विषमय हो जायगा। मुझे तो तुम पर दया आती है।"

इसी घटना-क्रम को याद करके, इस कोने से उस कोने तक टह-लता हुआ, वणिक मन ही मन सोच रहा था—

"मैंने वैसी होड़ क्यों की? क्या लाभ हुआ? या तो वह जवान क़ानून-दाँ अपने जीवन के पन्द्रह वर्ष मिट्टी में मिला दे, या मैं बीस लाख यों ही फेंक दूँ! क्या इससे इस बात का निर्णय हो सकता है कि फाँसी और आजन्म कैद में से कौन-सा दण्ड अच्छा या बुरा है? कभी नहीं। बिल्कुल फालतू बात है। यह मेरे लिए तो एक धनवान की सनक थी, और वकील के मन में था धन-सम्पति का लोभ।"

उस संध्या के प्रीति-सम्मेलन के बाद का घटना-क्रम भी उसकी आँखों के आगे नाचने लगा। यह तय हो गया कि वणिक् के बाग़ में एक ओर कड़ी देख-रेख में वकील कैद रहेगा। यह भी स्वीकार किया गया कि इस समय में उसे देहली पार करने का, मनुष्यों का चेहरा भी देखने और उनकी बोली सुनने का, पत्र और समाचार-पत्र प्राप्त करने का अधिकार नहीं रहेगा। हाँ, उसे गायन-वादन, पुस्तक-पाठन, पत्र-लेखन, मद्य और धूम्र-पान की स्वतन्त्रता रहेगी। इक़रारनामे के अनुसर वह बाहरी जगत् से केवल एक छोटे से वातायन के द्वारा सम्पर्क रख सकता था, जो ख़ास इसी उद्देश से बनाया गया था। वह भी बिना ज़बान हिलाए। इक़रारनामे में ज़रा-ज़रा-सी बात का उल्लेख था, जिससे बन्धन सब प्रकार से एकाकी हो गया था। उसके अनुसार वकील १४ नवम्बर, १८७० के ठीक बारह बजे से १४ नवम्बर १८८५ के ठीक बारह बजे तक कैद में रहने के लिए बाध्य था। शर्तों को तनिक भी भङ्ग करने का प्रयत्न करने पर अथवा निश्चित समय से दो मिनिट पहले भी बाहर निकल आने पर वणिक् बीस लाख देने के बन्धन से मुक्त हो जायगा, यह निश्चित हुआ।

उस बन्धन के पहले वर्ष में तो वकील को, जहाँ तक उसके स्फुट लेख से मालूम होता है एकान्त और सुनसान से भयानक कष्ट हुआ। उस तरफ जिधर से वह कैद था, दिन-रात पियानो का स्वर सुनाई देता रहता। शराब और तमाखू पीना उसने बन्द कर दिया। "शराब," उसने लिखा—"वासनाओं को उत्तेजित करती है। बन्दी के लिये वासनायें भयङ्कर शत्रु हैं। इसके अतिरिक्त केवल बढ़िया शराब पीकर पड़े रहने से तो सुनसान

की भयङ्करता और भी बढ़ जाती है।" और तमाखू से उसके कमरे का वातावरण दूषित हो जाता। पहले वर्ष तो उसे ऐसी ही किताबें दी गईं जो दिल-बहलाव का काम करतीं—जैसे, प्रेम के घात-प्रतिघातों से पूर्ण उपन्यास; चोरी-जारी की कहानियाँ; सुखान्त नाटक आदि।

दूसरे वर्ष पियानो सुनाई देना बन्द हो गया। अब वकील केवल साहित्यिक पुस्तकें मँगवाता। पाँचवें वर्ष में गायन-वाद्य का फिर दौर-दौरा हुआ। उस वर्ष वह बस ख़ूब खाता-पीता और बिछौने पर पड़ा रहता। कभी यों ही बड़-बड़ाने लगता और अपने ही ऊपर क्रोधित-सा रहता। किताबों को हाथ भी नहीं लगाता। हाँ, कभी-कभी रात को वह जमकर लिखने बैठ जाता। बहुत रात गए तक लिखता रहता और सबेरा होने पर उसे फाड़ फेंकता। कई बार रोता हुआ भी सुनाई दिया था।

छठे वर्ष के उत्तरार्द्ध में उसे नया जोश आया—विभिन्न भाषा, तर्क-शास्त्र और इतिहास अध्ययन करने का। भूखे की भाँति वह इन विषयों पर टूट पड़ा। यहाँ तक कि उसकी पुस्तकों की माँग पूरी करते-करते वणिक् उकता-सा गया। चार वर्ष में उसने करीब छः सौ किताबें मँगवाईं। उस जोश के दिनों ही में वणिक् को बन्दी का यह पत्र मिला—"बन्दी-गृह के मेरे प्रिय मालिक! मैं ये पंक्तियाँ छः भाषाओं में लिख रहा हूँ। विद्वानों को ये पंक्तियाँ दिखाना। उनसे जँचवाना। यदि एक भी गलती नहीं निकले तो, मैं प्रार्थना करता हूँ, बगीचे में बन्दूक चलवा देना। उसकी आवाज़ से मैं जान जाऊँगा कि मेरा परिश्रम व्यर्थ नहीं गया है। सब काल और सब देशों के गुणी विभिन्न भाषाओं में अपने

मनोभाव प्रकट करते आए हैं; किन्तु, सब में वही एक अग्नि प्रज्वलित है। ओह, तुम मेरे इस स्वर्गीय आनन्द को जान जाते, जब कि मैं उनको समझने की योग्यता पा गया हूँ!" बन्दी की इच्छा पूर्ण हुई। वणिक् की आज्ञा से बन्दूक़ बगीचे में दनदना उठी।

बाद में, दसवें वर्ष के पश्चात् वकील अविचल भाव से मेज़ के सहारे बैठकर 'न्यू टेस्टामेंट' पढ़ता रहता। वणिक् को आश्चर्य होता कि जिस व्यक्ति ने चार वर्ष में छः सौ जटिल ग्रंथों का अध्ययन कर लिया है, उसीने एक छोटी-सी और बहुत ही सरल पुस्तक के पढ़ने में एक वर्ष व्यतीत कर दिया। 'न्यू टेस्टामेंट' के बाद बारी आई धार्मिक इतिहास और वेदान्त के ग्रंथों की।

बन्दी-जीवन के अन्तिम दो वर्षों में तो उसके पठन की विधि बहुत ही विचित्र हो गई। कभी वह प्राकृतिक विज्ञान का अध्ययन करता तो कभी बायरन और शेक्सपियर का। वह कभी-कभी तो एक ही साथ रसायन और वैद्यक सम्बन्धी पुस्तकें, उपन्यास, अध्यात्म अथवा वेदान्त विषय के ग्रंथ मँगवाता। ऐसा मालूम होता कि वह भग्न टुकड़ों के बीच एक समुद्र में तैर रहा है और टुकड़े पर हाथ मारकर डूबता हुआ तिनकों का सहारा ले रहा है।

वणिक् के स्मृति-पटल पर ये बातें ज्यों की त्यों अंकित थीं। वह सोचने लगा:—

"कल बारह बजे वह स्वतन्त्र हो जायगा। इक़रारनामे के अनुसार मुझे बीस लाख की बड़ी रक़म देनी पड़ेगी। ऐसा हुआ तो मैं तबाह हो जाऊँगा..."

पन्द्रह वर्ष पहले उसके पास करोड़ों की सम्पत्ति थी; जिसकी कोई गिनती नहीं थी। किन्तु, अब वह स्वयं इस भ्रम में था कि उसके सिर पर धन का भार अधिक है अथवा क़र्ज़? शेयर बाज़ार के जूए, जोखिम-भरे सट्टे खेल-खेलकर उसने अपना व्यापार नष्ट कर डाला था। वही भय-रहित, आत्म-विश्वासयुक्त स्वाभिमानी व्यापारी अब साधारण स्थिति का वणिक् बनकर बाज़ार के प्रत्येक उतार-चढ़ाव के साथ काँपता हुआ जीवन बिता रहा था।

"हाय री होड़," वृद्ध ने चिन्ता से अपने बाल नोचकर कहा—"वह आदमी उसी काल-कोठरी में ख़तम क्यों न होगया? वह चालीस ही वर्ष का है। मेरी गाढ़ी कमाई का सर्वस्व छीनकर वह बड़े आराम से मौज-शौक़ में जीवन बितायेगा; शेयर बाज़ार में लड़त करेगा और मैं एक ईर्ष्यालु भिक्षुक की भाँति देखता रह जाऊँगा। हाय रे, वह रोज़ मुझे सुनाकर कहेगा—'अपने जीवन के इस आनन्द के लिए मैं आप का हृदय से आभारी हूँ। मैं आप की क्या मदद कर सकता हूँ? कहिए।' न, न, यह तो अनर्थ हो जायगा। अपमान और सर्वस्व-हानि से बचाव का एक ही उपाय है—उस आदमी का अन्त!"

घड़ी में अभी तीन बजे हैं। वणिक् ने कान लगाकर सुना। घर में सभी सो रहे थे, खिड़कियों की राह केवल बाहरी वृक्षों की खड़खड़ाहट सुनाई दे रही थी। बिना किसी प्रकार का खटका किये उसने अपनी तिजोरी में से उस बन्दीगृह की चाबी निकाली, जो पन्द्रह वर्ष से नहीं खोला गया था। कपड़े पहनकर वह घर के बाहर आगया। उद्यान में सर्वत्र अँधेरा छा रहा था। सरदी का ज़ोर था। पानी भी बरस रहा था।

सीली हवा रोम-रोम को भेदती हुई चल रही थी। वृक्षों को एक क्षण का भी विश्राम नहीं मिल रहा था। वणिक् आँखे फाड़-फाड़कर देख रहा था। तो भी उसे न भूमि दिखाई देती थी और न उद्यान की श्वेत मूर्तियाँ; न वृक्ष और इमारत ही। उद्यान में जाकर उसने चौकीदार को दो बार पुकारा। किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। बिचारा चौकीदार उस ख़राब मौसिम से बचने के लिए रसोई-घर के किसी कोने में दुबका पड़ा होगा।

"अपना इरादा पूरा करने की मैंने हिम्मत दिखाई तो," वृद्ध वणिक् ने विचार किया—"पहला शक होगा चौकीदार पर।"

अँधेरे में टटोलता-टटोलता वह बगीचे के द्वार पर पहुँच गया। भीतर प्रवेश करके उसने एक अँधेरी-सी गली में खड़े होकर दियासलाई जलाई। वहाँ एक भी प्राणी दृष्टिगोचर नहीं हुआ। बिना बिछौने की खटिया वहीं पड़ी थी और कोने में एक ओर पुराना लोहे का चूल्हा मुँह बाए पड़ा था। बन्दी कमरे की मोहर ज्यों की त्यों थी।

दियासलाई के बुझने पर उसने धड़कते हुए दिल से खिड़की में से भीतर की ओर झाँककर देखा—

बन्दी-गृह में एक धुँधला दीपक जल रहा था। बन्दी अपनी टेबिल के सहारे सीधा बैठा था। उसकी पीठ, सिर के लम्बे-लम्बे बाल और हाथ ही दिखाई दे रहे थे। टेबिल पर, कुरसियों पर और नीचे दरी पर इधर-उधर किताबें बिखरी पड़ी थीं।

पाँच मिनट बीत गये, पर बन्दी ज़रा-सा भी नहीं हिला। पन्द्रह वर्ष के बन्दी-जीवन ने उसे गति-विहीन होकर बैठना सिखा दिया था। वणिक् ने दो-चार बार खटखटाया, पर बन्दी उत्तर में हिला-डुला भी नहीं।

अब बणिक् ने बड़ी सावधानी से मोहर तोड़कर ताला खोल दिया। ज़ङ्ग लगा हुआ ताला कराह उठा, द्वार के किवाड़ चरमरा उठे। बणिक् आश्चर्ययुक्त पुकार और किसी पद-ध्वनि की प्रतीक्षा में था। तीन मिनट बीत गये, वैसी ही शांति अब थी, जैसी पहले थी। उसने भीतर जाने का विचार दृढ़ कर लिया।

मेज़ के सहारे वह साधारण मनुष्य की अपेक्षा विचित्र भाव से बैठा था। वह था कङ्कालमात्र—चमड़ी सिकुड़ गई थी; केशपाश रूखा होगया था; औरतों की भाँति छल्लेदार दाढ़ी खुरखुरी हो गई थी; चेहरे का रङ्ग पीला पड़गया था; गाल बैठ गए थे; पीठ लम्बी होकर सिकुड़ गई थी। जिस हाथ पर उसने अपना सिर टेक रखा था, वह तो इतना दुर्बल और पतला हो रहा था कि उसे देखकर दुःख होता था। उसके बाल पक गए थे। उसके दुर्बल और वृद्ध चेहरे को देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि वह चालीस ही वर्ष का है। मेज़ पर उसके सामने एक कागज़ रखा था, जिस पर महीन-महीन अक्षरों में कुछ लिखा था।

"बिचारा सो रहा है। लाखों का सपना देख रहा होगा। बस, इस अर्द्ध मृत शरीर को उठाकर बिछौने पर पटकने भर की देर है। तकिये का एक हलका-सा प्रहार ही काम कर जायगा; अप्राकृतिक मृत्यु का किसी को सन्देह भी नहीं होगा। किन्तु, ज़रा यह पढ़ तो लूँ, क्या लिखा है?"

बणिक् ने कागज़ उठाकर पढ़ा—

"कल मध्यरात्रि के समय स्वतन्त्रता और जन-समाज में सम्मिलित होने का अधिकार प्राप्त करूँगा। किन्तु, इससे पहले कि मैं इस बन्दीगृह से विदा लेकर सूर्य के दर्शन करूँ, तुम्हें दो बातें

बताने को मन ललचाता है। विशुद्ध मन से उस भगवान् को साक्षी-पूर्वक, जो मेरे सब कृत्यों को देखता है, मैं बता देना चाहता हूँ कि स्वातन्त्र्य—जीवन—स्वास्थ्य—तुम्हारी इन पुस्तकों के मतानुसार जो इस जगत् के अनुग्रह-स्वरूप हैं—सब को मैं घृणा की दृष्टि से देखने लगा हूँ।

"पन्द्रह वर्ष तक मैंने यत्न-पूर्वक सांसारिक जीवन का अध्ययन किया है। यह सच है कि न तो मैंने इस धरती ही के दर्शन किये और न लोगों के मुखड़े ही देखे; किन्तु तुम्हारी पुस्तकों के द्वारा मैंने सुगन्धित सुरा का पान किया, गीत गाये, बीहड़ जङ्गलों में हरिण और सूअरों का शिकार किया, रमणियों को प्यार किया। नभ-चारी बादलों की भाँति कवियों के अद्भुत चातुर्य्य से निर्मित वे रूपवती रमणियाँ रात्रि के समय मेरे समीप आतीं और मनोमुग्धकारी कथायें सुना-सुनाकर मुझे मद-विह्वल बना देतीं। तुम्हारी पुस्तकों के साथ एल्व्रुज़ और माउन्ट ब्लैङ्क पर्वतों पर चढ़कर मैंने सूर्योदय और सूर्यास्त के समय स्वर्ण-वर्ण से आकाश, समुद्र और पर्वत-शिखरों को रञ्जित होते देखा है। मैंने वहाँ से अपने सिर पर बादलों के हृदय को भेदती हुई बिजली को देखा है; और देखे हैं हरे-भरे वन-उपवन, खेत नदी-नाले, झील और बड़े- बड़े नगर। मैंने कल-कण्ठियों का गान और 'पॅन' की बंसियों का राग सुना है। मैंने उन फरिश्तों के सुन्दर पङ्खों का स्पर्श किया है जो ईश्वर का संदेश सुनाने के लिए मेरे पास आते रहे हैं।...तुम्हारी पुस्तकों ने मुझे एक अगाध सागर के तल में पहुँचा दिया है। जादू का सा काम किया है

उन पुस्तकों ने नगर के नगर भूमिसात् कर दिए हैं; नये-नये धर्मों का उपदेश दिया है; सारे देशों को विजय कर लिया है।

"तुम्हारी पुस्तकों ने मुझे बुद्धि-दान दिया है। अनेक शताब्दियों से मानव-बुद्धि के विकास की जिन बातों का प्रस्फुटन हुआ है, वे मेरी इस छोटी-सी खोपड़ी में समा गई हैं। मुझे अनुभव होने लगा है कि मैं तुम सबसे अधिक चतुर हूँ।

"और मैं तुम्हारी इन पुस्तकों का भी अनादर करने लगा हूँ; संसार के सारे सुखों और बुद्धि-वैचित्र्य को घृणा की दृष्टि से देखने लगा हूँ। ये सभी बातें हैं निरर्थक, थोथी, स्वप्नवत् और मृग-तृष्णा के समान मायामय। तुम हो अभिमानी, चतुर और सुन्दर; तो भी एक दिन साधारण जन्तु की भाँति मृत्यु तुम्हारा नाम-लेश इस पृथ्वी पर से मिटा देगी। तुम्हारा गौरव, तुम्हारा इतिहास और तुम्हारे गुणी मनुष्यों की अमरता मिट्टी में मिल जायगी। और इस पार्थिव ब्रह्मांड के साथ कभी विलीन हो जायगी।

"तुम तो हो पागल—ग़लत रास्ते के पथिक। तुम देखते हो असत्य को सत्य; असुन्दर को सुन्दर। यदि सेब और नारङ्गी के पेड़ मेंढक पैदा करने लग जायँ, छिपकलियाँ फल देने लग जायँ और गुलाब से घोड़े के पसीने की बदबू आने लग जाय तो तुम अचरज में पड़ जाओगे। मैं भी वैसे ही अचरज में हूँ तुम लोगों के बारे में। तुम लोगों ने स्वर्ग और मृत्युलोक की अदला-बदला कर ली है। मैं तुम लोगों को जानना भी नहीं चाहता।

"जिस वस्तु पर तुम लोगों के जोवन का आधार है, उसी के प्रति अपनी घृणा को कार्यरूप में प्रकट करने के निमित्त मैं अपने बीस लाख के अधिकार पर लात मार देता हूँ। स्वर्ग-सुख की भाँति जिसके मैं कभी सपने देखता था, उसीको मैं अब तुच्छ और हेय मानने लगा हूँ। अतुल सम्पत्ति प्राप्त करने के अपने अधिकार को नष्ट करने के लिए मैं निश्चित समय से पाँच मिनट पहले बाहर निकलकर इकरारनामे को भङ्ग कर दूँगा।"

उस आलेख को पढ़कर वणिक् ने उसे ज्यों का त्यों मेज़ पर रख दिया। उस अद्भुत मनुष्य के माथे को चूमते ही उसकी आँखें सजल हो गईं। बन्दीगृह से वह उसी दम बाहर होगया। अपने जीवन में किसी भी मौके पर, अनेक बार शेयर बाज़ार में बड़े-बड़े नुकसान उठा लेने पर भी, उसे अपने प्रति ऐसी घृणा का अनुभव नहीं हुआ था। घर लौटकर वह बिछौने पर पड़ रहा। अव्यवस्थित चित्त और आँसुओं की झड़ी के कारण उसे नींद नहीं आई।

दूसरे दिन बिचारा चौकीदार घबड़ाया हुआ दौड़ता आया। उसने बताया कि बन्दी अपने कमरे के एक हवादान पर चढ़कर बगीचे में से होकर निकल भागा है। द्वार की ओर जाकर वह ग़ायब होगया है। उसी समय अपने नौकरों के साथ जाकर वणिक् ने बन्दी के भाग जाने की बात का निश्चय किया। निरर्थक अफ़वाहों को रोकने के लिए उसने तत्क्षण उस कागज को अपने क़ाबू में कर लिया, जिस पर बन्दी ने अपने त्याग का उल्लेख किया था। घर लौटकर वणिक् ने उस कागज़ को अपनी तिजोरी में सुरक्षित रख दिया।

रूस : : : यूजेन चिरकव

जादूगर

सारे शहर में एक अद्भुत भय-सा छा रहा था; हड़ताल प्रतिक्षण बढ़ती जा रही थी। कल-कारख़ानों से शुरू होकर हड़ताल दावानल की भाँति शहर के इस कोने से उस कोने तक फैलती ही चली गई। सड़कों पर स्थान-स्थान पर पुलिस, घुड़सवार तैनात थे। उनकी टुकड़ियाँ इधर से उधर गश्त लगा रही थीं। वे मौके पर पहुँचने की हरवक्त जल्दी करते; किन्तु सदा देर हो जाती। उद्विग्नता उनके चेहरे पर स्पष्ट झलक रही थी। अपनी बन्दूकों के कुन्दों को चमकाते हुए, एक साथ पैर बढ़ाते हुए, कभी सिपाहियों की एक टुकड़ी निकलती, तो कभी पागल की तरह अपने घोड़े को दौड़ाता हुआ कोई घुड़सवार आ पहुँचता; घोड़े के नीचे कुचल जाने से अपने आप को बचाने के लिये लोग इधर-उधर दौड़ पड़ते।

शहर के उस कोलाहलमय जीवन में कोई परिवर्तन नहीं था। बड़ी-बड़ी दुकानों का साज-सामान सूर्य के प्रकाश में उसी प्रकार चमक रहा था। सड़क पर राहगीरों की—गाड़ी मोटरों की—भीड़ सदा की भाँति थी। तो भी सब में उद्विग्नता और भय का अनोखा भाव स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा था। साधारण-सी बात पर उत्तेजना की एक लहर दौड़ जाती; चौराहे के सिपाही की सीटी की आवाज़, किसी शराबी की चीख़-पुकार, किसी नये आदमी की दौड़-धूप, कुछ भी हो; लोगों में एक भय-भरा कौतूहल समा जाता। क्या हो रहा है? कुछ लोग देखने के लिये दौड़ पड़ते, दूसरे दुकानों के किवाड़ों की आड़ में भय से छिप जाते। भय किसका? कोई नहीं जानता था? हरएक किसी अनहोनी भयानक बात की कल्पना कर रहा था। पर वह क्या है? यह कोई नहीं बता सकता था।

किसी-किसी समय फटे-पुराने कपड़े पहने, अपने विषण्ण चेहरों को लटकाये हुये मज़दूर सड़क पर दिखाई देते। वे चुपचाप फुट-पाथ पर से निकल जाते। अपने संगी-साथियों से मुलाक़ात होने पर वे आहिस्ते से बात करते। साफ-सुथरे कपड़े पहनकर, बाबू बने हुए लोगों को जब वे घूरकर देखते तो उनकी दृष्टि का द्वेष और घृणा का भाव छिपा नहीं रहता। और वे 'बड़े' आदमी उन गंदे जीर्ण-शीर्ण मज़दूरों को देखकर नफ़रत से नज़र घुमा लेते। उनके मन में भाव आता—इन साफ़-सुथरी सड़कों के सौन्दर्य को ये लोग नष्ट कर रहे हैं। बसन्त के आनन्ददायक समय में वृक्षों की सुनहली डालियों पर डूबते हुए सूर्य की किरणों की विदाई के इस चुम्बन में रंग-बिरंगी मोटरों और घोड़ा-गाड़ियों की इस भीड़, नई-नई ट्राम गाड़ियों की इस घनघनाहट में और

मोटरों व साइकिलों के इन विविधि स्वरों के बीच ये लोग? ये लोग क्यों?

परदेश से आये हुए अयाचित और अवांछित अभागे यात्रियों की भाँति वे लोग उन 'बड़े' लोगों के बीच से अपना रास्ता ढूँढते, जो स्वयं उन गंदे लोगों से बचने के लिए दूर-दूर रहते। किसी घुड़सवार या सिपाही के दिखाई देते ही लावारिस कुत्तों के झुण्ड की भाँति वे बेचारे तितर-बितर हो जाते, और अपना भय उपस्थित भीड़ में फैला जाते।

"माँ, क्या ये मज़दूर हैं?"

"हाँ, हाँ,...चलो, पाँव बढ़ाते जाओ। इधर-उधर क्या ताकते हो?"

"पर ये भाग क्यों रहे हैं?"

"पुलिस के डर से...। चलो, बकवाद मत करो!"

"पर क्यों?...। क्या इन्हें सड़क पर चलने की इजाज़त नहीं है?"

"हाँ, नहीं है।"

"क्यों नहीं है?"

"ओह, तुम क्यों चिन्ता करते हो? हैरान मत करो मुझे। लो अँगुली पकड़ो...। चलो...। नहीं तो शायद...। चाबुक...।"

सर्ज ने अपनी माँ का हाथ पकड़ लिया और पाँव घसीटता हुआ वह उसके साथ हो लिया। मज़दूरों की भीड़ को तितर-बितर करने के दृश्य को देखकर उसकी माता के मन में भय समा गया था। सर्ज के मन में भी डर था; पर उससे अधिक था कौतूहल। वह देखना चाहता था कि चारोंओर क्या हो रहा है?

"ये लोग बदमाश हैं क्या माँ ?"

"कौन, कौन ?"

"ये मज़दूर ।"

"मैं क्या जानूँ ... । ये भले भी हैं, बुरे भी हैं...। वे काम नहीं करते !"

"आलसी होंगे माँ ?"

"हाँ आलसी ही !...पर...चलो...तुम भी आलस करोगे, तो देख लेना...!"

"माँ, ये लुच्चे-लफंगे-से दीखते हैं ।"

किन्तु, उसी समय पास से कुछ घुड़सवार छलाँग मारते निकले । एक ने सीटी बजाकर अपने चाबुक को फटकारा । चाबुक की फटकार को सुनकर सर्ज की माँ चीख उठी । बिना किराया ठहराये ही पास से गुज़रती हुई एक गाड़ी में सर्ज को ढकेलकर आप भी सवार हो गई । गाड़ीवान की पीठ पर हाथ रखकर भय से रुंधे हुए गले से उसने कहा—

"जल्दी ।"

"पर कहाँ ?"

"वहाँ ! हाँ ठीक सीधे, चलो......। कैसे हो तुम ?...हाँ, घुमाओ इधर, जल्दी !"

"घबड़ाओ मत, वे हमको हाथ न लगायेंगे ।"

गली में घूम जाने पर सर्ज की माँ के दिल में थोड़ी तसल्ली हुई । चित्त शान्त हुआ और ज़बान खुली ।

"हाँ, भई, भूलना मत मैं चार आने से ज्यादा नहीं दूँगी ।"

"पर, यह तो बहुत कम है ।"

"तो हम लोग उतर जायँगे, ट्राम से चले जायँगे।"

"बहुत अच्छी बात। लो उतरो—पर जल्दी ही ट्राम का भी चलना बन्द हो जायगा।"

"कौन कहता है?"

"वे लोग भी हड़ताल कर देंगे। मैंने कल सुना था कि वे इसी रविवार से काम पर नहीं जायँगे।"

सड़क पर मजदूरों का एक और झुण्ड जाता दिखाई दिया। सर्ज की माँ ने गाड़ीवान को फिर छेड़ा। सर्ज इन लोगों की ओर ताक रहा था और अपनी माँ से चिपका जा रहा था।

"मैं नहीं समझती, ये क्यों इनके पीछे पड़े हैं? अगर यह काम नहीं करना चाहते, तो न करें। भूख लगेगी, तो अपने-आप काम पर लौटेंगे।"

"ठीक कहती हैं आप, भूख बड़ी बुरी है।" गाड़ीवान ने उत्तर दिया—"एक जानवर को भूखों मारकर चाहे जैसे उसे सिखाया जा सकता है और वैसा ही एक आदमी के साथ भी तो किया जा सकता है—पर एक गरीब का बुरा करना तो पाप है—"

थोड़े पल ठहरकर गाड़ीवान ने अकस्मात् घूमकर कहा:—

"अच्छा, देखो, आप तो एक क़ीमती साड़ी पहने हैं, और मैं इस ख़ाकी कुरते ही से काम चलाता हूँ। कौन पहनाता है हमें ये कपड़े?"

"अच्छा, अच्छा, रहने दो इन बातों को। जेब में पैसा होगा, तो खाने-पहनने को दूसरे का मुँह नहीं ताकना होगा—। ये तुम्हारे आदमी काम नहीं करेंगे, तो चीज़ें दूसरे मुल्कों से आ जायँगी..."

"पर जो रेल ही रुक गई तो ?—कैसे आयेंगी चीजें तब !"

"भोंदू कहीं का ! रेल नहीं रुक सकती—ऐसा नहीं होने का !"

"कौन जाने ? लोग कहते थे, रेल भी जल्दी ही रुक जायगी।"

सर्ज गाड़ीवान के साथ अपनी माँ का वार्त्तालाप बड़े ध्यान से सुन रहा था। वह उन लोगों को समझ ही नहीं सका जो उन्हें खाने-पीने पहनने को देते हैं, पर पुलिस को देखते ही भाग निकलते हैं।

उसकी माँ उसके लिए अभी एक गरम कोट खरीद कर लाई थी। कागज में बँधा कोट उसकी गोद में पड़ा था। बालक को इस बात की प्रसन्नता थी कि कोट खरीद लिया गया है और कोई उसे अब छीन नहीं सकेगा।

"और भला माँ ! बता तो सही, मेरा यह कोट भी उन्होंने बनाया है क्या ?"

"हरेक चीज़, छोटे मास्टर ! हरेक चीज़। तुम्हारे तन पर एक भी धागा ऐसा नहीं, जो उन्होंने न बनाया हो।" गाड़ीवान ने जवाब दिया; और माता ने सर्ज को अपनी ओर खींचकर रोस के साथ कहा:—

"चुप रह, मत बकबक कर !"

गाड़ीवान अपना राग उसी प्रकार अलापता रहा। आख़िर सर्ज की माता को कहना पड़ा:—

"तुम भी जेल में ठूँसे जाने लायक हो !"

गाड़ीवान घोड़े को बुरा-भला कह, दो चार चाबुक मारकर, चुप हो रहा।

इस प्रकार सर्ज अपने घर लौटा। पर श्रमजीवी कहलाने वाले लोगों के विषय में उसके मन में जो शंका उत्पन्न हुई थी, उसका समाधान नहीं हो पाया।

"सोनिया, आज हमने कुछ मज़दूर देखे," उसने बड़े आश्चर्य के साथ अपनी बहन को बताया—"सचमुच हमने उन्हें देखा।"

"कैसे हैं वे?"

"वे—वे, हाँ ठीक, किसानों सरीखे हैं।"

प्रतिदिन सर्ज खेलते-कूदते खाते-पीते इन्हीं लोगों की बातें सुना करता, जो कल-कारखाने बंद कर देते हैं और काम पर नहीं जाना चाहते हैं। पर इन सब बातों से भी पता नहीं चलता कि वे भले हैं, या बुरे? घर के भीतर तो वे बुरे ही दीखते हैं; पर बाहर भले। एक दिन सर्ज ने अपने नौकर से पूछा—"पर, क्या यह सच है कि वे कारखाना बन्द कर सकते हैं?"

"बहुत आसानी से, मास्टर सर्ज!"

"पर वे करते कैसे हैं?"

"वे या तो एञ्जिन की भाप निकाल देते हैं, या सीधी बात है—काम छोड़कर चले आते हैं।"

"और, उनके बिना कारखाने को बन्द होना पड़ता है?"

"नहीं तो बिना मजदूरों के कारखाना चलेगा कैसे?"

"ऐसा है क्या? बिना उनके मेरा नया कोट बन ही नहीं पाता?"

"बिल्कुल नहीं।"

"और मेरा कुरता?"

"कुरता, धोती, टोपी—कुछ भी नहीं। छोटे मास्टर! जैसे तुम जनमे थे, वैसे ही तुम्हें घूमना पड़ता।"

"नंग धड़ंग?—ओह, पागल कहीं का। मेरी माँ कपड़े दूसरे देश से मँगवा सकती है।"

"तुम्हें उनकी राह देखनी पड़ेगी। कब वहाँ बनें और कब तुम्हारे पास आयें? वहाँ भी हड़ताल हो जाय, अथवा रेल ही बन्द हो जाय, तब?"

"क्या रेल भी बन्द हो जायगी?"

"अफ़वाह तो ऐसी ही है कि सब रेलें बन्द हो जायँगी।"

"तो फिर पिताजी का क्या होगा? वे घर कैसे पहुँचेंगे?"

"ओह, कुछ परवाह नहीं छोटे मास्टर! वे अपनी छड़ी का घोड़ा बनाकर घर पहुँच जायँगे।"

"हूँ—कैसी बात करते हो तुम? मैं माँ से कह दूँगा। तुम्हें वे झिड़केंगी।"

सर्जे चुप होगया और एक विचार में पड़ गया। थोड़ी देर बाद अपने नये कोट को उठाकर उसने कहा—

"और, तुम कहते हो कि किसी मज़दूर ही ने इसे सिया है?"

"हाँ, उसी ने तो। तुम्हारी माँ ने तुम्हें केवल जन्म दिया है, बाकी सब तो—"

दो ही दिन में टन-टन करने वाली ट्राम गाड़ियाँ बन्द होगईं, समाचार पत्र प्रकाशित नहीं हो सके, सड़कें साफ न हो सकीं, गलियों में अंधकार ही बना रहा। उसके दो दिन बाद रेलों का आना-जाना बन्द होगया, स्टेशनों पर मातम-सा छा गया।

सर्ज के पिता आ तो जाने चाहिये थे, पर पहुँचे नहीं। जो सामने आता, उसी पर माँ को झुँझलाहट आती। घर के सभी लोग मज़दूरों को गालियाँ दे रहे थे। सर्ज को घर से बाहर निकलने की मनाही होगई। बेचारा घर की एक खिड़की में बैठा उत्सुकता से सड़क की ओर देखता रहता। वह जानना चाहता था कि बाहर क्या हो रहा है? कैसे हो रहा है?

"तो माँ! पिताजी घर कब आ जायँगे?"

"वे नहीं आ सकते।"

और माता ने हड़ताल को, मज़दूरों को और सर्ज के पिता को भी बुरा-भला कहना शुरू कर दिया।

"तो माँ! क्या यह संभव है कि वे..."

"क्या संभव?"

"रेलों को रोक दें।"

"हाँ, रोक तो सकते हैं—पर तुम मेरा मग़ज क्यों चाटते हो?

माता की आँखों में आँसू झलक आये। माँ के इस क्रोध को देखकर सर्ज चुप होगया। खिड़की के पास खड़े होकर वह फिर उसी प्रकार साश्चर्य सड़क की ओर देखने लगा।

"अगर हो सकता तो मैं—मैं—इन सबको मार डालता।"

प्रतिदिन मामला गंभीर होता चला गया। सड़कें सूनी होगईं, दूकानें बन्द। दिन-रात सिपाही गश्त लगाते फिरते। कभी-कभी तो सर्ज मध्य रात में अचानक बिछौने से उठकर यह देखने के लिए खिड़की की ओर भागता कि बाहर सड़क पर क्या हो रहा है।

रात्रि के अंधकार को भेदती हुई अग्नि-शिखा और उसके प्रकाश में नंगे, फटे-पुराने कपड़े पहने, प्रेतात्माओं की भाँति घूमते-फिरते लोग दिखाई देते—वहाँ कुछ न कुछ अजीब और भयानक बात ज़रूर हो रही होगी—डर के मारे सर्ज की घिग्घी बँध जाती—राक्षसों की तरह वे उसे पकड़कर उस आग में भूनकर खा जायँगे—"ओह ! अम्मा, मुझे डर लगता है डर !" कहता हुआ बालक दौड़ता अपने बिछौने की ओर। आँख खुलते ही माँ पूछती:—

"तुम्हें नींद नहीं आती ? कहाँ गये थे बिछौने से उठकर ?"

"माँ, सामने आग जल रही है और वे लोग अपने सामने ही हैं।'

"सो जाओ, डरो मत, यह कुछ नहीं है। तुम्हारे पिता आ जाते, तो सब ठीक था।"

"माँ !"

"क्यों ? लाल !"

"मैं तेरे पास आऊँगा। मुझे डर लगता है ?"

"डर ? डर किसका ?"

"जादूगर का !"

"कौन जादूगर ?"

"बहुत से—"

"आओ, मेरे पास आ जाओ !"

सर्ज दौड़कर अपनी माँ के बिछौने में छिप गया। माँ की छाती से सटकर उसने धीमे से कहा:—

"माँ ! वे सब कुछ कर सकते हैं ?"

माँ को जल्दी ही फिर नींद आ गई। सर्ज चादर से मुँह बाहर निकालकर छत की ओर देखने लगा। बाहर की आग का प्रकाश छत पर पड़ रहा था। वह भले और बुरे जादूगरों और इन मजदूर कहलाने वाले लोगों के बारे में सोचने लगा। वे कैसे हैं? भले या बुरे?

सबेरे सर्ज के कलेवे का समय हुआ। रोज़ उसे खाने को स्कोन मिला करते थे। पर आज ठंडी रोटी देखकर उसे बड़ा बुरा लगा।

"स्कोन लाओ। आज रूखे-सूखे टुकड़े कहाँ से आ पड़े?" कहकर उसने रोटियाँ उठाकर पटक दीं।

"छोटे मास्टर! यही ग़नीमत समझो कि हमारे यहाँ रोटियाँ तो हैं।"

"लाओ। मुझे तो स्कोन दो।—माँ! क्या आज मुझे स्कोन नहीं मिलेंगे?"

"पर, स्कोन आयेंगे कहाँ से? बेकरी तो सब बन्द हैं!"

"क्यों?"

"क्यों क्या? सब मजदूरों ने हड़ताल कर दी है।"

फिर वही बात। सर्ज ने सिर खुजला कर पूछा:—

"बिना स्कोन हमारा काम कैसे चलेगा?"

"चल जायगा।"

"पर क्या सरकार उनसे बेकरी नहीं चलवा सकती?"

"शायद ही। वे तो सरकार से डरते नहीं!"

"सरकार से भी नहीं?"

"किसी से नहीं।"

"तो...तो...वे हैं कुछ...।"

"उनका कुछ भी नहीं हो सकता। लो, यह रोटी खा लो। नहीं तो यह भी नहीं मिलेगी।"

"मुझे सूखी रोटी तो अच्छी लगती नहीं।"

"हाँ, पर इसी को पाकर तुम्हें खुश होना पड़ेगा।"

"वाह, यह क्यों?"

सर्ज का आश्चर्य बढ़ता ही गया। कैसे हैं ये लोग? न सरकार से डरते हैं, न और किसी से। फिर भी पुलिस को देखकर भाग निकलते हैं। यह बताओ क्या है? कल-कारखाने, ट्राम, रेल, अखबार, दूकान—वे सब कुछ बन्द कर सकते हैं—उन्हीं के कारण स्कोन भी नहीं मिलते और रोटी के छिन जाने का भी डर है। हम उनके सामने कुछ भी नहीं कर सकते?—फिर उसके दिमाग में जादूगरों और भूतों की बात चक्कर लगाने लगी। कहानियों में उसने ऐसी बहुत सी बातें पढ़ी थीं। उसे याद आया—जादूगरों के पास एक ऐसी टोपी होती है, जिसे पहनते ही वह अदृश्य हो जाते हैं; उन्हें कोई पकड़ नहीं पाता। कारखाने का मालिक उन्हें कहता होगा:—"चलो, काम करो।" और मजदूर अपनी टोपी पहनकर अदृश्य हो जाते होंगे।

कल-कारखानों और गली-कूचों की उस अशान्ति ने आराम-तलब लोगों के सुदृढ़ भवनों में भी चुपचाप प्रवेश किया। प्रतिदिन, प्रतिक्षण घरों में गड़बड़ होने लगी; नित्य की नियमित बातें उलट-पलट गईं; रहन-सहन में परिवर्त्तन करना अनिवार्य होगया; नाच-तमाशे बन्द होगए; हँसी-मज़ाक़ का कहीं नाम नहीं था; एक प्रकार से जीवन का

आनन्द ही बिदा हो गया। बदले में आया भय—एक ऐसा अनोखा भय, जो प्रतिदिन बढ़ता गया। सर्ज के परिवार की स्थिति के घरों में तो उस भय का साम्राज्य ही था। उनके घरों में ताले लगे थे, हथियार-बन्द पहरेदार दिनरात पहरा देते थे।

एक रात सर्ज के घर की बिजलियाँ बन्द होगई।

"माँ, आज तो बिजली की बत्तियों में कुछ खराबी हो गई दीखती है।"

"बाहर, बैठक की बिजली तो जलाकर देखो।"

"माँ, वह भी...और यहाँ यह भी—"

"यह भी होना था क्या?—वहाँ भी हड़ताल?"

"बत्तियाँ नहीं जलेंगी, मालकिन! वहाँ भी हड़ताल होगई है।"

"मोमबत्तियाँ। घर में मोमबत्तियाँ हैं क्या?"

"हैं तो, पर थोड़ी-सी।"

घर में अँधेरा छा गया। बिजली के प्रकाश-पुञ्ज की जगह मोम-बत्तियों की क्षीण लौ टिमटिमा रही थीं।

सारा परिवार बैठक में एक टिमटिमाती बत्ती के पास एकत्रित हो गया। घर की सारी चीज़ें उस अंधकार में मरी-सी दिखाई दे रही थीं। बीच-बीच में नौकर-चाकर आते और भाँति-भाँति की भय-प्रद घटनाएँ सुनाते। नौकर बैठे-बैठे बातें करते :—

"सुना है, जल्दी ही पानी भी बन्द हो जायगा।"

"अरे, मैं ने तो अभी सुना है कि शहर के मुर्दे यों ही पड़े हैं।"

"कल से अनाज और शाक-सब्जी का मिलना भी बन्द हो जायगा। यही हाल कुछ दिन और रहा, तो लोग भूखों मरने लग जायँगे।

सर्ज ने ये बातें आँखें फाड़-फाड़कर सुनीं। वह ठीक समझ रहा था कि इन सब बातों का कर्त्ता है मजदूर। और उस बालक के मन में यह बात बैठ गई थी कि मज़दूर एक जादूगर है जो जादू-टोने ही से बुलाया जा सकता है।

वह सब कुछ कर सकता है। सबका आधार उस जादूगर पर है। अगर वह चाहे तो अभी रेलें चलने लग जायँ और उसके पिता घर पहुँच जायँ। अगर उसकी इच्छा हो, तो अभी बिजली की बत्तियाँ जल जायँ, सारा घर दिन की भाँति प्रकाशित हो जाय। उसी की कृपा से स्कोन मिल सकते हैं। किन्तु, वह नहीं चाहे तो?—नल में पानी नहीं आयेगा, न नहाने को पानी मिलेगा, न पीने को। और, इस जादूगर को किसी का भय नहीं है—किसी का भी नहीं?

सर्ज का विश्वास अपनी धारणा पर और भी दृढ़ हो गया। एक पखवाड़े के बाद एक ही दिन में अनेक चमत्कार हो गए—ट्राम गाड़ियाँ चलने लगीं, बिजली भी जलने लगी। फिर उसी जीवन-धारा का प्रवाह आरंभ हो गया। दूकानें खुल गईं, अखबार बिकने लगे, चिट्ठियाँ बँटने लगीं, कलेवे में स्कोन भी मिलने लगे, और? और पिता भी आ गए। —एक साथ आनन्द की इतनी बातें—अब वे पिता के साथ शहर की हालत देखने बाहर निकले। अबकी बार उन्होंने देखे श्रम-जीवियों के प्रसन्नचित्त समूह। भाँति-भाँति के झण्डे थे उनके हाथों में, और वे हिलमिलकर गीत गा रहे थे। कोई भी उन्हें तितर-बितर करने का साहस नहीं कर रहा था—वे किसी से भयभीत नहीं थे। सर्ज के मन में आया कि वह भी उनके साथ हो ले। किन्तु उसकी माँ आज्ञा दे, तब न?

"अम्मा ! देख वे जादूगर सड़क पर नाचते-कूदते जा रहे हैं। मुझे भी जाने दे मेरी माँ !"

"तुम नहीं जाने पाओगे।"

"माँ ! अब तो वे बुरे नहीं हैं, भले हैं। क्यों माँ ! हैं न वे भले ?

कई महीने व्यतीत हो गए। जीवन का क्रम उसी प्रकार आनन्द-पूर्वक चलने लगा। नाच-तमाशे और राग-रंग का दौर दौरा फिर से शुरू हुआ। भय को तो देश-निकाला ही दे दिया गया। उस भयावह समय की स्मृति लोगों के मन पर से दूर हो गई। एक दिन सर्ज के माता-पिता नाटक देखने को चले गए। घर की बड़ी नौकरानी कहीं बाहर गई हुई थी और बुढ़िया दादी ने तो हड़ताल के समय में खाट पकड़ी थी, सो वह अभी तक उठी ही नहीं। उसकी छोटी बहन सोनिया अपनी गुड़ियों से खेल रही थी। अकेला सर्ज उदास-सा हो रहा था—उसके लिए कोई काम न था। वह कभी इधर से उधर और उधर से इधर आता-जाता। पर उसे कोई मनबहलाव की बात नहीं मिली।

"दादी, कोई काम बता ?

"आ बेटा ! मेरे पैर दाब दे। देख यहाँ बड़ा दर्द हो रहा है—"

"यह काम तो—उँह् !"

अपनी दादी के कमरे में से वह अपनी बहन के पास भाग गया। उसकी गुड़िया की टाँग तोड़कर वहाँ से भी भागा। उसके मन में आया—चलो, रसोई में चलें। वहाँ नई रसोईदारिन को देखेंगे। परन्तु, नौकरानी ने उसे रोक लिया।

"छोटे मास्टर ! तुम्हारी माँ ने मना किया है। रसोई में तुम्हें क्या काम धरा है ?"

"पर मैं करूँ भी क्या ?"

"पर रसोई में तुम्हारे मन-बहलाव को है भी क्या ?"

"रसोई में कौन बात कर रहा है ?"

"रसोईदारिन का घरवाला आया है।"

"तब तो——"

"तब तो क्या ?"

"वह ज़रूर देखने लायक है।"

"बिचारा एक साधारण आदमी—मज़दूर—है छोटे मास्टर !"

"रसोईदारिन का घरवाला मज़दूर है ?"

"हाँ।"

"एक जादूगर ? तब तो मैं जरूर जाऊँगा।"

"नहीं, बिलकुल नहीं। मैं दाई-माँ से शिकायत करूँगी और फिर तुम्हारी शिकायत माताजी से भी कर दूँगी।"

"अच्छा, तब तुम हो चुग़लख़ोर, चुगलख़ोर। मैं माँ से कह दूँगा तुम मलाई खा गई !"

सर्ज नौकरानी से झगड़ता रहा। पर रसोई में जाने की उसकी हिम्मत नहीं हुई। इसी बात पर एक बार माँ के खाए हुए थप्पड़ उसे याद आ गए।—किन्तु, मन में कौतूहल तो बना ही हुआ था। धीरे से वह रसोई के दरवाज़े वाले बरण्डे में खसककर खड़ा होगया। वह उस जादूगर को बिलकुल पास से देखना चाहता था। ज्योंही एक नौकर ने

रसोई का दरवाजा खोलकर उसमें प्रवेश किया, उसने भीतर की ओर देखना चाहा। पर, देख नहीं पाया। उसे कुछ फुसफुस तो सुनाई देता था, पर वह तो देखना चाहता था जादूगर को। उसका कौतूहल बढ़ता ही गया। अब उससे रहा नहीं गया।

"अच्छा हुआ," सर्ज ने नौकरानी को वहाँ से हटते देखकर कहा। उसके जाते ही उसने धीरे-धीरे दरवाज़ा खोलना शुरू किया। आखिरकार दरवाज़ा खुल गया। सर्ज की हिम्मत नहीं हुई कि वह सहसा सामने देख ले। साँस रोक कर आँखें नीचे किए खड़ा रहा। थोड़ी देर में हिम्मत करके उसने देख ही तो लिया—रसोई के एक कोने में एक मैला-कुचैला आदमी कटोरी हाथ में लिए कुछ खा रहा था। खाते समय वह डरी हुई नज़र से इधर-उधर ताकता जा रहा था। मानो उसे डर था कि उसका भोजन कोई छीन न ले जाय—वह मजबूती से कटोरी को पकड़े हुए था।

पर कहाँ गया जादूगर? सर्ज ने आगे बढ़कर रसोई में चारोंओर दृष्टि दौड़ाई। वहाँ तो रसोईदारिन और इस आदमी के सिवा कोई तीसरा न था। क्या यही जादूगर है?

अब उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। वह रसोई में चला गया। जादूगर हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ। हाथ की कटोरी जल्दी में ज़मीन पर गिर पड़ी।

"नहीं, कोई डर नहीं; खाते जाओ" रसोईदारिन ने कहा—छोटे मास्टर कुछ नहीं कहेंगे।"

"किस बारे में?" सर्ज ने पूछा।

"देखो छोटे मास्टर! अपनी माँ को नहीं कहना कि यहाँ एक आदमी बैठा खा रहा था। यह तो बचा-खुचा था।"

"अच्छी बात है।"

"बेचारा भूखा है, छोटे मास्टर! तुम्हें उस पर दया आनी ही चाहिए।"

"कौन ?"

"क्यों, यह, मेरा घरवाला।"

"तुम्हारा घरवाला ?"

सर्ज कोने में खड़े उस कमजोर, ठिगने, भूखे आदमी की ओर टेढ़ी नज़र से ताकने लगा। "सचमुच उसने अपना रूप बदल लिया है।" उसने सोचा और कहा:—

"तो तुम—तुम हो जादूगर—मैं जान गया।"

"कौन ?"

"तुम, तुम !"

"मैं तो, छोटे मास्टर ! एक मजदूर हूँ, सो भी बेकार।"

"पर तुम हो एक जादूगर—मुझे मालूम है—तुम सब कुछ कर सकते हो। तुम्हीं ने तो वे सब बदमाशियाँ की थीं—पर देखो, ध्यान रखना, फिर से वैसा न करना। मोमबत्तियों से अँधेरा दूर होता ही नहीं; और देखो, सवेरे मुझे स्कोन खाने का बड़ा शौक है।"

"मैंने तो कुछ भी नहीं किया छोटे मास्टर ! लो, मैं अभी चला जाता हूँ।"

"और, तुम किसी से नहीं डरते ?—मैं तो सोचता था, तुम पहाड़ के बराबर होगे, और नाराज भी होगे—पर तुम—तुमने अपना रूप बदल लिया है क्या ?"

"तुम मेरा मज़ाक कर रहे हो ? क्यों ? मेरे पास खाने को नहीं है, इसीलिए ?—इस तरह हँसना पाप है।"

"और मैं तो सोचता था तुम बड़े प्रभावशाली होगे—पर तुम—तुम तो बड़े—अजीब हो !—खाते समय तुम्हारा हाथ काँप रहा था—तुमसे तो मुझे कुछ भी डर नहीं।"

तो भी सर्ज दौड़कर रसोई के दरवाजे पर पहुँच गया। इस डर के मारे कि कहीं जादूगर ने उसका पीछा किया तो वह झटपट भाग जायगा। पर, कुछ भी नहीं हुआ। उसे दौड़ना नहीं पड़ा। उसने फिर रसोई की ओर पाँव बढ़ाया। वह वहाँ क्या कर रहा है ? कौन रो रहा है ? अरे, वही तो। वही ? फूट-फूटकर रो रहा था और अपने कुरते की आस्तीन से आँसू पोंछ रहा था।

"जादूगर होकर रो रहे हो ? अहा ! खूब हुई, तुमने—तुमने पिताजी को आने से क्यों रोक दिया था ?—बिजली की रोशनी क्यों बन्द कर दी थी ?—और, और स्कोन भी तुम्हीं ने रोक दिए थे ?—ठीक तो है, अब भगवान ने तुम्हें दण्ड दिया है, भोगो उसे।—वाह वा ! वाह वा !!" अकस्मात् सर्ज ज़ोर से पुकार उठा। उसकी आवाज सारे घर में सुनाई दी। विजय-पूर्ण हँसी हँसता हुआ वह दाई-माँ के पास जाकर बोला:—

"अब मुझे उसका तनिक भी डर नहीं। सच कहता हूँ, ज़रा भी नहीं।"

———

रूस : : : मैक्सिम गॉर्की

छब्बीस और एक

हम लोग थे छः और बीस। एक अन्धकारमय आँगन में हम छब्बीसों प्राणी मशीन की भाँति सुबह और शाम तक बिस्कुट और रोटियाँ बनाने के काम में खटते रहते। हमारे आँगन की खिड़कियाँ समीप ही के एक खड्ड की ओर खुलती थीं, जो सदियों-पुराने ईंट-पत्थरों और कूड़े-कर्कट से भरा था। खिड़कियों पर लोहे की जाली लगी थी और चौखट आटे की धूल से भरे थे; सूर्य प्रवेश करता भी तो किधर से? हमारा मालिक सब द्वार मज़बूती से बन्द रखता था। उसे भय था कि हम लोग उसके धन का एक भी कण कहीं अपने किसी निर्धन अथवा एक ऐसे भाई को न दे दें, जो काम के बिना भूखों मर रहा हो। हमारा मालिक हमें खरीदे हुए गुलाम समझता और हमें खाने को रूखे-सूखे टुकड़े देता।

हम लोग अपना वह निकृष्ट जीवन उस पींजरे में बिताते थे। छत धुएँ से काली हो रही थी। उसमें मकड़ियों के सफ़ेद जाले अनुपम शोभा

पा रहे थे। वह जीवन बहुत ही अधिक कष्ट-प्रद था। पौ-फटते ही हम लोग उठते, हमारी नींद भो नहीं टूटती, खुमारी भी नहीं मिटती कि हम लोगों को काम पर बैठ जाना पड़ता। एक मूर्ख की भाँति उदासीन चित्त से हम लोग ६ बजते-बजते साने हुए आटे को लेकर बिस्कुट बनाने के काम में लग जाते। आटा सानने का काम तो हमारे कुछ साथियों को उसी समय कर लेना पड़ता था, जब दूसरे सोये रहते। इस प्रकार, दिनभर और रात के दस बजे तक हम लोग काम करते रहते। बिस्कुट पकाने के बर्त्तन में दिनभर पानी खौलता रहता और पकानेवाले के करछे का कर्ण-कटु स्वर निरन्तर सुनाई देता रहता। भट्टी में सारे दिन लकड़ियाँ जलती रहतीं और उस अग्निशिखा का प्रकाश कारखाने की दीवारों पर पड़कर मानो हमारी ओर हँसता रहता। ऐसा मालूम देता कि वह भट्टी डरावनी सूरतवाले दैत्य के समान है। धरती फाड़कर दैत्य ज्वालामुखी के समान अपना सिर बाहर निकाले है और ऊपर के उन दो छेदों में से वह दैत्यराज हमारे अनन्त परिश्रम को देख रहा है। वे दोनों छेद दानव के नेत्रों के समान थे-निर्मम और दया-विहीन। ऐसा मालूम होता था, कि हम गुलामों को देखते-देखते दानव की वह दृष्टि भी उकता गई है और वह हमें मनुष्योचित स्वाभिमान से वञ्चित देखकर घृणा कर रही है।

प्रतिदिन हम लोग उस कष्ट-प्रद वातावरण में, धूल और धुएँ में, अपने तन के पसीने और आँखों के आँसुओं से सींच-सींचकर बिस्कुट बनाते रहते। अपने ही परिश्रम से बनी हुई वस्तु से हम लोग वञ्चित रहते। हमारे तो नसीब में थे रूखे-सूखे टुकड़े! मशीन के कल-पुरजों की

भाँति हमारे हाथ और अँगुलियों को अपना काम करने की आदत पड़ गई थी। हमने एक दूसरे को आपस में इतना अधिक पहचान लिया था कि प्रत्येक अपने साथी के चेहरे की एक-एक झुर्री से भी परिचित था। हम एक दूसरे की ओर देखते भर थे। बात करते भी क्या? बात करने का कोई विषय ही हमारे पास नहीं था। बात करते तब, जब लड़ना-झगड़ना होता। बात का बतंगड़ बनाने में क्या ज़ोर आता? पर हम लोग लड़ते भी बहुत ही कम बार। कठोर परिश्रम से जिसका मन मारा गया है, ऐसा अस्थि-कंकालावशिष्ट अधमरा प्राणी लड़े भी तो कैसे? मौन तो उन लोगों के लिए भयावह और कष्ट-प्रद है, जिन्होंने बक-झककर अपना पेट खाली कर दिया है—जिनका शब्दों का खजाना खाली हो गया है। परन्तु, जिन्हें अभी अपनी कष्ट-गाथा के लिए शब्द ही नहीं मिले हैं, उनके लिए तो मौन शान्ति-प्रद है, सुखकर है।—हाँ, कभी-कभी हम लोग गाया करते थे ज़रूर। काम से उकताकर हममें से कोई थके हुए घोड़े की तरह हिनहिनाकर अपनी थकावट मिटाने के लिए कुछ गुनगुनाने लगता। उसी गुनगुनाहट में से स्वर निकलने लगते और दूसरे सब उसके एकाकी 'गायन' को सुनते रहते। उस काल-कोठरी में उसकी स्वर-लहरियाँ धीरे-धीरे मन्द पड़कर विलीन हो जातीं। सहसा उन टूटती हुई कड़ियों को पकड़कर दूसरा साथी उसकी मदद करने लगता। अब दो के स्वर मिलकर धीरे-धीरे उदासीनता से सिर उठाते। तत्काल ही सब एक साथ टेर उठते और गायन एक लहर की भाँति गरजकर हमारे कारागृह की पथरीली दीवारों से टकराने लगता।

इस प्रकार हम सब—छः और बीस—अपने दिल की भाप निकालने लगते। हमारे गीत के नाद से कारखाने का कमरा गूँज उठता, गीत उसमें समा ही नहीं पाता। गीत की स्वर-लहरियाँ दीवारों से टकरातीं, चीत्कार करतीं, रोतीं, हमारे सुपुप्त हृदयों में एक मीठा दर्द पैदा करतीं, हमारे पुराने घावों को हरा कर देतीं, हाहाकार करके एक पीड़ा को जगा देतीं। गानेवालों में से कभी कोई गहरी उसास लेकर चुप हो जाता। थोड़ी देर चुप रहकर पुनः अपने साथियों के स्वर में स्वर मिलाता। कभी कोई साथी दुखित स्वर से आह भरकर आँखें बन्दकर ज़ोर-ज़ोर से गाने लगता। संगीत की वह स्वर-धारा उसे एक सुदूर प्रान्त तक विस्तृत पथ की भाँति, प्रतीत होती; जिस पर सूर्य का प्रकाश है, आनन्द का साम्राज्य है और उस पथ पर चल रहा है वही स्वयं—।

दूसरी ओर, दिन भर भट्टी में लपटें निकलती रहतीं; पकानेवाले का करछा निरन्तर कर्णकटु स्वर करता रहता; देगची में पानी खौलता रहता और अग्निशिखा का प्रतिबिम्ब दीवारों पर पड़कर हमारी ओर चुपचाप हँसता रहता!—शुद्ध वायु और प्रकाश से वंचित, दुखिया गुलामों की तरह हम, हम—बीस और छः—छब्बीस प्राणी, उस काल-कोठरी सरीखे कारखाने में अपने भार-रूप जीवन के दिन काटा करते थे।

किन्तु, गायन के अतिरिक्त हमारा एक प्रिय कार्य और भी था। सूर्य के प्रकाश से भी अधिक प्रिय! हमारे कारखाने की दूसरी मञ्ज़िल पर कार-चोबी का एक कारखाना था। उसमें काम करनेवाली बहुत सी लड़कियों में एक लड़की थी १६ बरस की। नाम था तनया। रोज सबेरे वह आती, कारखाने की एक खिड़की में से झाँककर, सींकचों से अपना

गुलाब-सा मुखड़ा लगाकर अपने कोमल और प्रेमपूर्ण स्वर से कहती—

"कैसे भले हो तुम कैदियो ! लाओ, मुझे कुछ बिस्कुट तो दो।"

उस परिचित और प्रिय स्वर को सुनकर हम सभी उस ओर देखने लगते। उस कुमारी के पवित्र चेहरे पर खिले हुए हास्य को देखकर हम लोगों का चित्त प्रसन्न हो जाता। खिड़की के सींकचे से दबी उस सुघड़ नासिका को, गुलाब की पंखड़ियों-से ओठों के बीच में चमकती हुई आबदार श्वेत दंतपंक्ति को, उस मुसकान को देखना हमारा नित्यप्रति का परम प्रिय कार्य होगया। उसे देखते ही एक साथ बहुत से दरवाजे की ओर दौड़ पड़ते। द्वार खुलते ही वह उसके सामने खड़ी हो जाती। वह हमारे लिए आनन्द का श्रोत थी। मुस्कान तो उसके चेहरे पर सदा विराजती रहती। उसके लम्बे-लम्बे घुँघराले बाल दोनों ओर कंधों पर से आकर वक्षस्थल पर खेलते रहते। हम दुखी, दरिद्र, मैले-कुचैले अप-रूप पशु उसकी ओर ताकते रहते। आँगन से द्वार की देहली नीची थी। उसे देखने के लिए हमें गर्दन उठानी पड़ती थी। हम सभी उससे बात करने को आतुर रहते। उससे बात करते समय हमें शब्दों को सँभालना पड़ता उसके आगे जो शब्द हमारी जबान पर आते वे मानों उसीके लिए थे। उससे बात करते समय हमारी वाणी में न जाने कहाँ से कोमलता आजाती ! उसके आगे हमारी प्रत्येक चेष्टा में नवीनता होती। पकानेवाला चुप-चाप बिस्कुटों का एक सम्पुट भरकर चालाकी से तनया के आँचल में पहुँचा देता।

"सावधान रहना, कहीं मालिक के आगे न पड़ जाना"—हम सदा उसे सावधान कर देते और वह हँसती हुई हमसे विदा लेकर चली जाती।

उसके चले जाने के बहुत देर बाद हमारी ज़बान खुलती और हम लोग आपस में उसीकी बात करते। पहले या पीछे, देरी से या जल्दी, हम लोग वही बात करते। उसमें, हममें और हमारे चारों ओर के पदार्थों में कोई परिवर्त्तन तो होता ही नहीं था। पहले या पीछे देरी से या जल्दी सदैव वही हाल था। अपरिवर्त्तनशील वातावरण में दिन काटना कितना भार-स्वरूप है? उस कष्ट से यदि किसी की आत्मा का हनन नहीं हो जाता तो जितना ही अधिक वह जीता है, उतना ही अधिक कष्ट भोगता है। जब कभी हम स्त्री-समाज की चर्चा करते, तो अपने उन अपशब्दों की कटुता और निर्लज्जता से स्वयं सिहर उठते, किन्तु यह जान लेना चाहिए कि हम जिन स्त्रियों की चर्चा करते थे, भले शब्दों में उन्हें याद भी नहीं किया जा सकता था। चाहे जो हो, तनया के बारे में हम कभी कोई अपशब्द मुँह से नहीं निकालते थे। कोई भी उसकी ओर अँगुली तक उठाने का साहस नहीं कर सकता था। इतना ही क्यों, उसकी ओर तो कोई नापाक निगाह से देखता भी नहीं था। सम्भव है इसका कारण यही था कि वह बहुत थोड़ी देर हमारे सामने रहती थी। गगन में चमकते हुए तारे की भाँति अपना सौन्दर्य दिखाकर वह सहसा विलीन हो जाती थी। अथवा इसका कारण उसका निर्मल विशुद्ध सौन्दर्य ही रहा हो। एक कठोर हृदय में भी सौन्दर्य तो अपने प्रति आदर उत्पन्न कर ही लेता है। एक और भी बात थी। उस बन्दी-जीवन से भी बदतर जीवन ने हमें पशु-तुल्य बना दिया था; तो भी हम

थे तो मनुष्य-देहधारी पशु ही। दूसरे मनुष्यों की भाँति किसी न किसी को पूजा करने की, उसे अपना हृदय सौंपने की, भावना के बिना जीवन-निर्वाह करते तो कैसे? हमारे लिए तो उससे अधिक प्रिय और कोई था ही नहीं—उसके अतिरिक्त और किसी को हमारी चिन्ता थी ही नहीं। उस घर में बीसों लोग रहते थे, पर उसके अतिरिक्त कौन हमारी ओर दयापूर्ण नेत्रों से देखता था?

सबसे मुख्य बात तो यह थी कि हमें उसके प्रति ममता हो गई थी। भला हो उन बिस्कुटों का, जिनके द्वारा हम अपनी आराध्य देवी को भेंट दे सकते थे। प्रतिदिन उसे उम्दा से उम्दा गरमा-गरम बिस्कुट देना हमारा आवश्यक कर्त्तव्य हो गया था। बिस्कुट ही नहीं, तनया को हम-लोग अच्छी सलाह भी दिया करते थे—सरदी से बचाव के लिए गरम कपड़े पहना करो, दौड़कर सीढ़ियों पर मत चढ़ा करो, ज़्यादा वज़न मत उठाया करो। हमारी सलाह को वह सुनती, खिलखिलाकर हँस देती, पर कभी उनका पालन नहीं करती। अपनी सलाहों की अवज्ञा से हमें दुख नहीं होता था। हम तो यही दिखा देना चाहते थे कि हम उसकी कितनी चिन्ता रखते हैं।

बहुधा वह हमसे अपने काम में साधारण मदद माँगा करती। कभी गोदाम का भारी दरवाज़ा खुलवाती, तो कभी हमें लकड़ी तोड़ देने को कहती। और हम लोग उसके काम को खुशी-खुशी ही नहीं, गर्वपूर्वक कर देने के लिए तत्पर रहते।

एक बार की बात है। हमारे एक साथी ने उसे अपनी फटी कमीज़ सी देने के लिए कहा। तनया ने नाक-भौं सिकोड़कर

व्यंगपूर्वक कहा—"क्या खूब ! मुझे और कोई काम ही नहीं है क्या ?"

अपने उस साथी की मूर्खता पर हम लोग खूब हँसे। हमने फिर कभी उसे अपने किसी काम के लिए नहीं कहा। हम लोग उसे प्यार करते थे, सौ बातों की एक बात यह है। मनुष्य किसी न किसी को प्रेम करने के लिए आतुर रहता है, चाहे प्रेम के भार से उसकी प्रेयसी दब ही क्यों न जाय–उसका सर्वनाश ही क्यों न हो जाय। हम लोग तो तनया से प्रेम करने के लिए बाध्य थे। हम किसी अन्य से प्रेम करते भी तो किससे ?

कभी-कभी हममें से कोई यों तर्क करने लगता—"हम लोग उसके पीछे इस तरह क्यों पागल हो रहे हैं ? उसमें है ही क्या ? हमने व्यर्थ उसे सिर पर चढ़ा लिया है।"

ऐसी बातें करने का जो साहस कर बैठता, उसे दूसरे खूब आड़े हाथों लेते। हम लोग प्यार करना चाहते थे। वांछित वस्तु हमें मिल गई थी और हम उसे प्यार करते थे। और जिसे हम छब्बीस प्राणी प्यार करते थे, उसके अदूषित होने में सन्देह ही क्या हो सकता था ? वह तो हमारी पवित्र प्रतिमा थी। जो इस विषय में हमारा विरोध करता, वही हमारा शत्रु था। निस्संदेह लोग ऐसा प्यार भी कर बैठते हैं, जो अच्छा नहीं होता। किन्तु तनया के विषय में तो हम छब्बीस जन एकमत थे।

सादे बिस्कुटों के कारख़ाने के सिवाय हमारे मालिक का एक कारख़ाना फेन्सी बिस्कुट बनाने का भी था। वह कारख़ाना भी हमारे बराबर में ही था, बीच में केवल एक दीवार थी। उसमें काम करनेवाले चार ही आदमी थे। हमारे काम से उनका काम बढ़िया था और इसीलिए वे

अपने आपको हमसे ऊँचा समझते थे। वे कभी हमारे कारख़ाने में पाँव भी नहीं रखते थे। जब कभी बाहर आँगन में उनसे भेंट हो जाती तो हमें देखकर वे घृणा से मुँह फेर लेते। हम लोगों को उनके कारख़ाने में जाने की इजाज़त नहीं थी। क्योंकि हमारे मालिक को इस बात का भय था कि कहीं हम लोग वहाँ से दूध-मलाई न चुरा लें। फैंसी बिस्कुटों के कारीगरों को हम बिल्कुल नहीं चाहते थे। क्योंकि हम लोग उनसे ईर्ष्या करते थे। उन्हें हम लोगों से कम मेहनत का काम करना पड़ता, तो भी उन्हें अधिक वेतन मिलता, खाने-पीने को भी अच्छा मिलता। उनका कारख़ाना भी बड़ा और हवादार था। वे स्वयं भी साफ़-सुथरे और स्वस्थ रहते। उनकी दशा हम लोगों से बिलकुल विपरीत थी। हम सबके चेहरे पीले पड़ गये थे। तीन को मलेरिया सताता था; पाँच-सात को अजीर्ण बना ही रहता। एक तो बिचारा मौत से लड़-झगड़कर जी रहा था। वे त्यौहार के दिन फ़ुरसत के समय नये-नये कपड़े और चरमराते हुए जूते पहनकर चैन की बंसी बजाते हुए, बाग में टहलने के लिए निकलते और हम लोग बाहर निकलते अपने चिथड़े पहनकर, पुराने जूते घसीटते हुए। पुलिस हमें बाग में नहीं घुसने देती थी। फिर हम फैंसी बिस्कुटों के कारीगरों को क्योंकर प्यार करते ?

एकदिन हमने सुना कि उनके मुखिया को शराब की लत पड़ गई है। मालिक ने उसे निकालकर दूसरा मुखिया रख लिया है और वह है एक पेंशनयाफ़्ता सिपाही। वह जरी की जाकट पहनता और मौक़े-मौके पर सोने की कंठी। ऐसे आदमी को देखने के लिए हम लोग बारी-बारी से बाहरी आँगन की ओर गये।

किन्तु वह तो खुद ही हमारे कारखाने में आ गया। दरवाजे को उसने ठोकर मारकर खोला। मुक्त-द्वार की देहली पर खड़े होकर उसने हँसकर हमें सान्त्वना की दो बातें कहीं।

भट्टी के धुएँ और आटे की धूल के बादल में खड़ा होकर वह हमारी ओर अपनी अभिमान-भरी आँखों से देख रहा था। बड़े-से गोरे चेहरे पर जब वह मूँछों पर ताव देता तो उसके पीले-पीले दाँत दिखाई देने लगते। उसकी जाकट भी अजीब थी—आसमानी साटन पर गुलाबी बेल-बूटों का काम था। जाकट की बटनें मोतियों की थीं और सोने की कंठी भी उसके गले में थी।

वह सुन्दर था, सैनिक था, लम्बा और हृष्ट-पुष्ट था। उसका चेहरा सुर्ख़ था। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में भलेपन और मैत्री का भाव था। उसकी सारी वेशभूषा अद्भुत थी।

हमारे मुखिया ने उसे दरवाज़ा बन्द करने के लिए नम्रता से कहा। दरवाज़ा बन्द करके वह हमसे मालिक के बारे में पूछताछ करने लगा। एक से एक बढ़कर हम लोगों ने अपने मालिक का बखान किया—वह तो रक्त-शोषक है, कुकर्मी है, पिशाच है। और न जाने क्या-क्या विशेषणों से हमने मालिक को विभूषित किया। उसका वैसा वर्णन करने के लिए हमारे दिल हमें बाध्य करते थे। उसका पूरा वर्णन तो यहाँ लिखा ही नहीं जा सकता। उस फ़ौजी आदमी ने हमारी बातें सुनकर, कौतुक-भरी दृष्टि से हमारी ओर देखकर, मूँछों पर ताव दिया।

"और, मेरा ख़याल है, यहाँ आसपास कुलटाओं की तो कमी नहीं होगी।" उसने सहसा कहा।

हममें से कुछ हँस दिए, कुछ सुस्त होकर मुँह बनाने लगे। हममें से एक ने बता दिया—यहाँ ऐसी बीसों कुलटाएँ हैं।

"तो तुम लोग भी कभी-कभी—" आँखें मटकाकर सिपाही ने कहा—

एक बार फिर हम लोग हँस पड़े; पर धीरे-धीरे ही। हम लोगों के चेहरों पर घबड़ाहट-सी छा गई। हममें से बहुतों ने इरादा किया होगा कि सिपाही को बता दें कि हम भी उसी की भाँति साहसी हैं। परन्तु किसी की भी ज़बान नहीं खुली। हाँ, एक ने इतना-सा इशारा ज़रूर कर दिया—"जैसी हालत में हम लोग—"

"हाँ, हाँ ठीक है। ऐसी हालत में तुम्हारे लिए यह बात अवश्य दुस्साध्य है।" हमारी ओर ताकते हुए उसने विश्वस्त शब्दों में कहा—"पर, इससे क्या? तुम तो अपने भाग्य को लेकर बैठे हो। उस मार्ग की तो रीति ही न्यारी है। आदमी में चाहिए दिखावा—मेरी बात समझते हो न? तुम जानते हो, औरतों को तो मर्द की शान-शौकत पसन्द है। खूब साफ़ और सुथरी बनावट-बुनावट होनी चाहिए। और इसके सिवा चाहिए भुजाओं में बल। क्यों, देखा? कैसी है यह भुजा?"—

सैनिक ने अपनी दाहिनी नग्न भुजा ऊपर उठाकर दिखाई। कोहनी तक कुरते की बाँह सिमटी हुई थी। उस गौरवर्ण भुजा पर सुनहले बाल चमक रहे थे।

—"वेशभूषा ही तो ख़ास बात है। प्रलोभन की चीज़ें भी पास होनी चाहिए। मेरी ओर देखो—सभी स्त्रियाँ मुझे प्यार करती हैं। न मैं किसी को बुलाता हूँ, न सैन करता हूँ; तो भी वे मेरा पिण्ड नहीं छोड़तीं।"

वह आटे की औंधी टोकरी पर बैठ गया और बहुत देर तक हम लोगों को अपनी प्रेम-गाथाएँ सुनाता रहा—किस प्रकार औरतें उसे प्यार करती हैं, किस प्रकार वह उन पर विजय प्राप्त करता है, यह सब बातें उसने सुनाईं। उसके चले जाने के बहुत देर बाद तक हम लोग उसीकी बात सोचते रहे। फिर सहसा हम लोगों में वार्त्तालाप आरम्भ हुआ और सब ने एकमत से स्वीकार कर लिया कि वह है तो आनन्दी जीव, खरा भी है और हँसोड़ भी। बिना किसी संकोच के वह हम लोगों में हिलमिल गया और इतनी बातें कर गया। इससे पहले तो कभी कोई इतने प्रेम-भाव से आकर हमसे नहीं मिला था। हम उसी की बातें कर रहे थे, उसकी भावी करतूतों की हम चर्चा करते थे। कारचोबी के कारखाने में काम करनेवाली उन लड़कियों की भी बात चली जो कारखाने के बाहर चौक में मिलने पर हमसे कन्नी काटकर, घृणा से मुँह बिचकाकर, एक ओर भग जाया करती थीं। और हम लोग तो उन्हें आँखों की राह पी जाने को उत्सुक रहते। रंग-बिरंगी पोशाक पहनकर वे कैसी भली मालूम देती थीं! किन्तु दूसरी ओर हम लोग जब उनकी चर्चा करते तो ऐसी भद्दी कि यदि वे कभी सुन पातीं तो लज्जा और क्रोध से पागल हो जातीं—।

"पर हमारी उस तनया का क्या हाल होगा? यह दुष्ट कहीं उसका भी सर्वनाश तो नहीं कर बैठेगा?" हमारे मुखिया ने चिन्तित स्वर में कहा।

सबकी बोलती बन्द हो गई। उसकी इस बात का हम लोगों पर बहुत ही प्रभाव पड़ा। हम लोग तो तनया की बात भूल ही गये थे।

सिपाही की उस शानदार सूरत के पीछे तनया का वह सुकोमल मुख छिप गया था। अब हम लोगों में एक विवाद उठ खड़ा हुआ। कइयों ने कहा–तनया अपने आचरण को भ्रष्ट न होने देगी। दूसरों की राय थी कि तनया उसके सामने टिक नहीं सकेगी। एक तीसरे ने सूचित किया कि यदि उस सिपाही ने तनया की ओर आँख उठायी, तो वह उसकी खोपड़ी तोड़ देगी। अन्त में, यही निश्चय हुआ कि हम लोग सिपाही और तनया दोनों की हरकतों पर निगाह रक्खेंगे और तनया को उससे साव-धान कर देंगे—।

एक महीना बीत गया। सिपाही अपना काम करता, शाम को कारख़ानों की छोकरियों के साथ बाहर निकलता। हमारे कारख़ाने में भी बहुत बार आया करता। अपने दुराचरण की गाथाओं के सिवा वह और किसी बात की चर्चा ही नहीं करता। कुलटाओं पर अपनी विजय का हाल सुना-सुनाकर मूछों पर ताव देता रहता।

तनया रोज सबेरे आती और सदा की भाँति बिस्कुट ले जाती। वह उसी प्रकार हँसमुख, विनम्र और प्रिय थी। हम उसके साथ सिपाही की बात करते; और वह उसे बिना सींग का बैल या बिना पूँछ का बन्दर कहती। उसकी इस बात से हमें बड़ा भरोसा हो रहा था। जब हम दूसरी कमज़ोर दिलवाली लड़कियों को देखते तो हमें अपनी तनया का अभिमान हो आता। तनया के स्वाभिमान ने मानों हम सबको ऊँचा उठा दिया, और हम लोग उसके सदाचार के नियामक बनने के गर्व में, उस सिपाही को घृणा से देखने लगे। तनया के प्रति हमारा प्यार प्रतिदिन

बढ़ता गया, और हमें वह प्रतिदिन अधिकाधिक आनन्दप्रद और प्रसन्न-चित्त प्रतीत होने लगी।

एक दिन सिपाही हमारे पास आया—नशे में चूर। हमारे पास ही बैठकर वह ज़ोर-ज़ोर से हँसकर कहने लगा—"दो छोकरियाँ मेरे लिए आपस में सिर फोड़ रही हैं। हा, हा, वे आपस में किस प्रकार गाली-गलौज कर रही हैं। पिल पड़ीं आपस में, एक दूसरे का झोंटा पकड़कर! हा! हा! हा! क्षणभर में दोनों में मल्लयुद्ध शुरू हो गया। मेरे तो पेट में हँसते-हँसते बल पड़ने लगे—हा! हा! हा!"

वह एक तिपाई पर बैठा था। हँसते-हँसते वह पागल-सा हो रहा था। हम लोग चुप। कैसे भी हो, हमें उस समय वह बहुत खटक रहा था।

"न, न, मैं स्वयं नहीं समझ रहा हूँ। औरतों के बारे में मैं कैसा भाग्यशाली हूँ। ज़रा सी सैन करने की देर है, बस—।"

उसने अपना हाथ ऊपर उठाकर ताल ठोंकी। उसकी नज़र में एक प्रकार का गर्व था, आश्चर्य था। किस बात का? स्त्रियों के मामले में अपने 'सद्भाग्य' का। उसके भरे हुए लाल चेहरे पर प्रसन्नता और हर्ष के चिह्न स्पष्ट अंकित थे।

हमारे मुखिया ने क्रोध से अपने करछे को भट्टी पर दे मारा और व्यङ्ग-पूर्वक कहा—

"एरण्ड को उखाड़ फेंकने में कौन-सी ताक़त की ज़रूरत है? किसी बड़-पीपल पर ताक़त आज़माओ तो मालूम हो।"

"क्या मुझे कहते हो?" सिपाही ने गरजकर पूछा।

"हाँ, हाँ, तुम्हीं को।"

"तुम्हारा क्या मतलब है?"

"कुछ भी नहीं—ख़ैर, जाने दो।"

"नहीं क्यों? अच्छा बताओ तो, किस बड़-पीपल की बात तुम कहते हो? कौन है ऐसी?"

हमारे मुखिया ने कोई उत्तर न दिया। वह अपने काम में लगा रहा—करछा उसी प्रकार चल रहा था। पके हुए बिस्कुटों का ढेर छोकरों के आगे होता जा रहा था। सिपाही की बात मानों उसकी याद ही से उतर गई। किन्तु, सिपाही को चैन कहाँ था? भट्ठी की ओर बढ़कर उसने कहा—

"बोलो। बतलाओ, बड़-पीपल के समान कौन है वह? तुमने मेरा अपमान किया है। ऐसा कौन है जो मुझे दुत्कार दे? तुम्हें इस प्रकार मेरा अपमान करने का साहस ही कैसे हुआ—?"

सचमुच, उसे बहुत बुरा मालूम दिया। औरतों पर विजय प्राप्त कर लेने की अपनी योग्यता का उसे बड़ा गरूर था। उसकी दृष्टि में तो मनुष्योचित गुणों में वही सर्वश्रेष्ठ गुण था।

ऐसे लोग भी हैं जो तन या मन के किसी रोग को अपने जीवन का एक बहुमूल्य पदार्थ मानते हैं और जीवन पर्यन्त उसको पालते-पोसते रहते हैं। वह रोग उन्हें पीड़ा पहुँचाता है, तो भी उनके जीवन का आधार वही रोग होता है। अपने रोग की वे दूसरों से शिकायत करते फिरते हैं। पास-पड़ोस के लोगों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित होता है, रोगी को उनकी सहानुभूति प्राप्त होती है, और यही उन्हें चाहिए। उनका रोग ठीक कर दीजिए, वे नङ्गे हो जायँगे। किन्तु उन्हें चिन्ता आ

घेरेगी। वह रोग ही तो उनके जीवन का आधार था। कई बार तो देखने में आता है कि मनुष्य का जीवन इतना कष्टपूर्ण और दुस्सह हो जाता है कि उसे स्वेच्छा के प्रतिकूल किसी न किसी पाप-कृत्य में फँस जाना पड़ता है, और उसीसे उसका जीवन-निर्वाह होने लगता है। हाँ, हम यह अवश्य कह सकते हैं कि बहुधा मनुष्य अपनी उदासीनता के कारण ही अवगुणी बन जाता है।

सैनिक उत्तेजित हो उठा और हमारे मुखिया की ओर झपटकर उसने कहा—"इधर आओ! बोलो, ऐसी कौन है वह?

अबकी बार हमारे मुखिया ने सहसा उसकी ओर मुड़कर क्रुद्ध स्वर से कहा—"जानते हो तुम तनया को?"

"तो?"

"तो, क्या? आज़माओ अपनी ताकत उस पर, देखूँ?"

"मैं?"

"हाँ, हाँ, तुम।"

"उँह, इसमें कौन-सी बड़ी बात है?"

"देखूँ तो!"

"देख लेना, हा—हा—हा! मुझे एक महीने की मोहलत दो।"

"बहुत शेख़ी बघारते थे न तुम?"

"पन्द्रह दिन ही सही, मैं देख लूँगा वह कैसी है। कौन वह तनया ही न? उँह!"

"अच्छा, अब जाओ यहाँ से।"

"बस, पन्द्रह दिन—इसी बीच में—देख लेना तुम।"

"बस, चल दो यहाँ से !"

हमारा मुखिया क्रोध से पागल-सा हो गया। वह करछे को अंट-संट चलाने लगा। सिपाही वहाँ से चकित होकर सटक गया। जाते-जाते उसने बड़ी गम्भीरता से कहा—

"अच्छा !"

उन दोनों के झगड़े के समय हम सब चुपचाप थे। किन्तु सिपाही के बाहर होते ही हम लोगों में ख़ासा वाद-विवाद छिड़ गया।

एक ने मुखिया को संकेत करके कहा—"तुम्हें भी यह क्या सूझी—?"

"जाओ, अपना काम देखो !" हमारे मुखिया ने झिड़ककर कहा।

हम लोग इस बात को जान गये कि सिपाही तनया पर अपना जाल ज़रूर डालेगा। बिचारी पर व्यर्थ आफ़त आ गई। हमें इस बात का दुख था। तो भी हम लोगों के मन में एक कौतूहल समा गया—अब क्या होगा ? तनया सिपाही के सामने टिक सकेगी ? हम लोग इसी पूर्ण विश्वास के साथ चिल्ला उठे—

"तनया ! तनया का वह बाल भी बाँका नहीं कर सकेगा।"

वह भयानक लालसा कैसी थी ? अपनी उस नन्हीं-सी प्रतिमा की हम अग्नि-परीक्षा करने को लालायित हो उठे। हम आपस में उत्साह-पूर्वक चर्चा करते कि हमारे आदर की वह प्रतिमा इस कठिन परीक्षा में अवश्य उत्तीर्ण होगी। हमें मालूम होने लगा कि सिपाही को हमने पूरी तरह नहीं उकसा पाया है। उस तकरार की बात को वह भूलता-सा दिखाई दिया—उसके अभिमान को बस थोड़ा-सा गुदगुदाते रहना

चाहिए। उसी दिन से हम लोगों का समय एक ऐसी विचित्र मनोवृत्ति के आवेश में बीतने लगा, जिसका अनुभव हमने पहले कभी नहीं किया था। हम एक दूसरे से खूब वितण्डावाद करते। मानों हम सभी में बुद्धि और बात करने की योग्यता छप्पर फाड़कर आ गई है। ऐसा प्रतीत होता कि हम लोग दानव के साथ बाज़ी खेल रहे हैं और हमारी ओर से दाँव में है तनया। और जब हमने फैंसी बिस्कुट के कारीगरों से सुना कि वह दुष्ट तनया के पीछे दौड़-धूप करने लगा है, तब हम व्यग्रता और कौतूहल से किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गये। हमारी इस व्यग्रता का लाभ उठाकर मालिक ने हमारे काम में पाँच मन आटा बढ़ा दिया। जोश-जोश में हमें उसका पता नहीं चला। दिन भर तनया का नाम हम लोगों की ज़बान पर रहता और रोज़ सवेरे एक अद्भुत अधैर्यपूर्ण हृदय से हम उसकी प्रतीक्षा करते।

अपने उस झगड़े के बारे में हमने उसे कभी कुछ नहीं कहा। न हम उससे इस बारे में कुछ पूछते ही थे। हाँ, उस पर कृपा और स्नेह वैसा ही रखते थे। तो भी, उसके प्रति हमारे व्यवहार में एक नवीन भाव आ गया था, जो तनया के प्रति हमारे पूर्व मनोभावों से सर्वथा विभिन्न था। और यह नवीन मनोभाव कौतूहलपूर्ण और तलवार की भाँति तीव्र था!

"दोस्तो, आज वह अवधि समाप्त होती है।" एक दिन काम पर आते ही हमारे मुखिया ने कहा।

बिना याद दिलाये ही हमें उसका पता था। तो भी इस चर्चा के चलते ही हम एक बार काँप उठे।

"ध्यान से देखना, वह आती ही होगी।" मुखिया ने कहा।

एक ने करुण-स्वर से कहा—

"मानों आँखें दिल के भीतर पहुँच जायँगी।"

हम लोगों में एक तीक्ष्ण वाद-विवाद आरम्भ हो गया। आज हम यह जान जाने वाले थे कि वह पात्र, जिसे हमने अपना सर्वस्व समर्पित कर रखा है, कितना पवित्र और अदूषित है। उस दिन, न जाने क्यों, हमारे मन में यह भावना जागृत हो उठी कि हम एक बहुत बड़ी बाज़ी खेल रहे हैं। हमें भय था कि हमारी ममता की उस मूर्ति की यह परीक्षा कहीं हमें धूल में न मिला दे। इन दिनों हमें लगातार यही सुनने को मिलता था कि वह फौजी किस प्रकार हाथ धोकर तनया के पीछे पड़ा है। तो भी, यह आश्चर्य की बात है कि हममें से किसी ने तनया से उसकी चर्चा तक नहीं की थी। नियम से वह रोज सबेरे आती—उसी प्रकार हँसती-हँसाती, और बिस्कुट लेकर चली जाती।

आज भी हमें उसका स्वर सुनाई दिया—

"कैसे भले हो तुम कैदियो! मैं आ गई—"

उससे मिलने के लिए हम लोग टूट पड़े और जब वह हमारे सामने आई तो सबको मानो काठ मार गया। हम सब एकटक उसकी ओर देख रहे थे। पर क्या कहें? क्या पूछें? कुछ ध्यान ही में नहीं आ रहा था। हम लोग उसके आगे मौन और उदासीन भाव से खड़े थे। आज इस स्वागत को देखकर वह चकित हो गई—अकस्मात् हम लोगों ने देखा उसका चेहरा पीला पड़ गया है, आँखें नीची हो गई हैं, मानो धरती में गड़ी जा रही है।

उसने मृतस्वर से पूछा—

"तुम सबको आज हो क्या गया है?"

"और, तुम्हारा यह क्या हाल है?" चिढ़कर हमारे मुखिया ने उससे पूछा।

"मेरा? क्या कहते हो तुम?"

"ऊँह, कुछ नहीं; कुछ भी तो नहीं।"

"लाओ, मुझे बिस्कुट दो।—जल्दी!"

इससे पहले उसने कभी इतनी जल्दी नहीं की थी।

बिना हिले-डुले, उस पर अपनी आँख जमाकर मुखिया ने कहा—

"क्यों, तुम्हें जल्दी पड़ी है?"

सहसा उसने मुँह मोड़ लिया और देखते-देखते आँख के ओझल हो गई।

मुखिया ने अपना करछा उठाया और भट्टी की ओर जाते हुए धीरे से कहा—

"इसका मतलब है-वह गई हाथ में से—ओह, रे दुष्ट—कुटिल!"

हम सब भी भेड़ों की भाँति चुपचाप अपने काम पर जाकर बैठ गये। सबकी ज़बान बन्द थी। थोड़ी देर में किसी ने कहा—"तो क्या यह सम्भव—"

"अच्छा-अच्छा अब उसकी चर्चा करने से मतलब?" मुखिया ने झिड़ककर रहा।

हम लोग सब मानते थे कि हमारा मुखिया हमसे अधिक बुद्धिमान है। उसके शब्दों में उस फौजी की विजय की घोषणा स्पष्ट थी।—हम लोग दुखी और व्यग्र हो उठे।

दोपहर में छुट्टी के समय सिपाही आ पहुँचा। वही सदा की सी शिष्टता और छैलापन उसमें था। उसी पैनी नज़र से हमारी ओर देख रहा था, पर हमें उसकी ओर देखने में बुरा मालूम देता था।

"अच्छा, जनाब ! मर्ज़ी हो तो चलो अपनी आँखों देख लो मेरी शूरता का नमूना !" अभिमान के साथ हँसते हुए उसने कहा—"ज़रा बाहर आओ मेरे साथ और गोदाम की चीरों में से ज़रा झाँक भर लेना—क्यों समझ गए न ?"

हम लोग बाहर गये। गोदाम की दरारों में दृष्टि लगाकर हम लोग बाहरी आँगन की ओर देखने लगे। हमें अधिक नहीं ठहरना पड़ा। तत्काल ही, जल्दी-जल्दी क़दम उठाती तनया दिखाई दी। उद्विग्नता के भाव उसके चेहरे पर साफ़ झलक रहे थे। सड़क के कीचड़ में सँभाल-सँभालकर पैर बढ़ाती हुई तनया आँखों के ओझल हो गई। उसी के पीछे मस्ती से क़दम उठाता, सीटी बजाता हुआ वह फ़ौजी सिपाही आया। अब स्पष्ट हो गया—वे किसी अड्डे की ओर जा रहे थे। मूँछों को फटकारता हुआ वह भी चल दिया।——बूँदा-बाँदी होने लगी। पास ही के पोखर में उनका छप्-छप् शब्द सुनाई देने लगा। कैसा मनहूस था वह दिन ? उदास और गीला। सड़कों में कीचड़ भरा पड़ा था। पहले दिन की आँधी से उड़ी हुई धूल दीवारों पर चिपक गई थी। बूँदें भी धीरे-धीरे टपक रही थीं। उनकी आवाज़ विषादपूर्ण थी। वहाँ खड़े रहना हमें बहुत बुरा मालूम दिया। किन्तु हम तो क्रुद्ध और उन्मत्त-से हो रहे थे। तनया ने हमारा—अपने पुजारियों का—सर्वनाश कर दिया था और वह भी एक साधारण

फ़ौजी के लिये ! एक बधिक का सा आनन्द हृदय में समेटकर हम लोग तनया की प्रतीक्षा में चुप-चाप खड़े थे।

थोड़ी देर में--दिखाई दी वही तनया ! उसकी आँखें--हाँ उसीकी आँखें, हर्ष से चमक रही थीं, और ओठों पर भी मुस्कान थी ! मानो वह किसी स्वप्न-संसार में आनन्द-मग्न विचरण कर रही थी—उसके पाँव ही सीधे नहीं पड़ रहे थे—।

अब असह्य हो गया। हम सबके सब—दरवाजे के बाहर निकल आये। आँगन की ओर दौड़कर हम लोग उसपर बुरे-बुरे ताने मारने लगे; पाशविक क्रूरता से उसे बुरा-भला कहने लगे।

हमें देखकर वह काँप उठी, मानों उसके पाँवों के तले से धरती खसक गई। हमने उसे शत्रु की भाँति घेर लिया, बिना किसी वाक्-प्रपञ्च के हमने मन-भर के उसे बुरी से बुरी गालियाँ दीं।

हमने अपनी आवाज़ को तेज़ नहीं होने दिया। हम जानते थे कि कहीं जा तो सकती नहीं, हमारे बीच में खड़ी है। अपने दिल का गुबार हम चाहे जितना निकाल सकेंगे; पर, न जाने क्यों ? हमने उसपर हाथ नहीं उठाया। वह हमारे बीच में चुप-चाप खड़ी उन अपमानजनक बातों को सुन रही थी। बीच-बीच में कभी इधर देख लेती, कभी उधर। हमलोग तो गाली-गलौज का कीचड़ उसपर बिना थमे फेंक रहे थे।

उसका रङ्ग फीका पड़ गया। आनन्द से पूरे खुले हुए उसके नेत्रों की आभा विलीन हो गई। छाती धड़कने लगी और ओठ फड़कने। हमलोग तो उसे घेरे हुए बदला लेने पर तुले हुए थे। उसने हमें लूट लिया था। हमने अपना सर्वस्व अर्पित किया था--चाहे वह 'सर्वस्व' हम गरीबों का नगण्य

सर्वस्व ही रहा हो, तो भी हम थे छः और बीस, और वह थी अकेली। एक ही। उसे कौन-सा उपयुक्त दण्ड दिया जाय? हमारे ध्यान ही में नहीं आता था। ओह, हम किस बुरी तरह उसे लथेड़ रहे थे। पर वह तो चुप-चाप एक ही तीर खाई हुई मृगी की भाँति टुकुर-टुकुर ताक रही थी-लड़खड़ा रही थी!

हमने उसका मज़ाक किया, उसे कटु-वचन कहे———। दूसरे लोग भी दौड़कर हम में आ मिले———। हममें से एक ने तनया की बाँह पकड़ कर खींची।

सहसा उसकी आँखें चमकीं। हाथ ऊपर उठाकर अपने बाल बाँधते हुए घूरकर हमारी ओर देखकर ज़ोर से, किन्तु गम्भीरता से कहा—
"दुत, दुष्टो! कैद के कीड़ो!"

बिना किसी सोच-विचार के वह हम लोगों के बीच में से तीर की भाँति निकलकर चली गई। दूर जाकर बिना गर्दन घुमाए ही उसने घमण्ड से कहा—

"गुण्डे कहीं के—बदमाश!"

और वह अभिमानिनी सुन्दरी की भाँति चल दी।

हम लोग आँगन में, खड़े हो गए—उसी कीचड़ में, बरसती बूँदों में उस उदास आसमान के नीचे।

कुछ क्षण बाद हम लोग चुपचाप अपने उस काल-कोठरी के समान कारखाने में चले गए। हमारे द्वार में से फिर कभी सूर्य ने प्रवेश नहीं किया-तनया भी फिर कभी नहीं आई।

फ्रांस : : : प्रॉस्पर मेरिमी

मेतियो फाकन

पेतेर्रो-वीशियो से निकलकर पश्चिमोत्तर कोण में टापू के अन्तःभाग में प्रवेश करते समय यात्री को शीघ्र ही विदित हो जाता है कि धरती का उँचाव सामने की ओर है। तीन घण्टे तक बड़े-बड़े चट्टानों और नालों से अवरुद्ध टेढ़े-मेढ़े मार्ग को पार करने पर यात्री झाड़-झंखाड़ों के एक बड़े समूह के पास पहुँच जायगा। यह स्थल कॉर्सिका के चरवाहों और न्याय और नियम की अवज्ञा करनेवालों के आधिपत्य में है। खेत में खाद देने की तकलीफ से बचने के लिए कॉर्सिका का किसान जंगल के एक भाग को जला लेता है। यदि अग्नि आवश्यकता से अधिक दूर तक भी फैल जाय, तो भी उसे परवा नहीं। चाहे जो हो, उसे विश्वास हो जाता है कि उन पेड़ों की राख से वह भूमि उपजाऊ हो गई है। किसान खेती की बालें ही काटता है, नीचे के डंठल काटने का अनावश्यक परिश्रम वह नहीं करता। अगली फ़सल में उन्हीं पौधों की जड़ें

फिर फूटने लगती हैं और दो-चार वर्ष में बढ़ते-बढ़ते वे सात-आठ फुट ऊँचे तक पहुँच जाती हैं। इसी तरह का घना झाड़-झंखाड़ था वह। प्रकृति की करतूत के फल-स्वरूप भाँति-भाँति के पेड़-पौधों से वह स्थल ऐसा बीहड़ हो जाता है कि उसमें निकलने के लिए कुल्हाड़ी की मदद से रास्ता बनाना पड़ता है। इन बीहड़ वनों में जंगली जीव भी नहीं घुस पाते।

यदि किसी ने किसी का गला काट दिया है तो उसके लिए पोर्तो-वीशियो का यही स्थल काम का है। काफ़ी बारूद और गोली के साथ एक बन्दूक लेकर वहाँ सुरक्षित रूप से रहा जा सकता है। हाँ; एक खाकी लबादा साथ लेना नहीं भूल जाना चाहिए। ओढ़ने और बिछाने का काम उसीसे चल जाता है। चरवाहों के दिये हुए दूध, मक्खन और फलों से खाने-पीने की मौज रहेगी, और न तो क़ानून-कायदे का ही डर रहेगा और न मृतक के सम्बन्धियों ही का—सिवा इसके कि बीच-बीच में गोली-बारूद की कमी की पूर्ति के लिए शहर में जाना ज़रूरी होगा।

सन् १८–में मैं जब कॉर्सिका में था, मेतियो फ़ाकन का घर इस बीहड़ से करीब आध मील की दूरी पर था। उस देश में तो वही धनी था। उसका रहन-सहन ठाटदार—अर्थात्, हाथ-पाँव हिलाने की भी ज़रूरत नहीं—जानवरों की कमी नहीं, बंजारों की भाँति वे चरवाहे उन्हें पहाड़ों पर इधर-उधर चरागाहों में लिये फिरते हैं। जिस घटना का मैं यहाँ वर्णन करनेवाला हूँ, उसके घटित होने के दो वर्ष पहले जब मेरी उससे मुलाकात हुई थी, वह पचास या उससे अधिक वर्षों का

रहा होगा। एक ऐसे आदमी की कल्पना करो, जो ठिगना, किन्तु हट्टा-कट्टा है। बाल हैं उसके घुँघराले—संगमूसे के समान काले। नाक है झुकी हुई। ओठ हैं पतले। बड़े-बड़े चंचल नेत्र। रंग है रंगे हुए चमड़े के समान। उस प्रदेश में निशाने-बाज़ों की बहुतायत होते हुए भी वह अपनी निशानेबाज़ी के लिए मशहूर था। उदाहरणार्थ, वह अपने शिकार की ओर समीप से कभी हाथ नहीं उठाता। सौ-सवा सौ कदम की दूरी से जैसा जी में आता, सिर अथवा कंधे में निशाना लगाकर उसे गिरा देता। रात हो चाहे दिन, वह अपने शस्त्र का उपयोग बड़ी सरलता से करता। जिन लोगों ने कभी कॉर्सिका में भ्रमण नहीं किया है, वे तो संभवतः उसकी निशानेबाज़ी की बातों को असंभव मानेंगे। अस्सी कदम की दूरी पर तश्तरी के बराबर एक पारदर्शक कागज के पीछे एक मोमबत्ती जला दी जाती थी। उसीकी ओर वह अपना निशाना साधता। मोमबत्ती बुता दी जाती, और उस घोर अंधकार में, चार बार में तीन बार, वह उस कागज को अवश्य ही बेध देता।

अपनी इस सर्वश्रेष्ठ योग्यता के कारण मेतियो फाकन ने बहुत यशोपार्जन कर लिया। जितना ही अधिक भयानक शत्रु वह था, उतना ही भला मित्र भी था; दानशील और सद्वृत्तिमय। पोर्तो-वीशियो के इस ज़िले में वह शान्तिपूर्वक निवास करता था। उसकी एक बात मशहूर है—कोर्त में, जहाँ उसका विवाह हुआ है, उसने अपने एक प्रतिद्वन्दी को नीचा दिखा दिया था, जो युद्ध और प्रेम दोनों में बड़ा शक्तिशाली माना जाता था। दर्पण के सामने हजामत बनाते समय अकस्मात् एक गोली से दर्पण चूर होते देखकर यह प्रतिद्वन्दी चकित होगया था। वह

गोली थी, मेतियो की। इस दुर्घटना का मनोमालिन्य दूर होने पर वहीं मेतियो की शादी होगई। उसकी पत्नी गीसपा ने पहले तीन पुत्रियों को जन्म दिया (जिससे पति नाराज़ ही हुआ); किन्तु अन्त में एक पुत्र का जन्म हुआ और उसका नाम रखा गया फॉर्चुनेतो (भाग्यवान)। बालक परिवार की आशा का दीपक और कुल के नाम का रक्षक माना गया। कन्याओं के विवाह भली-भाँति हो गए। ज़रूरत के समय वह अपने जामाताओं की कटारों और बंदूकों से काम ले लेता। बेटा था, दस ही बरस का; पर उसे देखकर उसके उज्वल भविष्य की आशा होती थी।

बसंत ऋतु में एक दिन मेतियो अपनी पत्नी के साथ उस बीहड़ वन के समीप अपने जानवरों की टोली की सँभाल करने के लिए जल्दी ही चल दिया। बालक फॉर्चुनेतो उनके साथ जाना चाहता था। किन्तु वह जगह बहुत दूरी पर थी। यही नहीं, रखवाली के लिए घर पर भी किसी का रहना जरूरी था। पिता ने उसे वहीं रोक दिया। अब यह बात देखने की है कि उसे इस बात का पश्चात्ताप करना पड़ा, या नहीं ?

माता-पिता को गए कुछ समय बीत गया। बालक फॉर्चुनेतो सूर्य के ताप में शान्ति-पूर्वक पड़े-पड़े, नीलाभ पर्वतों की ओर देखता हुआ मन ही मन सोच रहा था कि इस रविवार को तो शहर में कपोरल काका के यहाँ भोजन करने को मिलेगा। सहसा उसकी विचार-धारा में व्याघात हुआ, उसे गोलीबारी की आवाज़ सुनाई दी। उठकर वह मैदान के उस ओर देखने लगा जिधर से आवाज़ आ रही थी। बार-बार छूटती हुई गोलियों की आवाज़ और भी समीप आती सुनाई दी।

अंत में, मेतियो के घर की ओर आने वाले उसी मार्ग पर एक आदमी दिखाई दिया। उस दढ़ियल के सिर पर था वही पहाड़ियों का नोकदार टोप। चिथड़े पहने हुए वह अपनी बन्दूक का सहारा लिए बड़ी कठिनता से पाँव घसीटकर आगे बढ़ रहा था। उसकी जाँघ में एक ताज़ा घाव हो रहा था।

यह आदमी था एक बाग़ी, जो रात में शहर से बारूद लाते समय कॉर्सिका के सिपाहियों की घात में आगया था। आत्म-रक्षा के भयङ्कर प्रयत्न से उसे बचकर भाग जाने का मौका मिल गया। पर सिपाहियों ने उसका पीछा किया। कदम-कदम पर गोलियाँ चलने लगीं। वह सिपाहियों से थोड़ा-सा ही आगे था। घाव के कारण द्रुतवेग से भाग कर पकड़े जाने के पहले वह उस बीहड़ वन में छिप भी नहीं सकता था।

फॉर्चुनेतो के समीप पहुँचकर उसने पूछा—मेतियो फ़ाकन का पुत्र है न ?

"हाँ।"

"मैं हूँ जायनेतो सापायरो। पीली कालर वाले मेरा पीछा कर रहे हैं। मुझे कहीं छिपा। मैं और आगे नहीं भाग सकता।"

"पिता की आज्ञा के बिना मैं तुम्हें छिपा लूँगा, तो पिता क्या कहेंगे ?"

"वह यही कहेगा कि तू ने बहुत ठीक किया।"

"तुम्हें क्या मालूम ?"

"जल्दी कर। छिपा। वे लोग आने ही वाले हैं।"

"मेरे पिता के आ जाने तक ठहर जाओ।"

"ठहरूँ कैसे ? अरे दुष्ट, वे अभी पाँच मिनट में यहाँ आ जायँगे। चल, छिपा मुझे कहीं; नहीं तो यहीं तुझे ढेर कर दूँगा।"

फॉर्चुनेतो ने बड़ी शान्ति के साथ उत्तर दिया—

"तुम्हारी बन्दूक तो ख़ाली है। पेटी में और कारतूस भी नहीं दीखते।"

"मेरी कटारी तो कहीं नहीं गई।"

"पर क्या तुम मेरे बराबर तेज भाग सकोगे ?"

एक छलाँग मारकर वह उसकी पहुँच के बाहर हो गया।

"तू तो मेतियो फ़ाकन के नाम को लजा रहा है। क्या अपने घर के आगे तू मुझे यों पकड़ा जाने देगा ?"

बालक पर उसकी बात का प्रभाव पड़ा।

"बोलो, मैं तुम्हें छिपा दूँ, तो मुझे क्या दोगे ?" निकट आकर उसने कहा।

उस बाग़ी ने अपनी पेटी का जेब टटोलकर, पाँच फ्रैंक निकाले, जिन्हें उसने अवश्य ही गोली-बारूद खरीदने के लिए बचा रखा था। उस चाँदी के टुकड़े को देखकर फॉर्चुनेतो ख़ुश हो गया, उसे छीनकर उसने जायनेतो से कहा—

"अब किसी बात का डर नहीं।"

घर के पास ही सूखे घास का एक बड़ा-सा ढेर पड़ा था। उसने झटपट छिपाने के लिए उसमें जगह बनायी। जायनेतो दुबककर उसमें बैठ गया। बालक ने घास को इस प्रकार ठीक कर दिया कि उसे साँस

लेने का कष्ट भी नहीं हुआ और इस बात का संदेह करने का भी कारण नहीं रह गया कि उस घास में एक आदमी छिपा होगा। उसने अपनी बुद्धि को और भी दौड़ाया, और एक काम-चलाऊ सीधे जंगली की तीव्रता का परिचय देते हुए घास के उस ढेर पर एक बिल्ली और उसके बच्चों को बैठा दिया, जिससे यह पता नहीं लगे कि घास अभी छेड़ा गया है। घर के पास रक्त की बूँदों के निशान देखकर उसने उन्हें सावधानी-पूर्वक मिट्टी से ढक दिया, और ऐसा करके सूर्य के ताप में और भी अधिक शांत भाव से लेट गया।

कुछ क्षण बाद ही मेतियो के द्वार पर छः आदमी पहुँचे—ख़ाकी वर्दी से लैस, पीली कालर लगाए, एक अफसर के साथ। यह अफसर मेतियो का एक दूर का रिश्तेदार था। (कॉर्सिका में पारस्परिक संबन्ध और स्थानों की अपेक्षा बहुत दूर तक गिना जाता है।) उसका नाम था ताओदोरो गाम्बा; वह था फुर्तीला। बाग़ी उसे डरते रहते। कई बागियों को तो वह बड़े घर भेज चुका था।

"क्यों? ख़ुश है न लड़के?" फॉर्चुनेतो के पास आकर उसने कहा—"अरे, तू तो बहुत लम्बा हो गया। अभी-अभी एक आदमी को इधर से जाते तू ने देखा क्या?"

"ओह! काका मैं तो अभी तुम्हारे इतना लम्बा नहीं हुआ।" बड़ी सरलता से बालक ने उत्तर दिया।

"जल्दी ही हो जाओगे। ख़ैर, तू ने उस आदमी को जाते नहीं देखा? बता तो!"

"यदि मैं ने किसी को जाते देखा तो ?"

"हाँ, काला मखमली टोप और लाल-पीली जाकट पहने ।"

"काला मखमली कोट और लाल पीली जाकट पहने ?"

"हाँ, जल्दी उत्तर दे। मेरे प्रश्नों को क्यों दोहराता है ?"

"घोड़े पर चढ़कर एक आदमी तो आज सबेरे हमारे घर के आगे से गया था, पायरो। उसने मेरे पिता के बारे में पूछा था, और मैंने उत्तर दिया था——"

"चुप बदमाश, चतुराई दिखाता है। बता, जायनेतो किस रास्ते से गया है ? हम उसका पीछा कर रहे हैं। मेरा विश्वास है, वह अभी थोड़ी देर पहले इधर आया है।"

"कौन जाने ?"

"कौन जाने ? मुझे मालूम है, तू ने उसे देखा है।"

"कोई पड़ा सो रहा हो, तो भी राहगीरों को वह देख सकता है क्या ?"

"तू नहीं सो रहा था, बदमाश ! बन्दूकों की आवाज़ से तू जाग गया था।"

"तो काका साहब, तुम्हें विश्वास है कि तुम्हारी बन्दूक इतनी आवाज़ करती है ? मेरे पिता की बन्दूक में यही तो लाभ है।"

"अरे बेहया छोकरे, तुझे महामारी नहीं ले जाती ? मुझे पूरा विश्वास है कि तू ने जायनेतो को देखा है। सम्भव है, तूने ही उसे कहीं छिपा दिया हो। जाओ, सैनिको घर में घुसकर देखो—हमारा आदमी वहाँ है क्या ? वह एक पाँव ही से चल सकता है। वह लुच्चा इस तरह

पाँव घसीटकर बीहड़ बन तक पहुँचने की मूर्खता नहीं करता। यही नहीं, खून के दाग भी यहीं आकर समाप्त होते हैं।"

"और पिता क्या कहेंगे ?" फॉर्चुनेतो ने नाक चढ़ाकर कहा—"उन्हें जब मालूम होगा कि उनकी ग़ैरहाज़िरी में घर में दूसरे लोग घुस गए थे, तब वे क्या कहेंगे ?"

"नटखट" उसका कान पकड़कर अफ़सर ने कहा—"क्यों तेरी ज़बान को दुरुस्त करने की ज़रूरत है क्या ? दस-बीस घूसे लगते ही अक़्ल ठिकाने आ जायगी।"

फॉर्चुनेतो उसी तरह नाक चढ़ाये रहा।

"मेरा बाप है मेतियो फ़ाकन !" उसने ज़ोर देकर कहा।

"अरे उत्पाती ! क्या तू नहीं जानता कि मैं तुझे पकड़कर अभी बड़े घर भिजवा सकता हूँ। वहाँ एक कालकोठरी में, पुआल पर, पड़ा रहना पड़ेगा, पाँवों में पड़ जायँगी बेड़ियाँ। जायनेतो का पता अगर तूने नहीं बताया, तो याद रख, तेरी बोटी-बोटी नुचवा लूँगा।"

इस बेहूदी धमकी को सुनकर बालक ज़ोर से हँस पड़ा। उसने पुनः कहा—

"मेरा बाप है मेतियो फ़ाकन !"

"साहब," एक सिपाही ने दबी ज़बान से कहा,—"जाने दीजिए, मेतियो से झगड़ा मोल लेने से लाभ ?"

गाम्बा व्याकुल-सा होगया। जो सिपाही घर की तलाशी लेकर आए थे, उनसे वह आहिस्ते से बात कर रहा था। तलाशी में क्या देर लगती ? एक कॉर्सिका का घर होता है एक चैाकोर कमरा, उसी में

टेबिल, दो चार कुर्सियाँ, पेटियाँ, घर के बर्त्तन-भाँड़े और आखेट का सामान रक्खा रहता है। इधर फॉर्चुनेतो पूसी को थपथपा कर सिपाहियों को और अपने काका को धोखा देने की दुष्टता का आनन्द ले रहा था।

उनमें से एक घास के उस समूह के पास भी आया। उसने बिल्ली को देखा और लापरवाही से घास पर बन्दूक का प्रहार करके अपनी इस उपाहासास्पद सावधानी पर स्वयं अपने कंधे मटकाने लगा। कुछ भी नहीं हिला-डुला। बालक के मुख पर ज़रा भी व्याकुलता नहीं दिखाई दी।

अफ़सर और सिपाही अपने भाग्य को कोस रहे थे। घूमकर मैदान की ओर देखकर वे जिस रास्ते से आए थे, उसी रास्ते से लौट जाने का विचार कर रहे थे कि उनके अफसर ने सोचा—फ़ाकन का बेटा डराने-धमकाने से वश में नहीं आयेगा। अब तो आख़िरी उपाय ही करना चाहिए—लोभ देकर इसे फुसलाना चाहिए।

"लड़के," उसने कहा—"तू बड़ा चलता-पुरजा है। मेरे साथ भी नटखटी कर रहा है। अपने चचेरे भाई मेतियो के लिए मैं आफ़त खड़ी करना नहीं चाहता, नहीं तो अभी तुझे यहाँ से पकड़ ले जाता।"

"ऊँह!"

"पर याद रख, भाई को आने दे, उसे सब बातें कह दूँगा। ऐसी झूठी बातें बनाने के लिए कोड़े मार-मार कर वह तेरी चमड़ी उधेड़ लेगा।"

"नहीं, ऐसा नहीं कहना।"

"देख लेना। पर, खैर—तू बड़ा भला है लड़के! सच-सच कह, तुझे इनाम मिलेगा।"

"काका साहब! मेरी सलाह मानो। तुम यहीं खड़े रह जाओगे, तो जायनेतो बीहड़ में पहुँच जायगा और उसे पकड़ने के लिए तुमसे भी अधिक होशियार आदमी की ज़रूरत पड़ेगी।"

अफ़सर ने क़रीब दस क्राउन क़ीमत की एक चाँदी की घड़ी अपनी ज़ेब में से बाहर निकाली। उसे देखकर फॉर्चुनेतो की आँखों को लालायित होते जानकर उसने घड़ी की लोहे की ज़ंजीर के सिरे को पकड़कर कहा—

"पाजी! तेरा जी कहता होगा कि ऐसी घड़ी गर्दन में लटकाकर तू अभिमानी मोर की भाँति पोर्तो वीशियो की गलियों में घूमे। लोग तुझे पूछेंगे—कितना बजा है? और तू कहेगा—'मेरी घड़ी में देखो!"

"जब मैं बड़ा हो जाऊँगा तो मेरा चाचा कैपोरल मुझे एक घड़ी देगा।"

"हाँ; तेरे चाचा के बेटे के पास तो अब भी एक घड़ी है। इसी घड़ी के ऐसी तो नहीं, पर वह तो तुझसे छोटा ही है।"

बालक ने एक उसास ली।

"क्यों, यह घड़ी पसंद है क्या, लड़के?"

फॉर्चुनेतो ने घड़ी पर तिरछी नज़र डालकर ऐसा मुँह बनाया, जैसा एक बिल्ली चिड़िया के बच्चे को देखकर बनाती है। वह अनुभव करती है कि ओह, कितनी मज़ेदार चीज़ है यह। पर वह अपना पंजा चलाने का साहस नहीं करती; लोभ-संवरण के लिए वह बारबार उससे अपनी आँख बचाती है, अपने जबड़ों को चाटती रहती है और अपने मालिक को कहती मालूम देती है—"कैसा क्रूर है तुम्हारा यह उपहास?"

चाहे जो हो, अफ़सर तो सचमुच अपनी घड़ी दे देने को तैयार था। फॉर्चुनेतो ने उसे लेने के लिए अपना हाथ नहीं बढ़ाया, रूखी हँसी से केवल इतना ही कहा—

"क्यों तमाशा करते हो?"

"वाह वा, मैं तमाशा करता हूँ? बस, इतना बताने की देर है कि जायनेतो कहाँ है? घड़ी तुम्हारी हो जायगी।"

फॉर्चुनेतो अविश्वास की हँसी हँसकर, अपनी काली-काली आँखें अफसर पर लगाकर उसके कथन के विश्वास का अध्ययन करने लगा।

"क्या मुझे मेरे पद को लज्जित करना है?" अफसर ने चिल्लाकर कहा—"कभी यह भी हो सकता है कि शर्त्त करके भी मैं घड़ी न दूँ? ये सब सिपाही साक्षी हैं; मैं ना नहीं कर सकता।"

बोलते-बोलते उसने धीरे-धीरे घड़ी बालक की ओर बढ़ा दी। यहाँ तक कि वह जाकर छू गई उसके मुर्झाए हुए गाल से, जो लोभ और उसके अतिथि-सत्कार के मानसिक संग्राम को स्पष्ट व्यक्त कर रहा था। संकल्प-विकल्पों के मारे उसकी छाती धड़क रही थी; उसका दम घुटता-सा मालूम देता था। इधर वह घड़ी धीरे-धीरे घूम रही थी। कभी कभी तो वह आकर उसके गाल से छू जाती। आखिर उसका दाहना हाथ उसकी ओर बढ़ ही तो गया। अँगुलियों के अग्रभाग से उसने उसका स्पर्श किया। घड़ी का सारा बोझ उसके हाथ में आगया। जंजीर अब भी अफ़सर ही के हाथ में थी। घड़ी के सामने का भाग हलके नीले रंग का था; और उसके घर पर नई कलई की हुई थी। सूर्य के प्रकाश में वह और भी चमक रही थी। बालक के लिए लोभ को संव-

रण करना कठिन होगया। फॉर्चुनेतो ने अपना बायाँ हाथ उठाकर कंधे के ऊपर से घास के उस ढेर की ओर अँगूठे से इशारा किया, जिसका सहारा लिए वह खड़ा था। अफसर उसका संकेत समझ गया। उसने घड़ी की जंजीर छोड़ दी और फॉर्चुनेतो उस घड़ी के सर्वाधिकारी बनने का सुखानुभव करने लगा। हरिण की-सी चपलता से कूदकर वह घास के ढेर से दस कदम दूर जाकर खड़ा होगया। सिपाही घास को बिखेरने लगे।

घास में कोई चीज़ हिलती दिखाई दी, और उसमें से दिखाई दिया—एक लोहूलुहान आदमी हाथ में खंजर लिए। उसने खड़े होने का प्रयत्न किया। किन्तु उसके पाँव अकड़ गए थे, वह वहीं गिर पड़ा। अफसर ने उसी समय उसे पकड़कर उसकी कटार और बंदूक छीन ली। बचाव का प्रयत्न करने पर भी वह गिरफ़्तार कर लिया गया।

जायनेतो धरती पर ईंधन के गट्ठे की भाँति बँधा पड़ा था। फॉर्चुनेतो उसके पास आगया था। उसकी ओर उसने घृणा और क्रोध से देखकर कहा—

"दुष्ट—का बेटा।"

बालक ने उसका वह चाँदी का टुकड़ा उसकी ओर फेंक दिया, यह समझकर कि वह उसे पाने का अधिकारी नहीं रहा। किन्तु उस बाग़ी ने इस बात की ओर ध्यान ही नहीं दिया। उसने बड़ी शान्ति से अफ़सर से कहा—

"प्रिय गाम्बा, मैं पैदल नहीं चल सकूँगा। तुम्हें मुझे शहर ले चलने का प्रबन्ध करना होगा।"

"अभी तो तुम हरिण से भी तेज भाग रहे थे," उसने क्रूरता से उत्तर दिया—"किन्तु आराम से रहो। तुम्हें पकड़कर मैं इतना खुश हुआ हूँ कि एक लीग तक तो बिना थके मैं तुम्हें अपनी पीठ पर सवार कराकर ले जाऊँगा। तुम्हारे लबादे और डालियों से हम तुम्हारे लिए एक डोली बना लेंगे। आगे क्रेसपोली में घोड़े मिल जायँगे।"

"बहुत ठीक," बन्दी ने कहा—"डोली में थोड़ा पुआल बिछा देना, जिससे मैं उसमें आराम से पड़ रहूँ।"

सिपाही जब शाहबलूत को डालियों से डोली बना रहे थे और दूसरे जायनेतो की मरहम-पट्टी कर रहे थे, उसी समय सहसा मेतियो फ़ाकन और उसकी स्त्री बीहड़ की ओर जाते हुए पथ के एक मोड़ पर दिखाई दिए। स्त्री शाहबलूत के बड़े बोरे के भार से दबी जा रही थी, और पति उसके साथ अपनी मस्तानी चाल से चला आ रहा था। हाथ में थी बन्दूक और दूसरा हाथ कंधे पर टिका था। क्योंकि अस्त्र-शस्त्रों के अतिरिक्त किसी दूसरी वस्तु का भार वहन करना पुरुष के लिए अपमानजनक है।

दूर से सिपाहियों को देखकर मेतियो पहले तो यही समझा कि वे उसे गिरफ़्तार करने आए होंगे। किन्तु वह ऐसी बात विचारता ही क्यों? क्या उसे कानून-कायदे से कोई विरोध है? नहीं। वह तो बड़ी नेकनामी से रहता है, अपनी भलाई के लिए प्रसिद्ध है। चाहे जो हो, वह है तो कॉर्सिका ही का—डाकू-समाज का एक व्यक्ति। और ऐसा कार्सिकन शायद ही कोई हो, जो विचार कर देखने पर गोली की मार, छुरा भोंकने अथवा ऐसे ही किसी छोटे अपराध से

वञ्चित हो। मेतियो की आत्मा दूसरों की अपेक्षा अधिक निर्मल थी। क्योंकि गत दस वर्ष से उसने अपनी बन्दूक किसी आदमी पर नहीं उठाई थी। किन्तु वह था बड़ा दूरदर्शी, आवश्यकता पड़ने पर आत्म-रक्षा के लिए सदैव सावधान रहता। औरत, गीसेपा ने कहा—"बोरे को यहीं छोड़ दो और तैयार हो जाओ।"

उसने तत्क्षण आज्ञा का पालन किया। और कंधे पर लटकती हुई बन्दूक, जो उसे व्यर्थ हैरान कर रही थी, उसने अपनी पत्नी को सौंप दी। अपनी बन्दूक का घोड़ा चढ़ाकर सड़क के किनारे के पेड़ों के सहारे वह धीरे-धीरे आगे बढ़ा। ज़रा भी विरोध का खटका होने पर कहीं से गोली चलाने के लिये वह सावधान था। उसकी पत्नी उसका अनुगमन कर रही थी। बन्दूक और कारतूस उसके पास थे। एक होशियार गृहिणी का काम है लड़ाई के ऐसे समय में पति को बन्दूक भरकर देना।

दूसरी ओर अफ़सर मेतियो को इस प्रकार बन्दूक उठाकर, घोड़े पर अँगुली रखकर, सावधानी से कदम बढ़ाते हुए देखकर, चिंतित हो उठा।

"भाग्य जोग से," उसने सोचा—"जायनेतो यदि मेतियो का रिश्तेदार हुआ, अथवा वह उसका परिचित मित्र हुआ और उसने उसकी रक्षा का विचार कर लिया तो यह निश्चय है कि जिस प्रकार चिट्ठी डाक की मारफ़त ठिकाने पर पहुँच जाती है, उसी प्रकार उसकी दोनों बन्दूकों की गोलियाँ हमारे शरीरों में प्रवेश कर जायँगी, बशर्ते कि वह मेरी ओर नहीं देखे और मेरे संबंध की परवा नहीं करे।

इसी सोच-विचार में उसने एक हिम्मत का काम किया। वह था—आगे बढ़कर अकेले मेतियो को अपने पुराने परिचय की याद दिलाकर

सारी घटना का हाल सुना देना, किन्तु मेतियो और अपने बीच का यह थोड़ा-सा अन्तर भी उसे भयानक रूप से लम्बा मालूम दिया।

"ओहो ! मेरे पुराने साथी," उसने पुकारकर कहा—"कैसे हो तुम मेरे दोस्त ? मैं हूँ गाम्बा, तुम्हारा चचेरा भाई।"

बिना एक भी शब्द बोले मेतियो ठहर गया। सामने वाला जैसे-जैसे बात करता गया, वह अपनी बन्दूक की नली ऊपर उठाता गया।

"बन्दगी भाई साहब," अफ़सर ने अपना हाथ आगे बढ़ाकर कहा—"तुमसे मिले तो बहुत समय बीत गया।"

"बंदगी, भाई।"

"मैं तो यों ही इधर से जाते समय तुमसे और चचेरे भाई पेपा से बन्दगी करने के लिए ठहर गया था। आज तो बहुत दूर चलना पड़ा है। पर चिंता की कोई बात नहीं, आज एक अच्छा शिकार हाथ लग गया है। हमने अभी जायनेतो सापायरो को गिरफ़्तार किया है।"

उस भगवान् का उपकार मानो !" गीसेपा ने कहा—"गत सप्ताह उसने हमारी एक गठरी चुरा ली थी।"

गाम्बा को इस कथन से थोड़ी तसल्ली हुई।

"गरीब बेचारा," मेतियो ने कहा—"भूखों मरता है।"

"बदमाश शेर की तरह लड़ रहा था," अफ़सर ने दबकर कहा—"उसने मेरे एक सैनिक को मार डाला है। उससे भी संतुष्ट न होकर कैपोरल शारदाँ का हाथ तोड़ डाला। खैर, उसकी कोई परवा नहीं। यही तो एक फरांसीसी है। यही नहीं, दुष्ट छिपा भी इस तरह था कि

उसे खोज निकालना आसान काम नहीं था। मेरा जेठा भाई फॉर्चुनेतो नहीं होता, तो मैं उसे ढूँढ़ थोड़े ही पाता।"

"फॉर्चुनेतो ?" मेतियो ने चिल्लाकर कहा।

"फॉर्चुनेतो !" गीसेपा ने प्रतिध्वनि की।

"हाँ, जायनेतो वहाँ घास के ढेर में छिप गया था। किन्तु मेरे उस छोटे भाई ने उसकी चालाकी खोल दी। उसके चचा कैपोरल को मैं ज़रूर कहूँगा कि उसे अच्छी-सी सौगात भेजे। अटर्नी जनरल को मैं जो वक्तव्य भेजूँगा, उसमें तुम्हारा और उसका दोनों का नाम रहेगा।"

"ओह नीच !" मेतियो ने मन्द स्वर से कहा।

इतने में वे यथास्थान पहुँच गये। जायनेतो तो चलने को तैयारी के के लिए डोली पर जा बैठा था। मेतियो और गाम्बा को एक साथ आते देखकर वह विचित्रता से हँस पड़ा, और तब मेतियो के घर की ओर उसकी देहली पर थूककर कहा—

"विश्वासघाती का घर।"

जिसे अपनी जान प्यारी नहीं, वही फ़ाकन को विश्वासघाती कहने का दुःसाहस कर सकता था। खंजर का एक ही अच्छा प्रहार उसी दम अपमान का बदला ले लेता, दूसरी बार हाथ उठाने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। तो भी मेतियो ने और कुछ नहीं किया; सिर्फ़ अपना हाथ माथे पर रख लिया, मानों चकाचौंध हो गया हो।

बाप को आते देखकर फॉर्चुनेतो घर में चला गया था। किन्तु, अब वह हाथ में दूध का एक प्याला लेकर बाहर आया। आँखें नीचे किये उसने दूध का प्याला जायनेतो को दे दिया।

"दूर हो मुझ से !" बागी ने चिल्लाकर उच्चस्वर से कहा। फिर, एक सिपाही की ओर घूमकर उसने कहा—

"दोस्त, पीने को पानी तो दो।"

सिपाही ने अपनी तुम्बी उसके हाथ में देदी। बन्दी ने उसी आदमी से पानी लेकर भर पेट पिया, जिससे अभी थोड़ी देर पहले वह मरने-मारने को तत्पर हो रहा था। उसने इच्छा प्रकट की, कि उसके हाथ पीछे की ओर न बाँधकर आगे को ओर बाँधे जायँ।

"मैं आराम से पड़ रहना चाहता हूँ।" उसने कहा।

उसकी इच्छा पूर्ति करने में उन्होंने आनाकानी की। अफ़सर ने रवाना होने का संकेत किया। मेतियो से विदा ली, पर उसने बंदगी का जवाब भी नहीं दिया। वे लोग कदम बढ़ाकर नीचे मैदान में उतर गये।

मेतियो को मुँह खोले दस मिनट बीत गये। बालक अशांत नेत्रों से देख रहा था। कभी माता की ओर, कभी पिता की ओर, जो अपने बन्दूक के सहारे झुककर एकाग्र क्रोधित भाव से घूर रहा था।

"आरंभ तो बहुत सुन्दर किया है तू ने," मेतियो ने आख़िरकार संयत स्वर में कहा। किन्तु जो उस आदमी को जानता था, उसके लिए उससे भयभीत हो जाना स्वाभाविक था।

"ओह, पिता !" आँखों में आँसू भरकर बालक चिल्ला उठा। आगे बढ़कर वह पिता के पैरों में पड़ना ही चाहता था कि मेतियो ने चिल्लाकर कहा—"दूर हट, दुष्ट !"

बेचारा बालक वहीं ठिठककर सिसकने लगा। बिना हिले-डुले पिता से कुछ कदम दूर खड़ा रहा।

गीसेपा और भी समीप आगयी। फॉर्चुनेतो की जाकट से लटकती हुई घड़ी की चेन को उसने देख लिया था।

"किसने तुझे यह घड़ी दी है?" उसने कठोर वाणी से पूछा।

"चाचा ने, अफ़सर ने।"

फ़ाकन ने उस घड़ी को छीन लिया और पत्थर पर पटककर उसने उसे चूर-चूर कर डाला।

"औरत," उसने कहा—"बता, यह मेरा बेटा है?"

गीसेपा के कपोल लाल हो गये।

"कहते क्या हो मेतियो? मालूम है किससे बात करते हो?"

"बहुत ठीक; विश्वासघात करके अपने कुल में कलङ्क लगाने वाला यह बालक पहला है।"

फ़ाकन की तीव्र दृष्टि के भय से फॉर्चुनेतो का सिसकना और रोना और भी अधिक हो गया।

अपनी बन्दूक से धरती पीटकर, उसे कन्धे पर रखकर, वह बीहड़ की ओर फॉर्चुनेतो को पीछे आने का आदेश देकर, चल पड़ा। बालक ने आज्ञा का पालन किया। गीसेपा ने मेतियो का अनुगमन किया और उसका हाथ पकड़ लिया।

"यह तुम्हारा बेटा है।" उसने विकम्पित स्वर से कहा। अपने काले नेत्रद्वय पति के नेत्रों से मिलाकर उसने उसके दिल की बात जानने का प्रयत्न किया।

"मुझे अकेला रहने दो।" मेतियो ने कहा—"मैं हूँ उसका बाप।"

गीसेपा ने अपने बेटे को छाती से लगा लिया। रोती-कलपती वह घर में लौट गई। कुमारिका देवी की प्रतिमा के चरणों में पड़कर वह अनुराग-पूर्वक प्रार्थना-रत हो गई। इधर फ़ाकन करीब दो सौ कदम चलकर, एक नाले के नीचे उतरकर रुक गया। अपनी बन्दूक के कुंदे से धरती को अजमाकर उसने देखा, भूमि नरम थी और खोदने में आसान थी। अपना कार्य सम्पादन करने के लिए उसे वही उपयुक्त स्थान मालूम हुआ।

"फॉर्चुनेतो, जा उस चट्टान के पास जाकर खड़ा हो जा।"

बालक ने आज्ञा का पालन किया। उसने घुटने टेक दिए।

"भगवान् को याद कर।"

"पिता! पिता! मुझे मारो मत।"

भगवान् को याद कर।" मेतियो ने पुनः गरजते हुए कहा।

बालक सिसक-सिसक कर भगवद्गान करने लगा। प्रत्येक प्रार्थना के अन्त में पिता चिल्लाकर कहता, "आमीन!"

"यही सब भजन तुझे याद हैं क्या?"

"ओ पिता! मुझे एव मेरिया और पवित्र गीत भी याद हैं, जो मुझे चाची ने सिखाए हैं।"

"वे तो बहुत बड़े हैं। पर खैर, कोई परवा नहीं।"

बालक ने अस्पष्ट स्वर में पवित्र गीत से प्रार्थना की।

"क्यों, प्रार्थना समाप्त हुई?"

"हे पिता! दया करो! क्षमा! मैं ऐसा फिर कभी नहीं करूँगा। मैं कैपोरल चाचा से अनुनय विनय करके जायनेतो को छुड़ा

लाऊँगा"—वह बोल ही रहा था कि मेतियो ने अपनी बन्दूक उठाकर निशाना साधकर कहा :—

"भगवान् तुझे क्षमा करे !"

बालक ने उठकर पिता के चरण पकड़ लेने का उग्र प्रयत्न किया। किन्तु अब समय नहीं रह गया था। मेतियो ने गोली चला दी और फॉर्चुनेतो मरकर गिर पड़ा।

शव की ओर बिना एक निगाह भी डाले मेतियो घर की ओर लौट आया, लड़के को दफ़नाने के लिये एक फावड़ा लेने। वह कुछ ही क़दम गया था कि उसे गीसेपा मिली, जो बन्दूक की आवाज़ सुनकर भय-भीत होकर उधर ही दौड़ी आ रही थी।

"तुमने क्या कर डाला ?" उसने चिल्लाकर पूछा।

"न्याय।"

"कहाँ है वह ?"

"नाले में। मैं उसे, दफ़नाने जा रहा हूँ। वह एक सच्चे क्रिश्चियन की भाँति मरा है। मैं उसके नाम पर प्रार्थना कराऊँगा। मेरे दामाद तायदोरो बयांशी को अपने साथ रहने के लिए बुला लो।"

फ्रान्स : : : एलफान्से दादे

अन्तिम पाठ

उस दिन पाठशाला के लिए मैं कुछ देरी से रवाना हुआ। मार का भूत मेरे सिर पर सवार था। क्योंकि आज मास्टर साहब कृदन्त और तद्धित के जटिल प्रश्न पूछने वाले थे, और मुझे एक भी शब्द याद नहीं था। एक बार तो ध्यान में आया कि चल दूँ, घर के बाहर कहीं दिन बिता दूँ। सुहावना समय था—उष्ण और उज्वल। जंगल के वृक्षों पर पक्षी चहक रहे थे; और लकड़ी के कारखाने के पीछे खुले मैदान में प्रशियन सिपाही क़वायद कर रहे थे। कृदन्त की परिभाषा से इन सब बातों में कहीं अधिक आकर्षण था। किन्तु मुझमें संयम की भी शक्ति थी, मैं स्कूल की ओर दौड़ पड़ा।

जब मैं 'टाउन-हाल' के आगे से निकला, तो वहाँ बुलेटिन बोर्ड के आगे लोगों की भीड़ लगी हुई थी। युद्ध, पराजय, सेनापति के हुक्म, सभी एक से एक बुरे समाचार गत दो वर्षों से उसी बोर्ड के द्वारा हम लोगों

को मिलते रहे हैं। कुछ देर झिझककर बिना ठहरे ही, मैं सोचने लगा:—

"क्या खबर होगी ?"

मैं तो पाँव उठाता हुआ जल्दी-जल्दी स्कूल की ओर चला जा रहा था। वाचर लुहार अपने साथी-सहित वहीं खड़ा था। उसने पुकार कर कहा—

"छोकरे ! इतना तेज़ क्यों भाग रहा है ! अभी तो स्कूल खुलने में बहुत देर बाक़ी है।"

मैंने समझा, वह मुझे भोंदू बना रहा है। एक ही साँस में मैं मास्टर साहब हेमल के छोटे से बगीचे में पहुँच गया।

साधारणतः स्कूल खुलने के समय बहुत हल्ला हुआ करता था, जो बाहर सड़क तक सुनाई देता था। डेस्कों के खोलने-ढकने की आवाज, एक साथ मिलकर पाठ दोहराना, अच्छी तरह समझने के लिए कानों पर हाथ लगाना और मास्टर साहब की छड़ी का मेज़ पर पटकना। किन्तु, आज तो सब शान्त था। मैं तो डरता-डरता मास्टर साहब की आँख बचाकर अपनी जगह पर पहुँचने का उपाय सोच रहा था। ख़ैरियत यही थी कि उस दिन सब बातें रविवार के प्रातःकाल की भाँति शान्त थीं। खिड़की में से मैंने मेरे सहपाठियों को अपनी-अपनी जगह बैठे देखा। मास्टर साहब हेमल अपनी काँख में वह भयानक डण्डा लिए इधर से उधर घूम रहे थे। मुझे दरवाज़ा खोलकर सबके आगे जाना था। आपही सोच सकते हैं, मैं कितना भयभीत होगया होऊँगा।

पर, कुछ भी नहीं हुआ। हेमल साहब ने मुझे देखकर बड़े प्यार से कहा:—

"फ्रेंज़! जाओ, जल्दी से अपनी जगह पर बैठ जाओ। हम तो तुम्हारे बिना ही पाठ शुरू करने वाले थे।"

मैं झटपट कूदकर अपनी जगह पर जा बैठा। दिल की धक्धक् थमने पर मुझे दिखाई दिया—आज तो मास्टर साहब अपना वह सुन्दर हरा कोट, धारीदार कमीज़ और काली रेशमी टोपी पहने थे। सब पर ज़री का काम था। यह पोशाक तो मास्टर साहब केवल पुरस्कार-वितरण अथवा इन्स्पेक्टर साहब के दौरे के दिन ही पहना करते थे। यही नहीं, उस दिन पाठशाला का वातावरण भी कुछ अजीब-सा और गंभीर हो रहा था। किन्तु, सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह थी कि हमारे पीछे की बेंचों पर, जो सदा खाली रहती थीं, आज गाँव के बहुत से आदमी हमारी ही भाँति चुप्पी साधकर बैठे थे। बूढ़ा हॉसर भी अपनी तिकोनी टोपी पहने मौजूद था, जो किसी समय गाँव का मुखिया, पोस्टमास्टर सब कुछ रह चुका है। सभी उदास हो रहे थे। हॉसर एक पुरानी पहली पोथी लेकर आया था। उसके पन्ने मुड़े हुए थे। उसका बड़ा-सा ऐनक आँखों पर लगा था। पुस्तक घुटनों पर खुली रखी थी।

मैं इस अचरज में पड़ा हुआ ही था कि हेमल साहब ने कुरसी पर चढ़कर नम्र स्वर में कहा:—

"मेरे बालको! आज मेरा यह अंतिम पाठ है। जरमनी से हुक्म आया है कि अलसॉस और लोरेन की शालाओं में जरमन ही सिखाई

जाय। नया अध्यापक कल आ जायगा। फ्रेंच का आज यह आखिरी सबक़ है। खूब ध्यान से सुनना।"

कैसे गरजते हुए शब्द थे ये !

ओह, अब मालूम हुआ। यही मनहूस ख़बर टाउन-हाल पर लगी थी।

मेरा फ्रेंच का अन्तिम पाठ? मुझे तो अभी मुश्किल से दो-चार शब्द लिखने आते थे। अब और सीखने को नहीं मिलेगा? बस, यहीं समाप्ति है? पढ़ाई की ओर ध्यान नहीं देने का मुझे इस समय कितना दुःख हुआ? हाय रे, मैंने चिड़ियों के अण्डे चुराने और 'सार' को सैर में अपना समय क्यों बरबाद कर दिया? किसी समय मेरी ये पुस्तकें मुझे भार-स्वरूप मालूम देती थीं—व्याकरण, संतों का इतिहास—ओह, इनसे तो मेरी पुरानी दोस्ती रही है। मैं इन्हें कैसे छोड़ सकूँगा? और मास्टर साहब हेमल को भी।

इस चिंता में कि "मास्टर साहब अब चले जायँगे, मैं उन्हें फिर कभी नहीं देख पाऊँगा", मैं उनके डण्डे और उग्र स्वभाव को भी भूल गया।

ग़रीब बेचारा! अब मेरी समझ में आया कि क्यों मास्टर साहब ने अपनी वह रविवार की भड़कीली पोशाक धारण की है। क्यों गाँव के वे लोग आज यहाँ जमा हैं? वे भी इस बात से चिंतित थे कि अब स्कूल का यह रूप नहीं रहेगा। वे एकत्रित हुए थे मास्टर साहब को उनकी चालीस वर्षों की निर्दोष सेवा के लिए धन्यवाद देने; अपने उस देश के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिये जो अब उनका अपना नहीं रह गया था।

मैं इसी विचार-धारा में निमग्न था कि मैंने अपना नाम पुकारा जाता सुना। पाठ सुनाने की मेरी बारी आई। बिना एक भी गलती के, साफ और ऊँचे स्वर में, यदि मैं कृदन्त के नियम बता सकता तो? हाय! मैं तो पहले ही शब्द पर लड़खड़ा गया। डेस्क पकड़कर मैं खड़ा रह गया। मेरा दिल धड़कने लगा, ऊपर की ओर आँख उठाने का भी मुझे साहस नहीं हुआ। मैंने सुना मास्टर साहब कह रहे थे :—

"फ्रेंज़, मैं तुम्हें बुरा-भला नहीं कहूँगा। किन्तु तुम्हें शरम मालूम होनी चाहिये। तुम रोज यही सोचते रहे—ऊँह, कुछ परवा नहीं। बहुत समय है आज नहीं तो कल सही।' अब देखो, तुम कहाँ हो? अलसास लोगों में यही तो ख़राबी है। पढ़ाई की बात कल पर छोड़ देते हैं। अब वे लोग यहाँ आयेंगे, तो उन्हें यह कहने से कौन रोकेगा? 'यह क्या बात है?' तुमतो फरांसीसी होने का दम भरते हो? तुम्हें तो अपनी भाषा के लिखने-पढ़ने का ज्ञान नहीं?' फ्रेंज़! एक तुम्हीं दोषी नहीं हो, हम सभी इस दोष के थोड़े-बहुत भागी हैं।

"तुम्हारे माता-पिता तुम्हें शिक्षा दिलाने के लिए उत्सुक नहीं थे। वे तो चाहते थे तुम्हें खेत के काम में जोत लेना, अथवा कहीं किसी मिल में नौकरी करवा देना, जिससे कुछ पैसा मिल जाय। और मैं? मेरा भी दोष है। क्या मैंने बहुत-सी बार तुम से पढ़ने के बदले अपना बाग सिँचवाने का काम नहीं लिया है? और जब मैं मछली मारने के लिये जाता, तो तुम्हारी पढ़ाई यों ही नहीं रह जाती?"

अब तो मास्टर साहब ने फ्रेंच भाषा का गुण-गान आरम्भ कर दिया—कैसी है यह भाषा—बोलने में मधुर, सुनने में स्पष्ट और

तर्क पूर्ण। हमें अपनी इस मातृभाषा की प्राणों की भाँति रक्षा करनी होगी। क्योंकि गुलाम लोग जब तक अपनी भाषा को नहीं छोड़ते, तब तक यही समझना चाहिये कि अपने कैदखाने की कुञ्जी स्वयं उन्हीं के पास है।

व्याकरण खोलकर अब मास्टर साहब पाठ पढ़ाने लगे। मैं चकित हो गया। मैं कितनी अच्छी तरह से उसे समझ गया। कितना आसान था वह! मैं समझ गया; न तो मैंने इससे पहले इतने ध्यान से अपना पाठ सुना था, और न इतने धैर्य से कभी मास्टर साहब ने पढ़ाया था। ऐसा मालूम हो रहा था कि बेचारे मास्टर साहब जाने के पहले अपने ज्ञान का सारा भाण्डार हमें सौंप देना चाहते थे। एक ही बार में सारी बातें हमारे दिमाग में ठूँस देना चाहते थे।

व्याकरण के बाद सुन्दर लेख की बारी आई। उस दिन मास्टर साहब हम लोगों के लिए नई कापियाँ लाये थे। उनमें गोल-गोल सुंदर अक्षरों में लिखा था—फ्रांस, अलसॉक, फ्रांस, अलसॉक। स्कूल के उस कमरे में वे कापियाँ छोटी-छोटी पताकाओं की भाँति डेस्कों पर शोभा पा रही थीं। वह दृश्य देखने लायक था। सभी किस प्रकार मन लगाकर चुपचाप लिखने में लगे थे! कागज पर कलम घिसने की आवाज़-मात्र सुनाई दे रही थी। एक बार दो चार गुबरैले उड़ते हुए आए; पर किसी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया। छोटे-छोटे विद्यार्थियों ने भी नहीं। वे भी कापियों में अपने काँटों की नकल कर रहे थे। मानों वही फ्रेंच है। ऊपर छत पर कबूतर बोल रहे थे, मैंने मन ही मन सोचा—"क्या वे इन्हें भी जरमन में बोलने को बाध्य करेंगे? इन कबूतरों को भी?"

लिखते-लिखते जब मैं आँख उठाता, तो देखता हेमल साहब अपनी ऊँची कुरसी पर गति-विहीन भाव से बैठे कभी इस चीज़ को, कभी उस चीज़ को बड़े ध्यान से देख रहे हैं। मानों स्कूल की प्रत्येक वस्तु को वे स्मृति-पटल पर सदा के लिये अंकित कर लेना चाहते हैं। देखो तो, चालीस वर्ष उन्होंने इसी स्कूल में, स्कूल के आगे के उस बगीचे में बिता दिए! डेस्क और बेंचें घिस-घिसकर चिकनी हो गईं। बगीचे में अखरोट के पेड़ बढ़कर लम्बे हो गये और 'होप' की बेल, जो उन्होंने अपने हाथ से लगाई थी, बढ़कर छत की खिड़कियों तक पहुँच गई है। उनके दिल के टुकड़े-टुकड़े हुए जा रहे थे—इन सब चीजों से सदा के लिए विदा होते समय, ऊपर सामान बाँधते समय, अपनी बहन की पदध्वनि सुनकर। उन्हें कल ही गाँव छोड़ देना होगा।

तो भी, हरेक पाठ को पूरा-पूरा सुनने का साहस उनमें था। सुन्दर लेख के बाद उन्होंने इतिहास का एक पाठ पढ़ाया। उसके बाद बालवर्ग के लड़कों ने सीखा अपना, बा, बे, बी, बो, बू। क्लास में पीछे की ओर बूढ़ा हॉसर भी अपनी पहली पोथी पर आँख गड़ाकर बालकों के साथ इन अक्षरों को दोहराता गया। साफ़ दिखाई देता था, वह रो रहा था, उसकी वाणी लड़खड़ा रही थी। उसे इस प्रकार बोलते देखकर हम सब हँसने को आतुर हो रहे थे। ओह, इस अंतिम पाठ की बात मुझे ज्यों की त्यों याद है।

"मेरे मित्रो" उसने कहा—"मैं मैं—" उसका गला रुँध गया, वह कुछ भी नहीं कह सका।

ब्लैकबोर्ड की ओर घूमकर उसने मोटे-मोटे अक्षरों में लिख दिया:—

"फ्रांस की जय!"

बिना एक भी शब्द कहे, दिवाल का सहारा लेकर, अपने हाथ का संकेत करके उसने कह दिया—

"स्कूल बरखास्त—तुम लोग जा सकते हो।"

फ्रान्स : : : कातुला मेंदीज़

दो तारे

"मोशिया," मेरे निजी नौकर ने ठीक उसी समय आकर कहा, जिस समय मैं एक गीत का पाँचवा पद पूरा कर रहा था, "बाहर दो परियाँ उपस्थित हैं, जो श्रीमान् से मुलाकात करना चाहती हैं।"

"उन्होंने अपने कार्ड तुम्हें दिए?" मैंने पूछा।

"वे ये रहे, मोशिया!"

एक पर मैंने पढ़ा "हिलियल" और दूसरे पर "याफ़ेल"—निःसंदेह दो परियाँ!

"उन्हें भीतर बुलाओ," मैंने कहा।

नवागत देवियों का मैंने सहर्ष स्वागत किया। वे सुविशाल पक्षों से सुशोभित थीं, वे पक्ष सात-सात कलँगियों से बने थे, और उन पर प्रकाशित थे प्रातःकालीन कुहरे के सामान हलके, इन्द्र-धनुष के सात रंग। उनके तन के अनाच्छादित भाग को देखकर हलके गुलाबी रंग से

सुशोभित पारदर्शक हिम का-सा आभास होता था। मैंने उन्हें नमस्कार करके आसन ग्रहण करने की प्रार्थना की, और अपने आगमन से मुझे सम्मानित करने का कारण विनम्रता-पूर्वक पूछा।

"संक्षेप में सुनिए," हिलियल ने कहा। "सोलह वर्ष पहले की बात है, जुलाई की एक मनोहर रात में, हम—याक़ेल और मैं—आकाश के हरे कालीन पर खेल रही थीं बिलियर्ड।"

"क्षमा करें," मैंने बात काटकर कहा, "मेरा तो अनुमान है कि आसमान नीला है।"

"इस अनन्त आकाश के बहुत से भाग नीले हैं; किन्तु दूसरे भाग विशेषतः वे जो परशिया के शहरों और खुले गाँवों के ऊपर हैं—हरे हैं, नेत्रों को अतीव लुभावने।"

मैं निरुत्तर रहा।

हिलियल ने आगे कहा:—

"हमारे कन्दुक थे तारे, सुन्दर-से-सुन्दर जो हम प्राप्त कर सकीं।

"और बल्ले ?" मैंने पूछा।

"पुंछल सितारों की पूँछ। स्वभावतः खेल बहुत ही आनन्ददायक था। मैं जीतने ही वाली थी कि मैंने जोर के धक्के से दो तारे उस पार पहुँचा दिए।"

"उस पार ?"

"हाँ, क्षितिज से भी परे। कैसे दुर्भाग्य की बात थी वह ! आप समझ सकते हैं कि स्वर्ग में दो तारों की कमी भी कम महत्त्व की बात नहीं है। स्वर्ग के शासक ने हमें हुक्म सुना दिया, कि जब तक वे खोए हुए दो

तारे हम यथास्थान न लौटा लावेंगी, हमें स्वर्ग के सुखोपभोग का अधिकार नहीं रहेगा।

"गत सोलह वर्ष से हम जो अनवरत अन्वेषण कर रही हैं, उसका आप सहज अनुमान कर सकते हैं। इस पृथ्वी-तल का हमने कोना-कोना खोज डाला है। वे तारे इसी पृथ्वी पर पड़ते हुए सबको दिखाई दिए थे। किन्तु दुःख की बात है हमारे सारे प्रयत्न निष्फल ही रहे।

"हम तो अनन्त निर्वासन के लिये निकल ही जाने वाली थीं, कि हमने एक युवती के अनुपम नेत्रद्वय की बात सुनी, जो आपकी प्रिया हैं। यदि लोकवाद सत्य हो तो सभी बातों से अनुमान होता है, कि मानव-नेत्रों के स्थान में उन्हें प्राप्त है वही दैवी ज्योति, जिसे हम ढूँढ़ती फिर रही हैं। हम आशा करती हैं, कि उन तारों को लौटा देने में, उन्हें कोई आपत्ति नहीं होगी।"

मैं तो अद्भुत उलझन में पड़ गया! कोई मेरी परम-प्रिया के नेत्रों का अपहरण करले, इसके विचार-मात्र से मैं तो भयभीत और व्याकुल हो गया। किन्तु, उन दो परियों को अपनी अलौकिक सम्पत्ति प्राप्त करने में सहायता करना था मेरे वश में! मैंने मैदम्आयज़ल (श्रीमती) मेसाँज को बुलाकर संक्षेप में सारी परिस्थिति समझा दी।

उसे न तो आश्चर्य हुआ और न विषाद ही, किन्तु कुछ क्षण विचार करने के उपरांत नवागतों की ओर मुड़कर, नेत्रों के पल पूरे उघाड़कर उसने कहा, "देखो, सुन्दरी परियो! बताओ ये तारे आपके ही हैं क्या?"

वे निकट आगईं। मेसाँज के निर्मल नेत्रों का उन्होंने ध्यान-पूर्वक अनुवेक्षण किया। निर्णायकों की भाँति मंद स्वर से कुछ क्षण तक

उन्होंने आपस में बात-चीत की। तदुपरांत "हिलियल" ने कहा—"नहीं ये वे सितारे नहीं, जो सोलह वर्ष पहिले खो गये थे। हमारे वे तारे जुलाई की उस रात में थे तो अतीव सुंदर, पर इतने ज्योतिर्मय और तेजस्वी नहीं थे।"

इतना कहकर वे निराश-भाव से विदा हो गईं। मेरा हृदय दयार्द्र था उनके दुःख से, और हर्षित था इस बात से कि वे मेरी प्रिया को लूट न सकीं।

और मेसाँज ? वह तो खिल-खिलाकर हँस पड़ी। "क्यों मैंने खूब चतुराई से काम लिया न ?" उसने कहा, "यह बात सच है,—मेरी माँ ने मुझे सैकड़ों बार बताया था—कैसे मेरे जन्म के कुछ दिन बाद ही, दो तारे टूटकर खिड़की में से आकर मेरे नेत्रों में समा गए थे। किंतु जब वे परियाँ मेरी ओर देख रही थीं, तब मैं सोचने लगी थी, मेरे प्यारे ! उस क्षण का आनंद, जब आपने पहले पहल मेरे कपोल पर प्रेम का चुम्बन अङ्कित किया था, और मुझे पूर्ण विश्वास है कि उस आनंद की मधुर स्मृति से प्राचीन तारों वाले मेरे ये नेत्र सुंदर-से-सुंदर नभस्थ नक्षत्रों की अपेक्षा अधिक ज्योतिर्मय हो गये थे !"

फ्रान्स : : : अनातोले फ्रान्स

बाजीगर

लुई बादशाह के समय में एक ग़रीब बाजीगर रहता था। उसका नाम था बर्नाबिस। वह था कोंपेन नगर का निवासी; किन्तु अपनी शूरता और चतुराई के हाथ दिखाने के लिए गाँव-गाँव घूमा करता।

अच्छा-सा दिन देखकर वह शहर के चौराहे पर अपनी फटी-पुरानी दरी बिछाकर, कुछ मनोरंजन की बातें बनाकर, बालकों और आलसियों के समुदाय को एकत्रित कर लेता। उसकी बातें वही रटी-रटाई होती थीं। एक शब्द का भी हेर-फेर नहीं होने पाता। भीड़ जमा करके वह नाक की नोक पर काँसे की एक थाली थमा लेता। पहले तो लोग उसकी ओर उपेक्षा की दृष्टि से देखते; किन्तु जब वह धरती पर सिर टेककर अपने हाथों से एक साथ ताँबे के छः गोले उछालता और पकड़ता, तब उन गोलों को सूर्य के प्रकाश में चमकते हुए देखकर, अथवा उस समय जब वह पीछे की ओर झुककर एँड़ियों पर सिर टेक

देता और एक पहिए की भाँति अपना स्वरूप बनाकर पूरे बारह छुरों से तमाशा करता, तब दर्शक लोग वाह-वाह की धुन लगा देते और उसकी दरी पर ताँबे और चाँदी के टुकड़ों की वर्षा होने लगती।

तो भी, कोपेन-निवासी वर्नाबस हाथ की कारीगरी के भरोसे जीविका-निर्वाह करने वालों की भाँति, बड़ी कठिनता से जीवन-यापन करता। अपना पसीना बहाकर, दो रोटी पैदा करने में उसे उन आपदाओं का औरों की अपेक्षा अधिक सामना करना पड़ता, जो बाबा-आदम के दोष से हम सबके पाले पड़ी हैं।

इसके अतिरिक्त, वह इच्छापूर्वक अपने करतब दिखा भी नहीं पाता; क्योंकि अपने अद्‌भुत गुणों के प्रदर्शन के लिए उसे वृक्षों की भाँति आवश्यकता पड़ती सूर्य के ताप की, और दिवस के प्रकाश की। शरद् के दिनों में तो उसकी वही दशा रहती, जो पत्तों के बिना वृक्षों की होती है—अर्द्धमृतक-वत्। धरती पर जमी बरफ़ बड़ी कठोर मालूम देती। मेरी-द-फ्रान्स के द्वारा वर्णित 'सिकेद' जन्तु की भाँति; वह खराब ऋतु में शीत और क्षुधा से पीड़ित रहता। किन्तु, वह था सरल-हृदय, चुपचाप कष्ट भोगता रहता।

अतुल सम्पत्ति के उत्पादन और मनुष्यों की असमान अवस्थाओं के बारे में उसने कभी दिमाग़ नहीं लड़ाया। उसका दृढ़ विश्वास था कि यदि यह संसार पाप और विपद्‌पूर्ण है तो परलोक अवश्य ही पुण्य-मय है, और अपने इस विश्वास के भरोसे वह जी रहा था। वह उन 'चतुरों' में नहीं था, जो अपनी आत्मा को बेंच देते हैं पिशाच के हाथों। वह कभी भगवान् का नाम व्यर्थ नहीं लेता। एक खरे आदमी का-सा

जीवन व्यतीत करता और यह देखकर कि उसकी अपनी स्त्री नहीं है, वह दूसरे की स्त्री को फुसलाने का उपाय भी नहीं करता; क्योंकि वह जानता था कि औरत बलवान् की बैरिन है, जैसा कि प्राचीन कथाओं में लिखा है।

वास्तव में, उसका मन भोग-विलास की ओर आकृष्ट ही नहीं हुआ था। स्त्री-सुख की अपेक्षा सुरा-पान का त्याग करने में उसे अधिक कष्ट अनुभव हुआ। क्योंकि यद्यपि वह शराबी तो नहीं था, तो भी उष्ण दिनों में हलकी-सी शराब का मज़ा ज़रूर लेता। वह था बड़ा भला, भगवान् से डरता, और पवित्र कुमारी की भक्ति में रत रहता। जब कभी वह गिरजे में जाता, देवमाता की प्रतिमा के आगे नत मस्तक होकर यह प्रार्थना किए बिना नहीं रहता—

"देवी, जब तक भगवान् मेरे जीवन का अन्त न कर दें, तब तक मेरी देख-भाल रखना और मृत्यु के उपरान्त मुझे स्वर्गीय सुखों से वञ्चित नहीं रखना।"

वर्षा हो जाने के बाद एक दिन संध्या के समय वह उदास मन से, अपने बाजीगर के थैले को लटकाए और उस पुरानी दरी में अपने छुरे लपेटे, चला जा रहा था किसी छप्पर की खोज में; जिसके नीचे वह अपने भूखे पेट को लेकर रात बिता सके। सहसा उसे उसी ओर आता हुआ एक साधु दिखाई दिया। उसने आदर-पूर्वक साधु को प्रणाम किया। थोड़ी दूर एक साथ चलने पर दोनों में बातें होने लगी।

"मित्र," साधु ने पूछा—"यह क्या बात है, तुम हरे कपड़े क्यों पहने हो? क्यों किसी भेद-भरी बात में मूर्ख बनने जा रहे हो क्या?"

"नहीं, पिता, नहीं।" बर्नाबस ने उत्तर दिया—"मेरा नाम है बर्नाबस। मैं हूँ बाजीगर। दुनिया में इससे अच्छा पेशा और क्या होता यदि मुझे रोज भरपेट खाने को मिल जाता?"

"मित्र बर्नाबस! साधु ने कहा—"अपनी बात सोच-समझ कर कहो। साधु-महन्तों के कार्य से बढ़कर और कोई नहीं। महन्त भगवान् की आराधना करता है; कुमारी देवी की—सन्तों की पूजा करता है। सन्यासी का जीवन तो उस परमपिता की सर्वकालिक स्तुति के समान है।"

और बर्नाबस ने उत्तर दिया—"पिता, मेरी भूल हुई। मैं तो हूँ अज्ञानी। आपकी बुद्धि के आगे मेरा क्या मूल्य? मैं यदि नाक पर छड़ी रखकर उस पर एक अधेले की साधना कर सकूँ और नाच सकूँ तो उससे क्या हुआ? आपकी बुद्धि से मेरी इस कला की तुलना करना मूर्खता का काम ही समझा जायगा। पिता! मेरी इच्छा होती है कि मैं भी आपही की भाँति प्रतिदिन भजन गाऊँ, विशेषतः परम पवित्र कुमारी देवी के—जिसके प्रति मेरे मनमें प्रगाढ़ भक्ति है। सन्यस्त जीवन बिताने के लिए मैं अपने इस हुनर को छोड़ने के लिए तैयार हूँ, जिसके कारण मैं सोसाँ से बोवे तक, छः सौ से अधिक नगरों और ग्रामों में विख्यात हूँ।"

सन्यासी बाजीगर की सरलता पर मुग्ध होगया। उसमें चतुराई का तो अभाव था नहीं; वह जान गया—बर्नाबस साधारण व्यक्ति नहीं है—वह है उन लोगों में से, जिनके सम्बन्ध में स्वयं उस परमपिता ने कहा है—"पृथ्वी-तल पर वे चिरशांति प्राप्त करें।" और इसलिए उसने यह उत्तर दिया—

"प्रिय सखा बर्नाबस! मेरे साथ आओ। जिस मठ का मैं अधिष्ठाता

हूँ, उसमें तुम्हें प्रविष्ट करवाना मेरा काम होगा। उसीने, जिसने मिश्र-वासिनी 'मेरी' को मरुभूमि पार कराई थी, आज तुम्हारे मार्ग में मुझे भेजा है, जिससे मैं तुम्हें मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर कर सकूँ।"

इस प्रकार बर्नाबस हो गया साधु। जिस मठ में उसने प्रवेश किया, उसमें वहाँ के साधुगण पवित्र कुमारी की विभूतिमय आराधना किया करते थे, भगवान् की दी हुई अपनी-अपनी बुद्धि और चतुराई के अनुसार देवी की सेवा करते।

मठाधीश, एक विद्याभिमानी की भाँति, ग्रन्थ रचना करता, देव-माता के गुणों का वर्णन करता। बन्धु मौरिस उन ग्रन्थों की, अच्छे टिकाऊ कागजों पर, सुन्दर-सुन्दर अक्षरों में प्रतिलिपि करता, और बन्धु एलेक्ज़ेंडर उन्हें सुशोभित करता चरणों में चार सिंहों से रक्षित सिंहासन पर विराजी हुई स्वर्ग की देवी को चित्रित करके। देवी की मुखाकृति के प्रकाश-पुञ्ज के समीप चित्रित होते सप्त परडुक, पवित्रात्मा के सात गुणों—भय, दया, ज्ञान, शक्ति, न्याय, बुद्धि और विवेक के प्रतिनिधि स्वरूप। उसके साथ चित्रित होतीं स्वर्ण-केशा, छः अन्य कुमारियाँ—नम्रता, दूरदर्शिता, एकान्तता, आदर, कौमार्य और आज्ञापालन। उसके चरणों में चित्रित होतीं आलोकमय श्वेत नग्न दो बाल-मूर्तियाँ, विनय-भाव से खड़ी। वे थीं आत्मायें मुक्तिदायिनी देवी की अभ्यर्थ प्रार्थना में रत। दूसरे पृष्ठ पर बन्धु एलेक्ज़ेंडर ने चित्रित किया था देवी 'मेरी' के सम्मुख 'ईव' को, जिससे एक ही साथ पाप और उसके उद्धार का, दर्प-मर्दित स्त्री और आदरणीय 'कुमारी' का दर्शन हो सके। इस अन्थरत्न के अन्य बहुमूल्य चित्रों में चित्रित थे जीवन-मय पानी का कूप,

फव्वारा, कमल, चन्द्र, सूर्य और प्रतिरुद्ध-उद्यान, जिसके सम्बन्ध में धर्म-ग्रन्थों के भजनों में बहुत कुछ कहा गया है, स्वर्गीय द्वार और देव नगरी। ये सब 'कुमारी' की प्रतिमायें ही थीं।

बन्धु मारवेद भी 'मेरी' की प्रिय सन्तानों में से था। वह सदैव पाषाण प्रतिमायें गढ़ता रहता, धूल से उसके केश, श्मश्रु और भौं सफ़ेद बने रहते और आँखें सूजी रहतीं, उनमें से पानी बहता रहता। तो भी वह अपनी इस पकी हुई उम्र में भी कष्ट-सहिष्णु और प्रसन्न-चित्त व्यक्ति था। इसमें संदेह नहीं कि स्वर्ग की देवी अपने इस पुत्र के अन्तिम दिनों की देख-रेख रखती थीं। मारवेद देवी को उपस्थित करता सिंहासन में आसीन, मुखमण्डल के चारों ओर मुक्ता-निर्मित चक्र से आवृत। उस देवी के चरणों को ढकने के लिए वस्त्रों की तहों के बनाने में उसे बड़ा परिश्रम उठाना पड़ता, जिसके लिए स्वयं पैगम्बर ने कहा था—"मेरी प्रिया एक प्रतिरुद्ध उद्यान के समान है।"

कभी-कभी वह देवी को उपस्थित करता मनोहर बाल-रूप में, और उसकी प्रतिमा बोलती मालूम देती—"देव! तू मेरा देवता है!"

मठ में कवि भी थे, वे परम कृपालु कुमारी मेरी के सम्मान में, लेटिन भाषा में, स्तुति-रचना करते; उनमें से एक था 'पिकार्ड' उसने तो दैवी कौतुकों का अनुवाद ग्रामीण-भाषा की अक्खड़ कविता में किया था!

योग्यता प्रदर्शन की इस प्रतियोगिता और सुंदर-सुंदर कृत्यों के बाहुल्य को देखकर बर्नाबस अपनी अज्ञानता और सरलता पर दुःखित हो उठा।

"हाय!" मठ की प्राचीर की छाया में उस छोटे से उद्यान में घूमते समय उसने मन ही मन सोचा—"अपने अन्य बन्धुओं की

भाँति मैं उस पतित-पावनी देव-माता की सेवा नहीं कर पाता, जिसके प्रति मेरे हृदय में इतनी भक्ति है, इसीलिए मैं इतना दुःखी हूँ। हाय, मैं हूँ निरा मूर्ख, कला से अनभिज्ञ; और देवी! तुम्हारी सेवा के लिए न मैं उपदेश दे सकता हूँ, न नियमानुसार सुन्दरता से प्रस्तुत ग्रन्थ-रत्न मेरे पास हैं,। न नयनाभिराम चित्र हैं, न चतुराई से निर्मित प्रतिमायें हैं, और न छन्दोबद्ध कवितायें ही हैं! हाय, मेरे पास कुछ भी तो नहीं!"

इस प्रकार शोकाकुल होकर वह चिंता-मग्न रहता।

एक दिन संध्या के समय जब साधुगण मन बहलाव के लिए आपस में चर्चा कर रहे थे, उसने एक साधु की गाथा सुनी, जिसे एव-मेरिया के अतिरिक्त और कुछ भी याद नहीं था। अपने अज्ञान के लिए उसे बुरा-भला सुनना पड़ता; किन्तु उसकी मृत्यु के बाद उसके मुख में से पाँच गुलाब प्रकट हुए, मेरिया के नाम के पाँच अक्षरों के सम्मान में। इस प्रकार उसकी पवित्रता अक्षुण्ण सिद्ध हुई।

इस कथा को सुनकर, बर्नाबस देवी के उपकार को जान गया; किन्तु उसे इस सुखदायक कौतुक के उदाहरण से संतोष नहीं हुआ, उसका हृदय तो उत्साह से भरा था और वह तो चाहता था स्वर्ग की देवी के प्रताप को प्रसिद्ध करना।

ऐसा करने के लिए वह किसी मार्ग की खोज में लगा; पर व्यर्थ। दिन पर दिन उसकी चिंता बढ़ती गई। एक दिन प्रातःकाल वह सहसा अपनी शैया से उठकर प्रसन्नता-पूर्वक मन्दिर की ओर दौड़ पड़ा। एक घंटे से भी अधिक वह वहाँ एकान्त में रहा। भोजन के पश्चात् भी वह वहाँ पहुँच गया, अब प्रतिदिन दूसरे साधु जिस समय कला और विज्ञान

में संलग्न रहते, वह अपना अधिकांश समय वहीं बिताने लगा। अब न वह उदास रहता न आहें भरता। किन्तु, उसके इस अनोखे व्यवहार से दूसरे साधुओं को आश्चर्य होने लगा, और वे मन ही मन सोचते—बन्धु बर्नाबस एकान्त में क्या करता रहता है ? अधिष्ठाता ने उसके कृत्यों को देखने का निश्चय किया, क्योंकि प्रत्येक साधु के कार्यों पर निगरानी रखना उसका कर्त्तव्य था। इसलिए एक दिन जब बर्नाबस मन्दिर में अकेला था, अधिष्ठाता ने दो वयोवृद्ध बन्धुओं के साथ उसकी निगरानी के लिए प्रवेश किया; जँगले के बाहर खड़े होकर वे देखने लगे कि भीतर क्या हो रहा है।

उन्होंने देखा—देवी की प्रतिमा के सम्मुख बर्नाबस सिर नीचे और पाँव ऊपर किये छः ताँबे के गोलों और बारह छुरों से बाजीगरी के करतब कर रहा है। पवित्र कुमारी के सम्मान में वह वही कौशल दिखा रहा था, जिनसे उसने पूर्वकाल में यशोपार्जन किया था। पवित्र कुमारी की सेवा में अपनी सर्वोत्तम कला के अर्पण के इस मनोभाव को न समझकर वे वयोवृद्ध बन्धु इस अधार्मिक कृत्य के विरोध में चिल्ला उठे। मठाधीश जानता था कि बर्नाबस सरलात्मा है; किन्तु उसने यह समझा कि वह अपनी बुद्धि खो बैठा है। बर्नाबस को मन्दिर से हटाने के लिए जब तीनों आगे बढ़े, उन्होंने देखा स्वयं देवी बेदी से उतरकर अपने नील-वस्त्र के छोर से बाजीगर के माथे पर से पसीना पोंछ रही हैं।

संगमरमर के आँगन पर नत मस्तक होकर मठाधीश ने दोहराया; "भाग्यवान हैं वे निर्मल हृदय, जिन्हें स्वयं परमपिता दर्शन देते हैं।"

"आमीन," नत मस्तक होकर दूसरे बन्धुओं ने प्रतिध्वनि की।

फ्रांस : : : गी दी मोपासाँ

चन्द्रहार

वह थी मनको मोहनेवाली रूपवती बालिकाओं में एक, जो विधि-विडम्बना—भाग्य के किसी दोष—से जन्म लेती हैं नौकरी-पेशा लोगों के घरों में। उसके भाग्य में न दहेज था, न सुखकर आशाएँ थीं। और न ऐसे साधन ही थे, जिनसे वह धनिक-समाज से परिचय पाती; उनमें से किसी से प्रेम करती; विवाह करती। उसका विवाह हुआ शिक्षा-विभाग के मंत्री के एक तुच्छ क्लर्क से !

वह सीधे-सादे कपड़ों से काम चलाती। बढ़िया पोशाक थी भी कहाँ ? वह इस प्रकार चिंतित रहती, मानों वह अपने वास्तविक पद से च्युत कर दी गई है। कारण, रमणी-वर्ग की महत्ता उनके उच्च जन्म और जाति में नहीं है; है शोभा में, सौन्दर्य में। स्वभाव की कोमलता, वाणी की मधुरता, बुद्धि की प्रखरता ही से एक साधारण कुल की रमणी ऊँचे घराने की स्त्री की समानता प्राप्त करती है।

उसके हृदय को एक दुःख सदैव सालता रहता। वह अनुभव करती कि उसका जन्म तो जीवन की सब सुख-सुविधा और आनन्द-उपभोग का रसास्वादन करने के लिए हुआ है। किन्तु, उसके दुःख-दारिद्र्य का तो अन्त ही नहीं था। घर की वे टूटी-फूटी दीवारें, जीर्ण-शीर्ण कुर्सियाँ, फटे-पुराने परदे देखकर वह जी-मसोसकर रह जाती। उसी की स्थिति-वाली कोई स्त्री जिन बातों की परवा भी नहीं करती, वही बातें उसे चिंतित और क्रोधित करती रहतीं। किसी नारी को प्रसन्नतापूर्वक अपनी गृहस्थी का सुख भोगते देखकर उसकी मानसिक चिंता सजग हो जाती, अनहोने स्वप्नों का तूफान-सा उठ खड़ा होता। वह कल्पना करती सुख-शान्तिमय भवन की—प्राचीन काल के रेशमी बेल-बूटेदार परदों से सुसज्जित, ताँबे के एक सुविशाल शमादान से प्रकाशित। वह अपनी कल्पना की आँखों से देखती—गरम हवा के चूल्हे के समीप आराम-कुर्सियों पर ऊँघते हुए नौकर-चाकर। वह सोचती—एक बढ़िया-सी बैठक होती, उसमें सजा होता विलास का कीमती साज-सामान। सन्ध्या के समय आकर्षक सुगन्धि से पूरित एक कमरे में वह अपने ऐसे घनिष्ट मित्रों के साथ बैठकर गप-शप करती, जो समाज में प्रसिद्धि-प्राप्त हैं; युवती स्त्रियाँ जिनकी सदैव कामना करती रहती हैं।

जब वह तीन दिन की पुरानी चादर से आवृत गोल मेज़ पर भोजन के लिए बैठती और सामने बैठता उसका पति, और वह सूप (जूस) की थाली को उघाड़ते हुए कहता—"ओह, इससे उम्दा चीज़ और क्या होगी?" उस समय वह सपना देखती—दर-असल उम्दा खान-पान का, चाँदी के चमकते हुए बर्तनों का, दीवारों पर सजे हुए परदों में चित्रित प्राचीन

फ्रांस : : : गी दी मोपासाँ

चन्द्रहार

वह थी मनको मोहनेवाली रूपवती बालिकाओं में एक, जो विधि-विडम्बना—भाग्य के किसी दोष—से जन्म लेती हैं नौकरी-पेशा लोगों के घरों में। उसके भाग्य में न दहेज था, न सुखकर आशाएँ थीं। और न ऐसे साधन ही थे, जिनसे वह धनिक-समाज से परिचय पाती; उनमें से किसी से प्रेम करती; विवाह करती। उसका विवाह हुआ शिक्षा-विभाग के मंत्री के एक तुच्छ क्लर्क से !

वह सीधे-सादे कपड़ों से काम चलाती। बढ़िया पोशाक थी भी कहाँ? वह इस प्रकार चिंतित रहती, मानों वह अपने वास्तविक पद से च्युत कर दी गई है। कारण, रमणी-वर्ग की महत्ता उनके उच्च जन्म और जाति में नहीं है; है शोभा में, सौन्दर्य में। स्वभाव की कोमलता, वाणी की मधुरता, बुद्धि की प्रखरता ही से एक साधारण कुल की रमणी ऊँचे घराने की स्त्री की समानता प्राप्त करती है।

उसके हृदय को एक दुःख सदैव सालता रहता। वह अनुभव करती कि उसका जन्म तो जीवन की सब सुख-सुविधा और आनन्द-उपभोग का रसास्वादन करने के लिए हुआ है। किन्तु, उसके दुःख-दारिद्र्य का तो अन्त ही नहीं था। घर की ये टूटी-फूटी दीवारें, जीर्ण-शीर्ण कुर्सियाँ, फटे-पुराने परदे देखकर वह जी-मसोसकर रह जाती। उसी की स्थिति-वाली कोई स्त्री जिन बातों की परवा भी नहीं करती, वही बातें उसे चिंतित और क्रोधित करती रहतीं। किसी नारी को प्रसन्नतापूर्वक अपनी गृहस्थी का सुख भोगते देखकर उसकी मानसिक चिंता सजग हो जाती, अनहोने स्वप्नों का तूफान-सा उठ खड़ा होता। वह कल्पना करती सुख-शान्तिमय भवन की—प्राचीन काल के रेशमी बेल-बूटेदार परदों से सु-सज्जित, ताँबे के एक सुविशाल शमादान से प्रकाशित। वह अपनी कल्पना की आँखों से देखती—गरम हवा के चूल्हे के समीप आराम-कुर्सियों पर ऊँघते हुए नौकर-चाकर। वह सोचती—एक बढ़िया-सी बैठक होती, उसमें सजा होता विलास का कीमती साज-सामान। सन्ध्या के समय आकर्षक सुगन्धि से पूरित एक कमरे में वह अपने ऐसे घनिष्ट मित्रों के साथ बैठकर गप-शप करती, जो समाज में प्रसिद्धि-प्राप्त हैं; युवती स्त्रियाँ जिनकी सदैव कामना करती रहती हैं।

जब वह तीन दिन की पुरानी चादर से आवृत गोल मेज़ पर भोजन के लिए बैठती और सामने बैठता उसका पति, और वह सूप (जूस) की थाली को उघाड़ते हुए कहता—"ओह, इससे उम्दा चीज़ और क्या होगी?", उस समय वह सपना देखती—दर-असल उम्दा खान-पान का, चाँदी के चमकते हुए बर्तनों का, दीवारों पर सजे हुए परदों में चित्रित प्राचीन

महापुरुषों और किसी अज्ञात वन में उड़ते हुए पक्षियों का। उसका ध्यान जाता सुन्दर तश्तरियों में सजे हुए स्वादिष्ट पदार्थों पर, 'ट्राउट' के गुलाबी गोश्त और 'क्वॉल' के डैने खाते समय मुस्कुराते हुए प्रेमियों के ख़ुशामद-भरे आत्म-निवेदन सुनने पर।

न उसके पास कपड़े थे, न गहने। कुछ भी तो नहीं! और उसे प्यार था तो बस, साज-श्रृङ्गार से। वह अनुभव करती कि श्रृङ्गार के लिए ही तो उसकी सृष्टि हुई है। वह भी चाहती कि कोई उससे ईर्षा करता, उसे चाहता, उस पर मुग्ध होता और उसे पाने का प्रयत्न करता!

उसकी एक सखी थी—बाल-काल की साथिन। दोनों एक साथ पढ़ी थीं। किन्तु, वह थी धनवान्। उसके यहाँ भी वह कभी नहीं जाती; क्योंकि लौटने पर वह मानसिक पीड़ा से व्यथित हो उठती।

एक दिन उसका पति खुश होता हुआ घर लौटा। उसके हाथ में एक बड़ा-सा लिफ़ाफ़ा था।

"देखो," उसने कहा—"इसमें तुम्हारे काम की एक चीज़ है।"

उसकी उत्सुक अँगुलियों ने झट से लिफ़ाफ़ा खोल लिया। उसके भीतर कार्ड पर छपा था—

"सोमवार ता० १८ जनवरी की सन्ध्या को, शिक्षा-भवन के समारोह में सम्मिलित होने के लिए शिक्षा-सचिव और श्रीमती ज्योर्ज, श्रीमान् और श्रीमती लोइज़ल को आमन्त्रित करते हैं।"

पति की आशा के, प्रतिकूल, प्रसन्न होने के बदले, निराशा से निमंत्रण-पत्र को टेबिल पर फेंककर, मुँह फुलाकर, वह बोली—"मैं इसका क्या करूँ?"

"मेरी प्यारी! मैंने तो समझा था, इस निमन्त्रण को पाकर तुम खुश होगी। तुम कभी बाहर निकलती ही नहीं। यह तो स्वर्ण-सुयोग है। बड़ी कठिनता से मैंने यह निमन्त्रण पाया है। चुने-चुने लोगों को निमंत्रण भेजे गये हैं। क्लर्कों को तो निमन्त्रण मिलने प्रायः असम्भव ही थे। सभी ऊँचे ओहदेदार वहाँ जुटेंगे।"

उसने अपने प्रज्वलित नेत्रों से उसकी ओर देखकर अधीरता से कहा—

"मैं जाऊँगी भी, तो क्या पहनकर?"

उसने इस प्रश्न की कल्पना भी नहीं की थी। उसने लड़खड़ाते हुए कहा—

"क्यों? तुम्हारी वह पोशाक तो बड़ी अच्छी है, जिसे पहनकर तुम नाटक देखने जाया करती हो। मुझे तो वह बहुत ही सुन्दर मालूम देती है।"

अपनी स्त्री को रोते देखकर वह चुप हो गया। दो बड़े-बड़े आँसू उसकी आँखों के कोनों में से निकलकर सुकोमल गालों पर लुढ़क आए। पति ने घबराकर पूछा—

"क्यों? क्या बात है? क्या हुआ?"

यत्नपूर्वक अपनी उदासी पर विजय पाकर उसने अपने गालों को पोंछकर शान्त स्वर से उत्तर दिया—

"कुछ भी तो नहीं। मेरे पास तन ढकने को कपड़ा भी नहीं। मैं समारोह में नहीं जा सकती। अपना यह निमन्त्रण-पत्र किसी ऐसे साथी को दे दो, जिसकी पत्नी मुझसे अधिक भाग्यवती हो।"

वह निराशा में डूब गया। उसने फिर कहा—

"अच्छा, तुम्हीं बताओ मथिल्दे! एक अच्छी-सी पोशाक में कितना

ख़र्च हो जायगा ? जिसे पहनकर तुम ख़ास-ख़ास मौकों पर बाहर जा सको। कोई बढ़िया-सी सादी पोशाक होनी चाहिए।"

वह कुछ देर तक विचार करती रही, हिसाब लगाती रही। वह जानती थी, एकदम से बड़ी सी रक़म बता देने पर वह मितव्ययी क्लर्क डर-सा जायगा और झट ना कर बैठेगा।

अन्त में उसने सोच-विचारकर कहा—

"मैं ठीक तो नहीं बता सकती। किन्तु मेरा अनुमान है कि मैं चार सौ फ्रांक में काम चला लूँगी।"

पति का चेहरा तनिक ज़र्द हो गया। क्योंकि उसने क़रीब इतना ही बचाया था और उस धन से एक बढ़िया-सी बंदूक ख़रीदकर आगामी ग्रीष्म के दिनों में, नेन्टेरी के मैदान में, अपने मित्रों के साथ प्रति रविवार को, 'लार्क' पक्षी के शिकार का मज़ा लूटने का इरादा कर रहा था।

तो भी उसने स्वीकार कर लिया:—

"बहुत ठीक। मैं तुम्हें चार सौ फ्रांक दे सकूँगा। एक बढ़िया पोशाक बनवा लो।"

नृत्य-समारोह का समय समीप आने लगा। उधर श्रीमती लोइज़ल की उदासी, बेचैनी और उत्सुकता बढ़ने लगी। पोशाक तो तैयार हो गई। उसके पति ने एक दिन उसे कहा—

"क्यों ? क्या बात है ? इधर तीन दिन से तुम बड़ी उदास दिखाई देती हो ?"

उसने उत्तर दिया—

"मुझे यह बहुत बुरा मालूम देता है कि मेरे पास एक भी ज़ेवर

नहीं, हीरे-मोती की एक भी चीज़ नहीं। मैं कैसे सजूँगी? मैं तो बड़ी बेहूदी दीखूँगी। इससे तो यही अच्छा है कि मैं नहीं जाऊँ।"

पति ने कहा:—

"थोड़े से फूल तुम्हें खूब सजेंगे। लोइजल! आजकल तो यही फ़ैशन है, इन्हीं को शोभा है। दस फ्रांक में तो दो-तीन बड़े गुलाब मिल जायँगे।"

उसे संतोष नहीं हुआ।

"नहीं, बिल्कुल नहीं। बड़े-बड़े धनवान् लोगों के बीच में एक निर्धन की भाँति सम्मिलित होने से अधिक लज्जाकी बात और कोई नहीं।"

उसका पति बोल उठा—

"कैसी पगली हो, तुम? जाओ, अपनी सखी श्रीमती फोरेस्टियर से एक-दो गहने माँग लाओ। तुम्हारा उनके साथ बहुत अधिक स्नेह है, कोई संकोच की बात नहीं।"

हर्ष से वह पुकार उठी—

"ओह, बहुत ठीक बतलाया। मैंने तो इस बात को सोचा भी नहीं।"

दूसरे दिन अपनी सखी के पास जाकर उसने अपने दुःख की बात कह सुनाई।

श्रीमती फोरेस्टियर ने एक बड़ा-सा शीशा जड़ा हुआ दरवाज़ा खोलकर अपनी आलमारी में से गहनों का एक बक्स निकालकर उसे श्रीमती लोइजल के सामने रखते हुए कहा—

"चुन लो, मेरी प्यारी सखी! अपनी पसंद की चीज़ ले लो।"

उसने सभी गहने देखे—चूड़ियाँ थीं, मोतियों का कण्ठा था, जड़ाऊ 'क्रॉस' भी था। सभी गहने सोने के थे। उन पर बड़ी कारीगरी से

जवाहिरात जड़े हुए थे। उसने दर्पण के सामने एक-एक गहना पहनकर अपनी शोभा की परीक्षा की। उन गहनों को उतारते हुए उसको बड़ा दुःख होता था। वह निश्चय नहीं कर सकी कि कौन-सा ले और कौन-सा छोड़े। उसने पूछा—

"क्यों बहन, और गहने नहीं हैं क्या?"

"हाँ, हैं तो। देखो, तुम्हें कौन-सी चीज़ पसन्द होगी?

सहसा उसे काली मखमल के बक्स में हीरों का एक चन्द्रहार दिखाई दिया। एक अद्भुत लालसा से उसका हृदय स्पंदित होने लगा। उसे उठाते समय उसके हाथ काँपने लगे। गले में उस हार को पहनकर वह अपने सौन्दर्य पर मुग्ध होकर आनन्द-विमुग्ध-सी हो गई।

चिन्तातुर होकर उसने संकोच-पूर्वक पूछा—

"क्या तुम यह हार—बस, एक यही हार—मँगनी दे सकोगी?"

"हाँ, अवश्य।"

खुशी के मारे पागल-सी होकर वह अपनी सखी से लिपट गई। अनुराग-पूर्वक उसे चूमकर, जल्दी से वह अमूल्य धरोहर लेकर वहाँ से चल दी।

❀ ❀ ❀

नृत्य-समारोह का दिन आ गया। श्रीमती लोइज़ल ने अच्छी सफलता प्राप्त की। वह सबसे अधिक सुन्दर थी और थी आनन्द-विमुग्ध, मनमोहिनी, फूल के समान हँसती हुई। सभी की दृष्टि उस पर पड़ी। लोग उसीके बारे में पूछते—उससे परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न करते। यहाँ तक कि कैबिनेट के सभी सदस्य उसके साथ नाचने के लिए आतुरता

प्रकट कर रहे थे। स्वयं सचिव उसके साथ नृत्य में सम्मिलित हुआ।

वह आनन्द की मदिरा में चूर होकर खूब नाची। वह भूल गई और सब बातें अपने सौन्दर्य की विजय के गर्व में, अपनी सफलता की खुशी में, अपने आदर-सत्कार से निर्मित प्रसन्नता के उन बादलों में, अपनी प्रशंसा की श्रुति-मधुर बातों में, उन नव-जाग्रत लालसाओं में और स्त्री-हृदय की सबसे अधिक प्रिय वस्तु—पूर्ण विजय की भावना में!

प्रातःकाल चार बजे वह लौटी। उसका पति मध्य रात्रि ही से पास के एक कमरे में बैठा ऊँघ रहा था। उसके तीन और भी साथी थे, जिनकी पत्नियाँ भी नृत्य-समारोह में लवलीन थीं।

पति ने गरम शाल उसे ओढ़ा दी। नाच की उस मनोहारी पोशाक पर शाल की वह दरिद्रता उसे बड़ी बुरी मालूम दी। उसे इस बात का दर्द हुआ। वहाँ से वह झट से चल दी; जिससे किसी ऐसी स्त्री को उस पर ताना-कशी करने का मौक़ा न मिल जाय, जो स्वयं बहु-मूल्य समूर ओढ़कर आई हो।

लोइज़ल ने उसका अनुगमन किया।

"ज़रा ठहरो तो। तुम्हें सरदी लग जायगी। मैं एक गाड़ी बुला लाता हूँ।"

उसने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। झटपट सीढ़ियाँ उतरकर वह सड़क पर पहुँच गई। वहाँ कोई गाड़ी नहीं दिखाई दी। दूर से जाती हुई गाड़ी को देखकर वे उसे पुकारते जाते थे।

ठंड से काँपते हुए और निराश मन से वे सीन नदी की ओर चले। अन्त में उन्हें चौराहे पर एक पुराने ज़माने की, रात में चलने

वाली गाड़ी दिखाई दी। वह भी मानों अपनी दरिद्रता को छिपाने के लिए पेरिस की गलियों में सूर्यास्त से पहले अपना मुँह नहीं दिखाती थी।

उसीमें बैठकर वे रू-द-मारटेयर्स में अपने घर पहुँचे। फिर एक बार उदास मन से उन्होंने अपने घर में प्रवेश किया। उसके लिए तो वह आनन्द अब स्वप्नवत् हो गया और पति इस चिन्ता में था कि दस बजे उसे आफ़िस में पहुँचना है।

ऊपर के कपड़े को दूर करके एक बार अपना सौन्दर्य फिर निहारने के लिए वह शीशे के सामने जा खड़ी हुई। सहसा उसके मुँह से एक चीत्कार निकली। हीरे का चन्द्रहार उसके गले से ग़ायब हो गया था।

उसका पति अभी कपड़े ही नहीं खोल पाया था, उसने घबराकर पूछा—

"क्यों, क्या हुआ ?"

बेचैनी से उसकी ओर घूमकर उसने उत्तर दिया—

"खो—खो गया, कहीं गिर गया—श्रीमती फोरेस्टियर का वह चन्द्रहार !"

चिन्तातुर होकर वह बोल उठा—

"क्या ? तुम क्या कहती हो ? यह भी कभी हो सकता है ?"

उन्होंने कपड़े की एक-एक तह देख डाली। सब जेबें खोज डालीं। कहीं भी उसका पता नहीं लगा।

"तुम्हें बराबर याद है, समारोह से लौटते समय तुम उसे पहने थीं ?

"हाँ, मैंने उसे भवन के दरवाजे पर हाथ लगाकर देखा था।"

"यदि हार रास्ते में गिरता, तो उसके गिरने की आवाज़ ज़रूर सुनाई देती। हो न हो, हार गाड़ी ही में गिर गया है।"

"हाँ, बहुत कुछ सम्भव है। तुमने उसका नम्बर ले लिया था?"

"नहीं, तुमने नम्बर देखे थे?"

"न।"

निराशाभिभूत होकर वे एक दूसरे की ओर ताकने लगे। आख़िर, लोइजल अपने कपड़े पहनकर तैयार हुआ।

"मैं उसी रास्ते पैदल जाता हूँ" उसनेकहा—"देखूँ,कहीं मिलजाय तो।"

वह घर के बाहर होगया। वह वही कपड़े पहने एक कुर्सी पर पड़ी रही निश्चेष्ट होकर। बिछौने में जाकर पड़ रहने की भी शक्ति उसमें नहीं रह गई।

उसका पति करीब सात बजे लैाटा। हार का कोई पता नहीं लगा।

उसने पुलीस को ख़बर दी, अख़बारों में इनाम की सूचना छपवाई, भाड़े की गाड़ियों के अड्डे, यत्र-तत्र सर्वत्र, जहाँ थोड़ी-सी भी आशा की किरणें थीं, खाक छान डाली। किन्तु निरर्थक!

इस भयानक विपत्ति की ठोकर खाकर वह दिन भर निराशा के शैथिल्य से पीड़ित पड़ी रही।

लोइज़ल रात को लैाटा। चेहरा पीला पड़ गया था और गालों में खड्डे। उसे कुछ भी नहीं मिला।

"तुम्हें अपनी सखी को लिख देना चाहिए।" उसने कहा—"हार का एक जोड़ टूट गया है। उसे सुधरवाने भेजा है। ऐसा लिखने से कुछ अवकाश मिल जायगा।"

उसके कहने के अनुसार उसने पत्र लिख दिया।

एक सप्ताह के बाद उन्होंने सारी आशा छोड़ दी। इतने से दिनों में मानों बेचारे लोइजल की आयु में पाँच वर्ष बीत गए। उसने कहा—

"अब बदले में दूसरा वैसा ही हार देने की चिन्ता करनी चाहिए!"

दूसरे दिन चन्द्रहार की मखमल की बक्स लेकर दोनों उस जौहरी के यहाँ गए, जिसका नाम उस पर अंकित था। उसने अपने कागज़-पत्र देखकर बतलाया:—

"मैंने तो यह हार नहीं बेचा था, श्रीमती जी! मैंने तो यह बक्स ही बनाकर दिया था।"

एक के बाद एक बहुत से जौहरियों की दूकान पर वे वैसे ही चन्द्र-हार की खोज में, मानसिक चिन्ता से क्षीण अपनी स्मृति का उपयोग करते हुए भटकते रहे।

आखिरकार, 'रॉयल पैलेस' की एक दूकान में उन्हें हीरों का एक ठीक वैसा ही चन्द्रहार दिखाई दिया, जैसा उन्होंने खो दिया था। उसकी कीमत थी चालिस हजार फ्रांक। किन्तु दूकानदार उसे ३६ हजार तक में बेच देने को राजी होगया।

उन्होंने दूकानदार से अनुरोध किया कि वह उस हार को तीन दिन तक किसी दूसरे के हाथ न बेंचे। सौदा तय होगया—और यह भी निश्चय होगया कि यदि असली हार मिल जाय तो फरवरी के अन्त तक वह अपना हार ३४ हज़ार फ्रांक में वापिस ले लेगा।

लोइजल का पिता १८ हजार फ्रांक की सम्पत्ति छोड़ गया था। शेष रकम उसे उधार लेनी पड़ेगी।

हजार-पाँच सौ करके उसने जगह जगह से रुपया उधार लिया। किसी से दश माँगे, किसी से बीस। उसने हुंडियाँ लिखकर दीं; सर्वनाश करनेवाले इकरारनामें किए। कर्ज देनेवालों के समुदाय के समुदाय से काम पड़ गया। इस प्रकार, उसने अपना सारा भावी जीवन गिरवी रख दिया। बिना बिचारे ही कि वह हुंडियां सिकार सकेगा या नहीं? उसने अपने हाथ कटा दिए! भविष्य की दुःखद कल्पना के भार से, दारिद्र्य के उस शीघ्र ही आनेवाले अंधकार की आशङ्का से, शारीरिक और मानसिक कष्टों के भय से, आन्दोलित मन से, वह नया चन्द्रहार खरीदने के लिए गया। जौहरी की मेज़ पर उसने ३६ हजार फ्रांक की थैली खोल दी।

जब श्रीमती लोइज़ल हार लौटाने के लिए श्रीमती फोरेस्टियर के पास गईं, तो उन्हें सुनना पड़ा—

"हार जल्दी लौटा देना चाहिए था। सम्भव था मुझे उसकी ज़रूरत पड़ जाती।"

उसने बक्स को खोला नहीं। उसे भय था कि कहीं यह पता न लग जाय कि यह हार दूसरा है। श्रीमती फोरेस्टियर यह जानकर कहीं उसे चोर न समझ बैठें?

श्रीमती लोइज़ल देनदार के जीवन की अधमता को जान गईं। खैर, कुछ भी हो। कर्ज तो चुकाना पड़ेगा, उसने वीरतापूर्वक इस आपदा का सामना करने में तत्परता दिखाई। नौकर को दूर कर दिया। रहने की जगह भी बदलकर एक मकान के ऊपर के तल्ले में वे एक छोटी-सी कोठरी में रहने लगे।

रसोई-पानी और घर के सभी छोटे-बड़े कामों से वह अभ्यस्त होने लगी। अपने गुलाबी नाखूनों से बरतनों के मैल को रगड़ कर वह उन्हें स्वयं साफ़ करती। बर्त्तन, धोने के कपड़े, कमीज़ वगैरह वह खुद धोती और सूखने के लिए उन्हें एक पंक्ति में अलगनी पर फैला देती। कूड़ा-कर्कट फेंकने के लिए रोज़ नीचे उतरना पड़ता; पानी भी भरकर ऊपर ले जाना पड़ता। बेचारी बीच-बीच में साँस लेकर काम चलाती। हाथ में डलिया लटकाकर रोज सबेरे, गरीब घर की स्त्री की भाँति कपड़े पहनकर, साग-सब्जीवाले के यहाँ, मोदी की दूकान पर और कसाई के घर जाती। एक-एक 'साड' की ओल के लिए वह उनसे लड़ती-झगड़ती, अपमान सहती!

हर महीने उन्हें थोड़ा कर्ज चुकाना पड़ता; कुछ कर्जों की तारीख बढ़ाने की प्रार्थना करनी पड़ती।

पति शाम को एक दूकानदार के यहाँ हिसाब-किताब का काम करता। रात को प्रति पृष्ठ पाँच 'साड' के हिसाब से हस्तलिखित प्रतियों की नकल करता। दश बरस तक जीवन की इस विकट घाटी में से उन्हें पार होना पड़ा।

इस काल के बाद उन्होंने सब कुछ चुका दिया—एक एक 'साड' चुका दिया था—ब्याजखोरों का ब्याज पर ब्याज, उनका खर्च बट्टा सब कुछ।

श्रीमती लोइजल अब बुढ़िया-सी दिखाई देने लगी। वह घरेलू कामकाजों से मजबूत, अक्खड़ और रूखे स्वभाव की बन गई। न कभी बाल संवारती, हाथ मैले रहते और कपड़े फटे। आँगन को फटकार-

फटकार कर धोते समय जोर-जोर से बोलती। हाँ, कभी कभी जब उसका पति आफिस में होता तो वह अपनी खिड़की में बैठकर नृत्य-समारोह की उस रात्रि की बात सोचती जब उसने अपने सौन्दर्य से विजय-लाभ किया था।

ओह, वह चन्द्रहार नहीं खोया होता, तो क्या होता? कौन जानता है? किसे पता है? जीवन भी कितना विचित्र, कितना परिवर्तनशील है? सर्वनाश अथवा उससे बचाव के लिए कितनी छोटी-सी बात पर्याप्त है!

एक रविवार को, सप्ताह भर की मेहनत-मजूरी का श्रम मिटाने के लिए जब वह 'चाम्प्स एलीसीस' में घूमने के लिए गई, तो दूर से एक स्त्री दिखाई दी। एक बालक उसकी अँगुली पकड़े था। वह थी श्रीमती फोरेस्टियर, उसका यौवन और मोहक सौन्दर्य अब भी अक्षुण्ण बने हुए थे।

श्रीमती लोइजल का मन आन्दोलित हो उठा। क्या उससे बात करनी चाहिए? ज़रूर। और जब उसने सारा कर्ज चुका दिया है, तो सत्य बात कह देने में हर्ज ही क्या है?

वह आगे बढ़ी।

"नमस्कार, जेनी!"

एक दरिद्र घरकी-सी स्त्री के मुँह से इस प्रकार परिचित का-सा सम्बोधन सुनकर वह अचरज में पड़ गई। उसने सङ्कोच के साथ कहा—

"आप ग़लती कर रही होंगी, श्रीमती जी, आपको मैंने नहीं पहचाना।"

"ओह, मैं हूँ मेथिल्दे लोइजल।"

उसकी सखी चिल्ला उठी—

"मेरी प्यारी मेथिल्दे! तुम तो क्या से क्या हो गईं! यह अनोखा परिवर्तन?"

"हाँ, मुझे बहुत बुरे दिन बिताने पड़े हैं। जब तुमसे आखिरी बार मिली थी, उसी समय से यह अधम जीवन बिता रही हूँ, तुम्हारे ही कारण!"

"मेरे कारण? कैसे-कैसे?"

"तुम्हें याद है, तुमने मुझे एक हीरे का चन्द्रहार नृत्य-समारोह में पहिनने के लिए मँगनी पर दिया था?"

"हाँ, याद है।"

"मैंने उसे खो दिया था।"

"क्या कहती हो? तुम तो उसे लौटा गई थीं?"

"ठीक वैसा ही हीरे का एक नया हार ख़रीदकर मैंने तुम्हें लौटाया था, और उसीकी कीमत गत साल तक हम दोनों चुकाते रहे हैं। हम गरीबों के लिए यह कोई आसान काम तो था नहीं। ख़ैर, कुछ भी हो वह बात अब गई-गुजरी हो गई। मैं बहुत ख़ुश हूँ।

श्रीमती फोरेस्टियर चकित-सी हो गईं।

"तुमने क्या कहा? मेरे हार के बदले में तुमने हीरे का हार खरीद कर दिया था?"

"हाँ। अच्छा, तुम्हें मालूम नहीं हुआ न? दोनों थे भी बिलकुल एक से।"

गर्व और निश्छलता-पूर्ण हर्ष से वह मुस्कुराने लगी।

श्रीमती फोरेस्टियर ने भावावेश में उसे भुजाओं में भर लिया।

"ओह, मेरी सखी मथिल्दे! मेरा हार तो झूठे हीरों का था, वह ज़्यादा से ज़्यादा पांच सौ फ्रांक का रहा होगा।"

ग्रेट ब्रिटेन : : : टॉमस हार्डी

पेट्रिक-पत्नी

उन लोगों को, जो 'स्टेपल फोर्ट-पार्क' की परम्परागत कथा से परिचित हैं, यह बताने की आवश्यकता नहीं होगी कि गत शताब्दी के मध्य में इसे गिरवीदार टिमोथी पेट्रिक ने चतुराई से अपने अधीन कर लिया था। उम्दा-उम्दा ज़मीन-जायदादों पर कर्ज़ देकर उन्हें हथियाने में इङ्गलैण्ड के इस भाग में कोई हो भी, तो उसकी जोड़ का था नहीं। टिमोथी था कानून का व्यवसायी। कई बड़े लोगों की दलाली करता। जिससे अनायास उसके लिए इस व्यापार का मार्ग प्रशस्त हो गया। सुनने में आया है कि उसका एक गम्भीर विचार-शील संबन्धी, जो दुर्भाग्यवश एक वसीयत नामे की सही के भूल-भरे विचारों के बारे में आजन्म निर्वासित कर दिया गया था, उसे कानून का पण्डित बना दिया गया, और अब वह अपने पांडित्य में किसी दूसरे का हिस्सा बटाना नहीं चाहता, सारा का सारा अपने लिए ही सुरक्षित रखना चाहता है।

तथापि, मुझे उसके प्रारम्भिक और जीवन-मय दिनों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना है; किन्तु मुझे कहना है उस समय का हाल जब वह बूढ़ा हो गया था, और ऊपर लिखे अनुसार बन गया था बड़ी-सी जागीर का मालिक। उसी जागीर के इस सुविशाल 'स्टेपल फ़ोर्ड पार्क' में वह रहता था। अब तो वह भव्य प्राचीन प्रासाद गिरा दिया गया है। यही नहीं वह मारलोट की जागीरों, शेरटोन के समीप की जागीरों, मिलपूल के प्रायः सारे प्रदेश और ऐवल की बहुत-सी मिल्कियत का मालिक था। सचमुच मुझे तो उसकी आधी ज़मींदारी के भी नाम याद नहीं रहे। .खैर, अब जब उसे मरे-खपे इतने वर्ष बीत गए, तो उसकी चिंता भी क्या है? यहाँ तक सुनने में आया है कि वह जब कोई ज़मीन-जायदाद खरीदता, तो उसके एक-एक एकड़ में अपने दोनों पैरों से बिना घूमे और ज़मीन के एक-एक चप्पे को अपनी कुदाली से खुद-खुदाये दाम नहीं चुकाता। उसकी जागीर के विस्तार को देखते हुए यह काम सचमुच बहुत दुःसाध्य था।

जिस समय की बात मैं कह रहा हूँ, उस समय वह अस्सी वर्ष का बुड्ढा था। बेटा मर चुका था, किन्तु उसके दो पोते थे और उसी के नाम-राशि बड़े पोते के घर बालक पैदा होने वाला था। ठीक उन्हीं दिनों दादा को बीमारी ने धर दबाया। बुढ़ापे के कारण मौत सम्मुख दिखाई दी। दानपत्र में वृद्ध ने अपनी समस्त सम्पत्ति अपने बड़े पोते और उसके पुत्र, उनके बाद अपने छोटे पोते और उसके पुत्र और उनके भी बाद अपने दूर के रिश्तेदारों के नाम लिख दी थी, जिनका उल्लेख करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है।

जिस समय टिमोथी पेट्रिक रोग-ग्रस्त पड़ा था, उसके बड़े पोते की बहू ऐनेटा ने पुत्र प्रसव किया, उसके पति टिमोथी ने परिकल्पना-पूरित परिवार में जन्म लिया था; किन्तु वह स्वयं विविध युक्तियों से परे रहता। पेट्रिक-परिवार में एक वही ऐसा था जिसका हृदय ऐसी भावुकता से विचलित होजाता जिनका सम्पर्क जीवन के उच्चोद्देश से नहीं होता, और इसी कारण से उसका विवाह भी बड़े घराने में नहीं हो पाया। सुना जाता है कि उसकी पत्नी एक साधारण परिवार की कन्या थी। कन्या का पिता देहात के व्यवसायी-समाज का व्यक्ति था। किन्तु वह थी सुन्दरी सब प्रकार से, और उसके पति ने उसे देखकर, प्रेम कर, बुद्धि-हीनता के प्रवाह में बहकर, अल्पकालिक परिचय के बाद ही, उसके हृदय के इतिहास का अध्ययन किए बिना ही, उससे विवाह कर लिया था। अभी तक तो अपने चुनाव के लिए कभी दुखित होने का कारण उसके सामने उपस्थित नहीं हुआ। प्रसव के पश्चात् पत्नी के स्वस्थ होने के लिए वह चिंतित हो रहा था।

भय की तो कोई आशंका नहीं रह गई थी। ज़च्चा और बच्चा दोनों की अवस्था ठीक सुधर रही थी। अकस्मात् हालत बदल गई और पत्नी का स्वास्थ्य बुरी तरह गिरने लगा। उसके जीवन की आशा नहीं रही। अन्तकाल को सम्मुख उपस्थित देखकर ऐनेटा ने अपने पति को बुला भेजा। उसके झटपट आजाने पर एकांत देखकर पहले उसने उससे धर्म-पूर्वक वचन ले लिया कि यदि भगवान् उसे उठा ले, तो वह बालक की हर हालत में पूरी देख-रेख रखेगा। बिना किसी संकोच के उसने यह वचन दे दिया। तत्पश्चात्, कुछ हिचकिचाहट के बाद उसने बताया कि

एक असत्य बात के भार को आत्मा पर लादकर, एक भयंकर वञ्चकता से जीवन को कलुषित करके वह सुख से नहीं मर सकेगी। अब उसने बालक के पैत्रिक सम्बन्ध की ऐसी बात सुनाई, जिसका उसने अनुमान भी नहीं किया था।

टिमोथी पेट्रिक था तो ऐसा व्यक्ति, जिस पर साधारण-सी बात का भी प्रभाव शीघ्र पड़ता। किन्तु वह मन की घबराहट को मुख पर लक्षित नहीं होने देता। अपने जीवन की इस विषम घड़ी में उसने इस घटना को वीरता-पूर्वक सह लिया। उसी रात को उसकी पत्नी का देहान्त हो गया। उसके मृत शरीर को छोड़कर, श्मशान-यात्रा के पहले वह दौड़कर अपने रोग-ग्रस्त दादा के पास पहुँचा और उसने बालक के जन्म, पत्नी के आत्म-निवेदन, उसके अवसान आदि से दादा को परिचित कर दिया और उसके पाँव पकड़कर वह इस अंत समय में वसीयतनामे को बदल कर नए बालक को अधिकार से वंचित कर देने के लिए अनुनय करने लगा। वृद्ध टिमोथी ने भी घटना-क्रम को अपने पौत्र ही की दृष्टि से देखा। न्याययुक्त उत्तराधिकार-प्राप्ति के मार्ग में उपस्थित किसी बाधा को दूर करने में उसे आग्रह करवाने की आवश्यकता मालूम नहीं दी। उसने दूसरा दान-पत्र बना दिया, जिसके अनुसार उत्तराधिकार आजीवन उसके पौत्र टिमोथी और इसके बाद होनेवाले उसके पुत्रों तक ही सीमित कर दिया गया। उनके बाद बारी थी एडवर्ड और एडवर्ड के उत्तराधिकारियों की। इस प्रकार वही नवजात शिशु, जो सब की आशाओं का केन्द्र हो रहा था, उस विशाल धन-सम्पत्ति के उत्तराधिकार से वंचित कर दिया गया।

वृद्ध इसके बाद और थोड़े दिन ही जीवित रहा। ऊपर लिखी घटना का उसके स्वास्थ्य पर गहरा असर पड़ा था। अपने पूर्वजों की भाँति वह भी पास-पड़ोस के लोगों में नाम कमा गया। पत्नी और दादा के अन्तिम संस्कार की समाप्ति के पश्चात् टिमोथी अपनी योग्यता के अनुसार नैमित्तिक जीवन बिताने में संलग्न होगया। उसके मन में इस बात का संतोष था कि अपनी कार्य-कुशलता से उसने एक ऐसी बात को रोक दिया है जिसके परिणाम-स्वरूप उसे उस भयानक गार्हस्थ-वञ्चकता का सामना करना पड़ता। मन के मुताबिक स्त्री मिल जाने पर दूसरा विवाह करने का भी उसने मन ही मन निश्चय कर लिया।

किन्तु, मनुष्य सदा अपने आप को भी नहीं जान पाता है। टिमोथी पेट्रिक की कटु मनोदशा धीरे-धीरे स्त्री-समाज के प्रति घृणा और अविश्वास में परिणत होती गई। सौन्दर्य की अनेक प्रतिमायें उसकी दृष्टि में पड़ीं, तो भी विवाह के लक्षण नहीं दिखाई दिए। एक बार पुनः पति-पद पर आरूढ़ होने में वह भय खाता था। प्रत्येक रमणी-वेश के पीछे उसे जाल बिछा हुआ दिखाई देता और भावी उत्तराधिकारियों के चारोंओर निराशा का दलदल! "एक बार क्या हुआ, सभी बातें बड़ी निर्मल मालूम देती थीं, फिर भी वैसा ही हो तो?" वह अपने-आप सोचता, "अब और मैं मेरी इज्ज़त को संकट में नहीं डालूँगा।" उसने विवाह करने से मुँह मोड़ लिया। अपने बाद स्टेपल फोर्ड की मालिकी के लिए अपने खान्दानी वारिस की भी आशा छोड़ दी।

टिमोथी उस अभागे नवजात शिशु की बहुत ही कम देख-भाल करता। हाँ, वचन निभाने के लिए वह उसे अपने घर तो ले आया था।

यदा-कदा अपने वचन का स्मरण होने पर बालक पर एक नज़र डाल लेता और उसे राजी-खुशी देखकर दो-चार ख़ास सूचनायें देकर अपने एकान्त-कार्य में संलग्न हो जाता। इस प्रकार दो-तीन वर्ष तक वह और बालक दोनों स्टेपल फोर्ड प्रासाद में निवास करते रहे। एक दिन उद्यान में घूमते समय भूल से उसकी सुँघनी की डिबिया बेंच पर छूट गई। लौटकर उसने देखा—बालक वहाँ खड़ा है, धाय की आँख बचाकर वह वहाँ चला आया है, छींक पर छींक आने पर भी वह उस डिबिया से खिलवाड़ कर रहा है। दुःख पाकर भी उसी खिलवाड़ में लगे रहने के बालक के आग्रह को देखकर उसका स्नेह-विहीन हृदय भी उधर आकर्षित होगया। बालक का मुखड़ा निहार और उसमें अपनी पत्नी का प्रतिरूप देखकर, यद्यपि उसे उसमें अपना रूप नहीं दिखाई दिया, उस बालपन—विशेषतः सम्मुख उपस्थित के समान घृणित और परित्यक्त बालपन—के प्रति करुण विचारों में लीन होगया।

उसी घड़ी से, अपने उन मनोभावों को दबाने का यत्न करने पर भी मनुष्य की किसी न किसी को प्यार करने की आवश्यक भावना ने उसकी नामधारिणी बुद्धि पर विजय प्राप्त कर ली। बालक रूपर्ट के प्रति उसके मन में कोमल चिंता के भाव जाग्रत होगए। शिशु का यह नामकरण उसकी मरणासन्न माता ही ने कर दिया था। उसकी इच्छा के अनुकूल उसका बप्तिस्मा उसी के कमरे में कर दिया गया था। उसके पति को इस नाम में उस समय तक कोई विशेषता नहीं दिखाई दी, जब तक कि उसे एक दिन सहसा मालूम हुआ कि यही नाम साउथवेस्टरलैंड के ड्यूक के बेटे क्रिस्मिंस्टर के मार्क्विस का है, जिसके प्रति

विवाह के पूर्व ऐनेटा का मन अत्यधिक आकर्षित था। अपनी पत्नी के अन्त समय के उस कथन में से कुछ टूटे-फूटे शब्द याद करके उसने जान लिया कि बालक रुपर्ट का इतिहास सुनाते समय पत्नी ने इसी व्यक्ति का नामोल्लेख किया था।

बालक के साथ वह घण्टों तक मौन धारे बैठा रहता; क्योंकि वह तो ऐसा था कि अवसर होने पर मुँह नहीं खोल पाता। किन्तु बालक अपने चञ्चल स्वभाव के कारण तोतली बातें करने के लिए सदा तत्पर रहता। प्रातःकाल का समय इस प्रकार आलस्य में बिताकर पेट्रिक अपने निजी कमरे में जाकर बड़ी-बड़ी प्रतिज्ञायें करता, इधर-उधर घूमता, अपने आपको महा मूढ़ सिद्ध करता और निश्चय करता कि अब फिर कभी उस बालक के पास भी नहीं जायगा। उसका यह मनसूबा ज़्यादा से ज़्यादा एक दिन टिकता। सौभाग्य से ऐसे अनुभव मानव-स्वभाव के लिए नए नहीं हैं; किन्तु ऐसा उदाहरण और नहीं मिलेगा जिसमें आदमी अपने पूर्व-स्वरूप को इस प्रकार भोंदू बना दे।

ज्यों-ज्यों बालक बढ़ता गया, टिमोथी का उसके प्रति स्नेह-भाव भी बढ़ता गया। यहाँ तक कि अंत में उसके जीवन का ध्येय वही रुपर्ट हो गया। टिमोथी पेट्रिक के हृदय के किसी अज्ञात कोने में पारिवारिक उच्चाशायें छिपी हुई थीं, जिनके कारण उसका हृदय उस समय ईर्ष्या से जल उठा जब कि उसके भाई एडवर्ड का विवाह माननीया हेरियट माउण्ट-क्लेयर, इसी नाम और पदवी के द्वितीय वाइकाउण्ट की पुत्री के साथ निश्चित होगया; किन्तु, जैसा ऊपर कह आया हूँ, उच्च समाज के साथ हेल-मेल बढ़ाने में रुपर्ट के पैतृक-सम्बन्ध की अड़चन याद आजाने पर वे

ईर्ष्यालु मनोभाव वहीं शान्त हो जाते। वास्तव में, अपने भाई के उस उच्च कुल में विवाह होने के बाद वह इस बात पर अधिक विचार करने लगा और पहले की अपेक्षा अधिक संतुष्ट रहने लगा। एक साधारण ग्रामीण की कन्या होने पर भी उसकी पत्नी ने उच्च अभिरुचि का परिचय दिया था, इस बात के सोचने पर उसके मन में उसकी एक मृदुल स्मृति जाग उठी और उस बालक को प्यार करने में अपनी कमज़ोरी का कारण उसने मान लिया—ऐसा मानने के लिए तो वह आतुर ही हो रहा था—बालक का नाम ही से नहीं, पर प्रकृति से इंग्लेंड के एक उच्च कुल का प्रतिनिधि होना।

"उसकी स्वाभाविक प्रेरणा थी तो उच्च ही" साभिमान वह स्वयं अपने आप कहता,—"उस राजवंश के उत्तराधिकारी की ओर अपनी रुचि को आकृष्ट करना—वास्तव में बुद्धिमानी का काम था। मेरे अथवा मेरे कुल वालों की भाँति यदि इस बालक में नीच रक्त प्रवाहित होता, तो उसे यह दुर्व्यवहार थोड़े ही सहना पड़ता, जो मैंने उसके और उस के बालक के प्रति किया है। चाहे जो हो, अब इन कटु अनुभवों से उस की आत्मा दूर—बहुत दूर पहुँच गई है। ऐनेद्रा जिस व्यक्तिको प्यार करती थी, वह कुलीन था; और मेरा यह बालक भी मेरी अपेक्षा कुलीन है।"

इसका परिणाम अवश्यम्भावी था, और वह शीघ्र ही सम्मुख उपस्थित हो गया। "अच्छा होता," उसने तर्क किया—"जिस जागीर से मैंने बालक को वञ्चित कर दिया है, उसका वह मालिक होता। कम से कम एक ओर से तो वह असली है ही, और धीरे-धीरे इसी परिवार में घुल-मिल भी जायगा।"

चाहे जितनी त्रुटियाँ हों, पर वह था उन व्यक्तियों में से जो राजा-महाराजाओं के दैवत्व में विश्वास रखते हैं। इस दृष्टि से जितना ही अधिक वह इस बात का विचार करता उसका मन प्रफुल्लित होता जाता कि उसकी पत्नी ने अपने कृत्य से पेट्रिक-परिवार के रक्त को ऊँचा बनाया है। वह सोचता कि उसके अपने कुटुम्बियों में से कितने ही कुरूप, आलसी, क्रूर और दुर्जन हो चुके हैं; और यह बहुत कुछ संभव था कि उनके इन दुर्गुणों में से कुछ इस बालक में भी आजाते और उसे वृद्धावस्था में दुख देते, चिंता से उसके काले बालों को सफ़ेद बना देते। भगवान् जाने यदि वह कुशल माली की भाँति पौधे की जाति और प्रकार को नहीं बदल देती तो वे दुर्गुण किन-किन कष्टों के उत्पादक होते? अंत में वह बुद्धि का धनी मनुष्य अपने घुटनों पर झुककर प्रति रात और प्रातःकाल भगवान् को धन्यवाद देने लगा कि वह बालक ऐसे नीच कुलोत्पन्न पिता की संतान नहीं है।

पेट्रिक-परिवार का यह निजी गुण समझिए अथवा अवगुण, जिसके अनुसार टिमोथी के मन में यह विचार धीरे-धीरे वृद्धि पाने लगा। पेट्रिक-परिवार बड़प्पन का भूखा था। ज़मीन-जायदाद के संबंध में वृद्ध टिमोथी पेट्रिक के मनोभाव वैसे ही थे जैसे ईज़ाक वाल्टन के मछली के बारे में। हाँ, उसके उत्तराधिकारियों में वे मनोभाव कम मात्रा में थे। एक ही साथ पीड़न और प्रेम, तर्क की दृष्टि से अनोखा काम दिखाई देता है, किन्तु कार्य-रूप में वह संभव है, इन उदाहरणों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है।

इसी कारण, एक दिन टिमोथी के भाई एडवर्ड ने अनादर-पूर्वक

कहा कि टिमोथी का बेटा है तो भला चंगा, पर उसके भाग्य में दुकानदारी अथवा नौकरी-चाकरी के सिवा क्या लिखा है? भगवान् ने दिया तो उसके बेटे की बात ही दूसरी होगी। उसकी माँ होगी माननीया Harriet. दूसरी ओर, इच्छा हो तो उस कथन का विरोध करने की अपनी शक्ति का अनुभव करके टिमोथी विजय के उल्लास का अनुभव करने लगा।

इस नए दृष्टि-कोण से देखकर वह उस बालक में इतना अधिक पनपने लग गया। वह अब साउथवेस्टरलैंड के सरदारों के उस सुप्रसिद्ध घराने का—भाग्यशाली चार्ल्स की राज्य-प्राप्ति से इस समय तक का—इतिहास बड़े ध्यान से पढ़ने लगा। उनके शाही गुण, मौरूसी ज़मीन-जायदाद, विवाह-शादी और मकानात की बातें, विशेषतः उनकी राजनैतिक और सैनिक सफलताओं की बातें—जो वास्तव में महान् थीं—और कला व विद्या में उनके सत्कृत्यों की बातें—जिनके अनादर का कोई कारण नहीं था—उसने कंठस्थ कर ली थीं। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक अवयवों के निर्माण का निरीक्षण करता है, उसी प्रकार वह उस परिवार के लोगों के चित्रों को देखकर रुपर्ट की मुखाकृति की परीक्षा करने लगा—उन ऐतिहासिक छाया और रेखाओं का अनुभव करने के लिए जिनका चित्रण सुप्रसिद्ध चित्रकारों ने किया है।

जब वह बालक बाल्यावस्था की आकर्षक उम्र को प्राप्त हुआ, और उसके मधुर हास्य की स्वर-लहरियाँ स्टेपलफ़ोर्ड भवन के एक छोर से दूसरे छोर तक गूँजने लगीं, तब टिमोथी पेट्रिक के मन में अपनी उस भारी भूल के दुःख का पार नहीं रहा। सारी दुनिया में एक रुपर्ट ही

ऐसा था, जिसे वह अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी देखना चाहता था, और वही उसके जन्मकाल के समय उसकी दुःखद करतूत के कारण उससे वञ्चित कर दिया गया है। और अब जब कि उसका विचार फिर से विवाह करने का नहीं है, सारी सम्पत्ति और वे विशाल प्रासाद सबके सब चले जायँगे उसके भाई और भाई के बाल-बच्चों के अधिकार में, जिनसे उसका कोई सरोकार नहीं होगा, जिनके पैतृक उच्चता के गर्व से उसके रुपर्ट को कोई मतलब नहीं होगा।

दादा का पहला वसीयतनामा ही उसने पड़ा रहने दिया होता तो ?

उसकी विचार-धारा उन दानपत्रों की ओर प्रवाहित हुई। दोनों दान-पत्र विद्यमान थे। पहला मन्सूख़ किया हुआ दान-पत्र था उसी के पास। प्रत्येक रात को, जब सब नौकर सो जाते, और घर के सब द्वार और ताले भीषण-नाद से बन्द कर दिए जाते, उस समय वह उस पहले दान-पत्र को लेकर बड़े ध्यान से देखता और चाहता कि यह पहला न होकर दूसरा दानपत्र होता।

अन्त में, वह संकट-काल आ उपस्थित हुआ। एक रात्रि को, बालक की सुखद संगति के पश्चात् उसने अनुभव किया कि अपने प्रिय रुपर्ट को उत्तराधिकार से वंचित करना तो असह्य होगा। पहले दान-पत्र की तारीख को पन्द्रह दिन आगे की तारीख में बदलकर वह फौजदारी का काम कर बैठा। ऐसा करने से पहला दान-पत्र उस दूसरे दान-पत्र के बाद का मालूम देने लगा, जो इससे पहले मंजूर किया जा चुका था। अब उसने साहस-पूर्वक पहले दान-पत्र को बाद का दान-पत्र घोषित कर दिया।

उसके भाई एडवर्ड ने भी उसे स्वीकार कर लिया। क्योंकि उसमें ऐसी कोई विरोध की बात तो थी नहीं ; प्रत्युत उसमें तो वृद्ध टिमोथी की सम्पत्ति के विभाजन का और भी अधिक उचित उल्लेख था। कारण का पता न होने से उस पहले दानपत्र में बँटवारे के उस अनोखे बंधन से तो उसे आश्चर्य हुआ था। उस स्वीकृत दान-पत्र के स्थान में इस दान-पत्र को स्वीकार कराने में दोनों भाइयों का सहयोग रहा। सभी बातें पूर्ववत् होती रहीं। कोई विशेष अन्तर तो था नहीं, सिवाय भविष्य की उस बात के, जो अभी सन्निकट नहीं थी।

समय बीतता गया। अभी रुपर्ट में उन चिर-वांछित ऐतिहासिक गुणों का प्रतिबिम्ब नहीं दिखाई दिया, जो उस उच्च घराने की राजकीय योग्यताओं के कारण आ जाना चाहिए था। एक दिन सहसा टिमोथी पैट्रिक की भेंट बडमाउण्ट के एक सुप्रसिद्ध डॉक्टर से हुई, जो श्रीमती पैट्रिक के परिवार का पुराना परिचित और सलाहकार रहा था। विवाह के उपरान्त ऐनेटा के स्टेपलफ़ोर्ड में आ जाने के कारण यद्यपि वह उससे नहीं मिल पाया था, पर वहाँ का डॉक्टर उसी का एक पड़ोसी था। बडमाउण्ट के डॉक्टर की विद्वत्ता भरी बातों को सुनकर वह बहुत प्रभावान्वित हुआ, और वह परिचय प्रगाढ़ होगया। बातें करते-करते डॉक्टर ने ऐनेटा की माता और नानी के एक ऐसे रोग का उल्लेख किया, जिससे वे सपने की बातों को भी सच मान बैठती थीं। उसने टिमोथी से भी नम्रता से पूछा कि अपनी पत्नी के जीवन-काल में उसमें भी उसने ऐसा रोग देखा था क्या? डॉक्टर ने यह भी बताया कि बाल-काल में ऐनेटा की परीक्षा करते समय उसे इस रोग के प्रारंभिक लक्षण उसमें भी

दिखाई दिये थे। एक रहस्य के बाद दूसरे रहस्य का उद्घाटन होता गया। अन्त में आश्चर्य-चकित टिमोथी पेट्रिक के मन को विश्वास हो गया कि ऐनेटा का वह आत्म-निवेदन भ्रम-पूर्ण ही था।

"क्यों उदास क्यों होगये ?" ठहरकर डॉक्टर ने कहा।

"हाँ, कुछ तो...। यह तो बिना विचारी-सी बात होगई ?" टिमोथी ने आह भरकर कहा।

किन्तु इस बात की संभावना पर उसे विश्वास नहीं हो रहा था। और यह सोचकर कि डॉक्टर से खुले दिल से बात करना ठीक होगा, उसने सारी कथा उसे कह सुनाई, जिसे उसने अब तक अपने मरणासन्न दादा के अतिरिक्त और किसी प्राणी के सम्मुख प्रकट नहीं किया था। वह डॉक्टर से यह जानकर अचरज में पड़ गया कि वैसी शारीरिक दुर्बलता में ऐनेटा के पूर्व लक्षणों से ठीक ऐसे ही प्रलाप की संभावना वह समझता था।

पेट्रिक ने और भी जाँच-पड़ताल की, और अपने प्रयत्न के फल-स्वरूप उसे मालूम हुआ कि समय और स्थान की तुलना करने पर उसकी ग़रीब पत्नी का आत्म-निवेदन सर्वथा आधार-रहित सिद्ध होता है। युवक मार्क्विस कोमल मनोवृत्ति वाला सदाचारी और कुशाग्रबुद्धि सज्जन पुरुष है। ऐनेटा के विवाह के एक वर्ष पूर्व ही वह विदेश चला गया था और अभी तक वहाँ से लौटा नहीं है। उस युवती का उसके प्रति प्रेम भाव एक आदर्श सपने के सिवा और क्या हो सकता था ?

टिमोथी घर आया। बालक दौड़कर उसकी ओर आया; असंतोष का एक अद्भुत दुःखद भाव उसके मन में छा गया। बस, उसके नाम

और जायदाद के उत्तराधिकारी की नसों में वही नीच रक्त प्रवाहित हो रहा है। उच्च वंश के रक्त से वह वञ्चित रह गया। रूपर्ट था उसी का बेटा; किन्तु वह यह जानकर उदास-सा होगया कि जिस प्रताप और सम्मान की वह आशा रखता था वह अब नहीं रहा। बालक की मुखाकृति में इतिहास और आँखों में प्रभावशाली सदियों का रूप अब उसे दिखाई नहीं देता।

उस दिन से पुत्र के प्रति उसका प्रेमभाव घटने लगा; और अब वह अपने कठोर हृदय से उसमें पेट्रिक-परिवार के रूप-रंग के क्रम-विकास का स्पष्ट अवलोकन करने लगा। साउथवेल्टरलैंड के सरदारों की-सी सुन्दर नुकीली नासिका के स्थान में अब उसके चेहरे पर बूढ़े टिमोथी का-सा चमड़ा और चौड़ी नाक दिखाई देने लगी। उन नील-वर्ण नेत्रों में अब सुविख्यात राजनीतिज्ञ-परिवार का रूप नहीं रह गया था। अब तो नेत्रों के गोल में दिखाई देती थी उसीके एक चाचा की सदोष आकृति। और मुख की उन रेखाओं के स्थान में, जो पार्लियामेंट के श्रोताओं को अपने उन भाषणों के समय चकित कर देती थी जो प्रत्येक अच्छे पुस्तकालय में सुन्दर जिल्दों में सुरक्षित हैं, अब दिखाई देने लगा अपने उसी चाचा का-सा लटका हुआ होंठ, जो दुर्भाग्यवश किसी सज्जन के दान-पत्र पर हस्ताक्षर के मामले में आजन्म-निर्वासन की हवा खाने के लिए भेज दिया गया था।

जिसे वह भूल जाना चाहता था, उसी बूढ़े दुरात्मा चाचा की प्रतिमूर्त्ति इस बेटे के लिए वह भी ऐसा ही पाप कर बैठा है। बालक का नाम भी सर्वथा वञ्चकता-पूर्ण ही रहा। कारण, उस नाम के पीछे उच्च-

कुल का जो बल और तेज है उसे वह कभी प्राप्त नहीं कर सकेगा। बेटे का बाप होने का तो संतोष तो उसके मन में जाग्रत होता, पर वह यह चिन्ता किए बिना नहीं रह सकता—"पुत्र एक साथ अपना भी और किसी दूसरे का भी क्यों नहीं हो सकता?"

कुछ समय पश्चात् ही मार्क्विस स्टेपलफ़ोर्ड के समीप आकर रहा, और टिमोथी पेट्रिक ने उससे भेंट भी की। उसकी कुलीन मुख-श्री को वह देखता रह गया। दूसरे दिन, जब पेट्रिक अपनी अध्ययन-शाला में था, किसी ने आकर द्वार खटखटाया।

"कौन है?"

"रूपर्ट।"

"बना है रूपर्ट! धोखेबाज़ कहीं का! सीधा-सादा पेट्रिक तो नहीं बनता!" उसका पिता नाराज़ होकर कह उठा—"कल मैं मार्क्विस से मिला था, उनका-सा स्वर तेरा क्यों नहीं है?" लड़के को भीतर आते देखकर उसने कहा, "उसकी-सी तेरी दृष्टि क्यों नहीं है? और वह सदियों के प्रभुत्व का प्रताप भी क्यों नहीं है?"

"क्यों? मेरा और उसका सम्बन्ध ही कौन-सा? आप मुझसे ऐसी आशा ही क्यों करते हैं?"

"दुत्! नहीं है तो होना चाहिए था!" पिता ने गुर्राकर कहा।

—o—

ग्रेट ब्रिटेन : : : ऑस्कर वाइल्ड

स्वार्थी दानव

प्रतिदिन शाम को पाठशाला से लौटते समय बालक-गण उस दानव के बाग में जाते और खेला करते।

वह एक बड़ा-सा सुन्दर बाग था। कोमल हरी दूब के गलीचे उसमें बिछे थे। दूब के आस-पास तारों के समान सुन्दर पुष्प खिले रहते। उस बाग में शफ़तालू के बारह पेड़ थे, जो बसन्त-काल में गुलाबी कलियों से लहलहा उठते और शरद्-ऋतु में फलों से लद जाते। उन वृक्षों पर बैठकर पक्षी इतना सुन्दर गान करते कि बालक भी अपना खेल छोड़कर मुग्ध होकर उसे सुनते। "ओह! हम कितने सुखी हैं—" वे आपस में कहते।

एक दिन दानव लौट आया। सुदूर देश में रहनेवाले अपने एक मित्र के यहाँ वह सात वर्ष रह कर आया था। उसे अपने साथी को जो कुछ कहना था सात वर्ष ही में कह दिया। क्योंकि उनका वार्त्तालाप परिमित

था। उस अवधि के बाद उसने अपने किले में लौट आने का निश्चय किया। जब वह लौटा, तो उसने अपने बाग में बालक-समुदाय को खेलते देखा।

"तुम लोग यहाँ क्या कर रहे हो?" उसने चिल्लाकर कर्कश स्वर से कहा। बेचारे बालक भाग गये।

"मेरा बाग मेरा है" दानव ने कहा—"सबको जान लेना चाहिए कि मेरे बगीचे में मेरे सिवाय कोई पाँव भी नहीं रख सकता।" उसने बाग के चारोंओर एक बड़ी दीवार चुनवा दी और द्वार पर एक सूचना लगवादी—

प्रवेश-निषेध

वह एक स्वार्थी दानव था।

बेचारे बालकों के लिए खेल की और जगह नहीं रही। वे सड़क पर ही खेल लेते, पर सड़क पर धूल थी, नुकीले पत्थर थे, उन्हें वह जगह पसन्द नहीं थी। पढ़ाई हो जाने के बाद वे बगीचे की दीवार के चारों-ओर चक्कर लगाते और उस सुन्दर बगीचे की तारीफ़ करते। "ओह, हम इसमें कितने सुखी थे!" वे आपस में कहते।

बसन्त का आगमन हुआ। सारा देश नन्हीं-नन्हीं कलियों और छोटे-छोटे पत्तियों से सुशोभित हो उठा। उस स्वार्थी दानव के बगीचे में अभी तक शीत-काल ही बना हुआ था। उसके बाग में पक्षी न बसेरा करते, न नाचते गाते। पौधे भी वहाँ फलना-फूलना भूल गये। एक दिन

एक सुन्दर-से फूल ने घास में से अपना मुँह दिखाया था; किन्तु प्रवेश-निषेध की उस सूचना को देखकर उसे बालकों के लिए इतना रञ्ज हुआ कि वह उसी समय धरती की गोद में समा गया। फिर कभी बाहर नहीं आया। उस बाग़ पर किसी की मेहरबानी थी, तो बरफ़ और कुहरे की। "बसन्त तो इस बाग़ को अछूता ही छोड़ गया है," उन्होंने कहा—"चलो वर्ष भर हम इसमें निर्वाह करेंगे।" बरफ़ ने अपनी सफ़ेद चादर से बग़ीचे की हरियाली को छा लिया। कुहरे ने बड़े वृक्षों पर सफ़ेदी चढ़ा दी। उन्होंने उत्तरीय हवा को आमंत्रित किया और वह भी उनके साथ आकर रहने लगी। दिन-रात ठंडी हवा के झोंके उस बग़ीचे में लहरें मारते। "यह तो बड़े आनन्द की जगह है," उन्होंने आपस में कहा—"यहाँ तो ओले भी आ जायँ, तो अच्छा।" ओले भी पड़ने लगे। प्रतिदिन तीन घण्टे दानव के उस दुर्ग पर ओले बरसते। क़िले की छत टूटने लगी। बगीचा तो सारा तबाह होगया।

"कुछ समझ में नहीं आता, बसन्त अभी तक क्यों नहीं आया?" अपने क़िले की एक खिड़की में खड़े होकर, उस जमे हुए सफ़ेद बग़ीचे को देखकर, स्वार्थी दानव ने कहा—"अब तो ऋतु में परिवर्त्तन होना ही चाहिए।"

किन्तु, ऋतु में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ। बसंत का आगमन ही नहीं हुआ। शरद् का आगमन हुआ। उसने हरएक बग़ीचे को सोने के रंग से रंग दिया; किन्तु, दानव के बग़ीचे को अपने सौन्दर्य का एक कण भी नहीं दिया। "यह तो स्वार्थी दानव है"—उसने कहा। दानव के बग़ीचे में शीत-काल स्थायी हो गया। वृक्षों पर, पौधों पर, उत्तर की हवा, कुहरा, ओले, बरफ़ सदा नाचते रहते।

एक दिन सवेरे अपने बिछौने में पड़े-पड़े दानव को एक मधुर संगीत सुनाई दिया। संगीत इतना कर्ण-मधुर था कि उसने समझा—राजा का कोई गवैया पास से जा रहा होगा। पर, वहाँ और कोई नहीं, खिड़की के बाहर एक छोटी-सी लिनेट चिड़िया बोल रही थी। दानव को तो पक्षियों का संगीत सुने एक ज़माना गुज़र गया था। इसलिए उसे उस दिन वह संगीत संसार में सबसे अधिक मधुर मालूम दिया। उसी क्षण से आँधी पानी रुक गया। ओले गिरने बन्द हो गये। सुगंध से लदे हुए हवा के एक हलके झोंके ने उसे आनन्दित कर दिया। "मालूम होता है, वसंत का आगमन होगया।" दानव ने कहा, और बिछौने से उछलकर उसने बाहर की ओर देखा।

उसने क्या देखा?

उसे बहुत ही अद्भुत दृश्य दिखाई दिया। दीवाल के एक छोटे छेद में से बालक भीतर घुस आए हैं, और वे वृक्षों की शाखाओं पर बैठे हैं। जो पेड़ उसे दिखाई दिया, उसी पर उसने एक बालक बैठा देखा। उन बालकों को पाकर वे वृक्ष इतने आनन्दित हुए कि उनका हृदय खिल उठा। कोमल पुष्प-राशि से सजाकर वृक्षों ने अपनी शाखाओं को बालकों पर पसार दिया। पक्षी-गण इधर-उधर फुदककर चहचहा रहे थे और फूल हरे-भरे घास में अपना सुन्दर चेहरा बाहर निकालकर हँस रहे थे। यह एक बहुत ही नयनाभिराम दृश्य था। बाग़ के केवल दूर के एक कोने में अभी तक जाड़ा था और वहाँ एक छोटा-सा बालक खड़ा था। वह इतना छोटा था कि वृक्ष की डालियों तक नहीं पहुँच सकता था। बालक दुःख से डाँवाडोल हो रहा था और चिल्ला रहा था।

उस बेचारे पेड़ पर भी अभी तक बरफ़ जमी हुई थी और उत्तरी हवा उसे झकझोर रही थी। "चढ़ जाओ, बालक! चढ़ जाओ—" वृक्ष ने कहा, और अपनी डालियाँ उसकी ओर झुका दीं। किन्तु, बालक इतना ओछा था कि उन पर नहीं चढ़ सका।

यह देखकर दानव का भी हृदय पसीज गया। "मैं भी कितना स्वार्थी हूँ—उसने कहा। "अब मुझे मालूम हुआ, मेरे बाग़ से बसंत क्यों निर्वासित होगया। मैं उस नन्हे बालक को वृक्ष की सबसे ऊपर की शाखा पर बैठा दूँगा। इस दीवाल को तुड़वादूँगा और चिरकाल के लिए मेरा यह बाग़ बालकों के खेलने के काम आवेगा।" उसे अपने पूर्व कृत्यों का बहुत ही पश्चात्ताप हुआ।

नीचे उतरकर, आहिस्ते से दरवाज़ा खोलकर वह उद्यान में पहुँचा। किन्तु, उसे देखते ही बच्चे डर के मारे भाग गये। बग़ीचे में फिर शीत ने अधिकार जमा लिया। एक वह छोटा बालक वहीं खड़ा रहा। उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे। वह दानव को नहीं देख पाया। दबे पाँव उसके पास पहुँचकर दानव ने उसे उठाकर वृक्ष पर बैठा दिया। वृक्ष फूल-पत्तों से लहलहा उठा। पक्षी आकर उस पर गान करने लगे। उस बालक ने अपने दोनों नन्हे-नन्हे हाथ बढ़ाकर दानव के गले में डाल दिये और उसे चूम लिया। दूसरे बालक भी यह देखकर, कि दानव अब वह दुष्ट दानव नहीं रहा है, दौड़कर बग़ीचे में आगए। उन बालकों के साथ ही बसंत लौट आया। "बच्चो! अब यह बाग़ तुम्हारा है, खूब खेलो-कूदो।" उसने बग़ीचे की दीवाल तुड़वा डाली और जब दोप-

हर को लोग बाज़ार जा रहे थे, तो उन्होंने देखा-दानव बालकों के साथ उस अनुपम बाग़ में खेल रहा है।

दिन भर वहाँ खेल होते रहे और शाम को वे दानव से विदा होने के लिए एकत्रित हुए।

"तुम्हारा वह छोटा साथी कहाँ है। जिसे मैंने पेड़ पर बैठाया था?" दानव उसे बहुत प्यार करने लगा था; क्योंकि उसके जीवन में उसीने उसे प्यार से चूमा था।

"हमें क्या मालूम।" बच्चों ने कहा—"वह तो चला गया दीखता है।"

"उसे कहना, कल भी यहाँ ज़रूर आये"—दानव ने कहा। किन्तु, बालकों ने बताया कि वे तो यह भी नहीं जानते कि वह कौन था? और कहाँ रहता है? इसके पहले उन्होंने उसे कभी नहीं देखा था। दानव यह बात सुनकर उदास हो गया।

रोज़ शाम को पाठशाला से लौटते समय बालक आकर दानव के साथ खेलते। किन्तु, वह बालक, जिसे दानव इतना प्यार करने लगा था, फिर कभी दिखाई नहीं दिया। वह सभी बालकों को प्यार करता था, तो भी उस सुकुमार दोस्त की उसे सदा याद बनी रहती। वह बहुधा उसकी प्रशंसा करता और कहता—"मैं उसे देख पाता तो कितना प्रसन्न होता।"

कई सौ वर्ष बीत गए। दानव वृद्ध और अशक्त होने लगा। वह चल फिर नहीं सकता था। बच्चों के बीच में एक आराम-कुर्सी पर बैठकर वह उनका खेल देखता और अपने बाग़ के सौन्दर्य पर मुग्ध

रहता। "मेरे बाग़ में एक से एक बढ़कर फूल हैं;" वह कहता—"पर सबसे सुन्दर फूल हैं ये बालक।"

एक दिन शीतकाल के प्रातःकाल उसने बाहर की ओर देखा। अब उसे शीत से घृणा नहीं थी; क्योंकि वह जान गया था कि यह तो बसंत की निद्रा है और इस समय फूल-पत्ते आराम कर रहे हैं।

सहसा आश्चर्य से उसने अपनी आँखें मलीं और वह सामने की ओर एकटक देखने लगा। सचमुच वह अजीब दृश्य था। बाग़ के एक दूर के कोने में सुन्दर-सुन्दर सफ़ेद कलियों से आच्छादित एक वृक्ष था। उसकी डालियाँ सोने की थीं और उनमें चाँदी के फल लगे हुए थे, और उसके नीचे खड़ा था वही बालक, जिसको वह हृदय से प्यार करता था।

आनन्द से पागल होकर दानव नीचे की ओर बाग़ में भागा। दूब के मैदान को पारकर वह उस बालक के पास पहुँचा। उसके निकट पहुँचते ही क्रोध से उसका चेहरा लाल होगया और उसने गरजकर पूछा—"तुम्हें चोट पहुँचाने का किसे दुस्साहस हुआ है?" उस बालक की उन सुकुमार हथेलियों में कीलों के दो निशान थे और वैसे ही दो निशान पाँवों में भी थे।

"नहीं", बालक ने कहा—"ये तो प्रेम के चिह्न हैं।"

"कौन हो तुम बालक?" दानव ने कहा। एक अद्भुत प्रकार की श्रद्धा उसके मन में समा गई और वह उस बालक के चरणों में झुक गया।

बालक मुस्कुराने लगा। बोला—"तुमने मुझे अपने बाग़ में खेलने दिया था। आओ, आज मेरे बाग़ में तुम चलो, वह 'स्वर्ग' है।"

मध्याह्न के समय जब बालकों का समुदाय उद्यान में आया तो उन्होंने देखा—उस वृक्ष के नीचे दानव का मृत शरीर पड़ा है, सुन्दर सुगन्धित पुष्पों से आच्छादित ।

ग्रेट ब्रिटेन : : : एच० जी० वेल्स

कीटाणु

—०—

"और यह है", खुर्दबीन के नीचे काँच की स्लाइड को सरकाकर कीटाणु-विशेषज्ञ ने कहा—"हैजे का मशहूर कीटाणु—समझे? हैज़े का जन्तु!"

उस ज़र्द चेहरे वाले मनुष्य ने खुर्दबीन पर झुककर देखा। उसे ऐसी बात का अभ्यास नहीं था। दूसरी आँख पर अपना दुर्बल हाथ रखकर वह ध्यान से देखने लगा—"मुझे तो बहुत कम दिखाई देता है।" उसने कहा।

"इस पेंच को घुमाओ" विशेषज्ञ ने कहा—"शायद खुर्दबीन तुम्हारे लिए फोकस में नहीं है। एक दूसरे की आँखों में बहुत अन्तर होता है। थोड़ा-सा इधर या उधर घुमाने से ठीक हो जायगा।"

"हाँ, बस, अब ठीक दीखने लगा" दर्शक ने कहा—"देखने की तो ऐसी ख़ास कौन-सी बात है। गुलाबी रङ्ग के कुछ टुकड़ों के सिवा और है

ही क्या ? और यही नन्हें-नन्हें कण–कीटाणु मात्र–अगणित होकर सारे शहर को तबाह कर सकते हैं । बड़े अचम्भे की बात है यह ।

कमर सीधी करके स्लाइड को निकालकर उसे खिड़की की ओर करके वह देखने लगा—"यों तो कुछ भी दिखाई नहीं देता ।" आखें गड़ाकर उसने कहा । मन ने कुछ आगा-पीछा किया ।—"क्या ये जीवित हैं ? प्राणघातक हैं ?"

"ओह, ये तो मारकर रङ्ग दिए गए हैं", कीटाणु-विशेषज्ञ ने बताया—"मैं तो चाहता हूँ, पृथ्वी-मण्डल के इन सब कीड़ों को मारकर उनका अंत कर दिया जाय ।"

"मेरा अनुमान है", जरा हँसकर आगन्तुक ने कहा—"इन जन्तुओं को जीवित अवस्था में रखने की तो आपको ज़रूरत ही क्या पड़ती होगी ?"

"कैसे नहीं ? हमें तो बाध्य होकर उन्हें रखना पड़ता है । जैसे, देखो यहाँ—"कमरे के उस ओर जाकर बहुत-सी बन्द नलियों में से एक वह उठा लाया ।—"ये रहे जीते-जागते जन्तु । इसी रोग के सजीव कीटाणु इसमें पाले गये हैं ।" उसका भी मन करता था आगा-पीछा । "और क्या ? यही समझो, हैज़ा इस बोतल में बन्द है ।"

आगतुक के चेहरे पर संतोष का क्षणिक प्रकाश प्रकट हुआ । "यह तो बड़ी भयानक वस्तु है आप के पास", उस छोटी नली को आँखों की राह पीते हुए उसने कहा । कीटाणु-विशेषज्ञ का आगन्तुक के इस रुग्ण हर्ष पर ध्यान गया । उसके एक पुराने दोस्त से परिचय की चिट्ठी लिखा कर अपराह्न में आने वाला यह व्यक्ति आरम्भ ही से दोनों के पारस्परिक

विरोधी स्वभाव के कारण उसे आकृष्ट कर रहा था। काले बाल, भूरी आँखें, चिन्ताशील मुखाकृति और अव्यवस्थित मनोभाव वाले उस दर्शक की इस विषय में अनोखी, किन्तु गहरी रुचि कीटाणु-विशेषज्ञ के सदा के साथी वैज्ञानिक की बलगम-सम्बन्धी प्रक्रिया से सर्वथा विभिन्न थी।

उस नली को वह विचार-शीलता-पूर्वक हाथ में लिए खड़ा था। "हाँ, एक महामारी इसमें कैद है। पानी के नल में इस नलीका को बस तोड़ दो, इन अणुओं को जिन्हें देखने के लिए मारकर रङ्गने और खुर्दबीन की जरूरत पड़ती है जिनमें न बास है न स्वाद–कह दो 'जाओ' अगणित देह धारण करके पानी की टङ्कियों में फैल जाओ, और मृत्यु—भयङ्कर यंत्रणामय मृत्यु—साक्षात यमराज का सर्वान्तक प्रहार—सारे शहर पर होने लगेगा। यंत्र-तत्र-सर्वत्र लोग उसके शिकार होने लगेंगे। कहीं पत्नी से पति का, कहीं माता से पुत्र का, कहीं कर्त्तव्य से कर्त्ता का और कहीं कष्ट से श्रमजीवी का विछोह कर देगा यह। पर पहुँच जायगा जल के प्रत्येक प्रवाह में, गलियों में से रेंगता हुआ। एक यहाँ एक वहाँ जो धक्के में आगया, उसी घर को उबालकर पानी न पीने का दण्ड देता हुआ वह पहुँच जायगा सोडा बनानेवालों की टाँकियोंमें; शाक सब्जी में, बरफ में—सब जगह। घोड़ों की टाँकियों में पिये जाने के लिए वह तैयार मिलेगा और प्रस्तुत रहेगा थके हुए बालकों के लिए सार्वजनिक फव्वारों में। वह मिट्टी में मिल जायगा, सैकड़ों कुओं और झरनों में आशातीत रीति से प्रकट होने के लिए। बस, एक बार उसे पानी के प्रवाह में छोड़ देने भर की देर है। उसे चाहे उसी समय क्यों न पकड़ लो, वह सारी बस्ती को उजाड़ देने का अपना काम कर डालेगा।"

पर सहसा रुक गया। उसे याद आया अधिक शब्द-व्यय हो तो उसका दोष है।

"किन्तु यहाँ तो यह सर्वथा सुरक्षित है, समझे? सर्वथा सुरक्षित।"

उस जीर्णकाय व्यक्ति ने गर्दन हिलाई। उसकी आँखें चमकीं। उसने गला साफ किया। "ये क्रान्तिकारी-दुष्ट, "उसने कहा, "भोंदू हैं, निरे भोंदू—ऐसी चीज़ के होते हुए बम के पीछे माथा मारते हैं! मैं समझता हूँ—

एक हलकी-सी थपकी, अँगुलियों के स्पर्श की थोड़ी आवाज़ द्वार पर सुनाई दी। कीटाणु-विशेषज्ञ ने द्वार खोला। "ज़रा एक मिनट के लिए, प्यारे" उसकी पत्नी ने आहिस्ते से कहा।

जब वह कमरे में लौटकर आया, उस समय वह आगन्तुक अपनी घड़ी की ओ रदेख रहा था। "ओह, मुझे तो पता ही नहीं चला। मैंने तो आपका बहुत वक्त ज़ाया कर दिया" उसने कहा—"चार बजने में बारह मिनट हैं। मुझे साढ़े तीन बजे ही यहाँ से चला जाना चाहिए था। पर आपकी ये चीज़ें भी तो कम आकर्षक नहीं हैं। नहीं, बस, अब और अधिक न ठहरूँगा। मुझे चार बजे दूसरा काम है।"

धन्यवाद देता हुआ वह कमरे के बाहर चला गया। विशेषज्ञ उसे द्वार तक पहुँचा आया, और तब विचार-मग्न होकर धीरे-धीरे कदम उठाता हुआ प्रयोग-शाला में लौट आया। वह मन ही मन आगन्तुक की चाल-ढाल से उसकी जाति-वंश का अनुमान करने लगा—"यह आदमी ट्युटोनिक वंश का तो नहीं था, और न साधारण लेटिन ही। है कोई अधकचरा, मुझे तो ऐसा ही दीखता है। हैज़े के उन जन्तुओं को देखकर

उसने कैसे आँखें फाड़ दी थीं !" एक शङ्कायुत बात उसके ध्यान में आई। भाप-घर से होता हुआ बेंच के पास से वह अपनी लिखने-पढ़ने की मेज़ के पास झटपट पहुँचा। घबड़ाकर अपनी जेब टटोलने लगा, और फिर द्वार की ओर दौड़ पड़ा। "वहाँ बड़े कमरे की मेज पर तो नहीं भूल आया ?" उसने कहा।

"मिनी ?" कमरे में से वह जोर से पुकार उठा।

"हाँ, प्यारे !" दूर से उत्तर मिला।

"मैंने तुमसे अभी बात की, उस समय मेरे हाथ में कुछ था क्या प्यारी !—अभी थोड़ी देर पहले ?"

चुप्पी।

"नहीं, कुछ भी तो नहीं, क्योंकि मुझे याद है—

"ग़जब होगया !" कीटाणु-विशेषज्ञ चिल्ला उठा, और पल भर में सामने द्वार की ओर दौड़कर, सीढ़ियाँ उतरकर नीचे गली में पहुँच गया।

मिनी, दरवाजे को ज़ोर से बंद होते सुनकर, खिड़की की ओर दौड़ पड़ी। नीचे सड़क में एक दुबला-पतला आदमी गाड़ी में बैठ रहा था। विशेषज्ञ नंगे सिर, स्लीपर पहने दौड़ रहा था, और लोगों की ओर अजीब इशारे कर रहा था। पाँव से एक स्लीपर निकल गया, फिर भी वह ठहरा नहीं। "पागल होगया क्या ?" मिनी ने सोचा—"यही उसके विज्ञान की खराबी है।" खिड़की खोलकर वह पुकारने ही वाली थी कि उसे वह दुर्बल-काय व्यक्ति भी वैसो ही मानसिक अव्यवस्था का शिकार हुआ-सा दिखाई दिया। उस व्यक्ति ने विशेषज्ञ की ओर इशारा किया। गाड़ीवान

को कुछ कहा। गाड़ीवान का शरीर काँप उठा। चाबुक उठा। घोड़े के पाँव उठे और एक ही क्षण में गाड़ी और विशेषज्ञ में दौड़ होने लगी, और वे दूर सड़क के छोर पर कोने की ओर दृष्टि से परे होगए।

मिनी एक मिनट तो खिड़की पर झुकी रही। फिर उसने अपना सिर भीतर कर लिया। वह तो आश्चर्य-विमूढ़ होगई थी। "सचमुच उसके दिमाग का कोई पुरजा खराब होगया है" उसने विचार किया—"किन्तु, लंदन में और वह भी इन दिनों नंगे सिर, नंगे पाँव इस प्रकार दौड़ना।" एक अच्छी बात उसे सूझी। उसने अपनी टोपी पहनी, जूते पहिने, कमरे में जाकर पति की टोपी ली और एक हल्का लबादा लिया। झटपट सीढ़ियाँ उतरकर सौभाग्य से उसी समय आती हुई गाड़ी पर सवार होगई। "चलो, सड़क के उस छोर तक और हेवेलाक क्रीसेंट की ओर घूमो। देखना एक आदमी नंगे सिर और नंगे पाँव भागा जा रहा है क्या?"

"नंगे सिर, नंगे पाँव बीबी जो बात बहुत ठीक, भौट्ठीक!" और गाड़ीवान ने चाबुक उठाकर घोड़ों को इस तरह दौड़ा दिया, मानों इस ठिकाने पर उसे रोज़ जाना पड़ता हो।

थोड़ी देर बाद हेव्हर-स्टोक पहाड़ी के समीप गाड़ियों के अड्डे पर खड़े गाड़ीवानों और बेकारों का समुदाय कत्थई रङ्ग का अधमरा घोड़ा जुती हुई गाड़ी को सरपट दौड़ते देखकर अचरज में पड़ गया।

गाड़ी के पास से गुज़रते समय तो वे चुप रहे। पर पीछे वे बोल उठे—"अरे, यह तो है—'एरी' इम्स। क्या हो गया है उसे?" बूढ़े टूटल्स के नाम से मशहूर स्थूल-काय प्राणी बोल उठा।

"अरे वह तो चाबुक पर चाबुक फटकार रहा है।" सराय के छोकरे ने कहा।

"ओ हो" ! बूढ़े गरीब टोमो बाइल्स ने कहा,—"यह देखो, यह आया एक पागल , अभागा। क्यों है न ?"

"यह तो है बूढ़ा जॉर्ज, " बूढ़े टूटल्स ने कहा ! "इसको गाड़ी में कौन है ? तुम तो कहते हो, वह पागल है। हूँ ! अरे वह गाड़ी से बाहर क्यों न निकला पड़ता है। 'एरी 'इम्स का पीछा कर रहे हैं क्या ये ?"

अड्डे पर लोगों की भीड़ में चहल-पहल हो गई। सब ने एक साथ कहा—"बढ़े चलो जॉर्ज !" दौड़ है, दौड़ !" "यह पकड़ा, अभी।" "फटकारो कोड़ा।"

"और वह देखो, वह आई !" सराय के छोकरे ने कहा।

"यह तो खूब रहा !" बूढ़ा टूटल्स बोल उठा—"यह एक आया, और उसी के पीछे यह दूसरा। हेम्पस्टीड के सभी गाड़ीवान कहीं आज पागल तो नहीं हो गए !"

"यह तो है मर्दानी औरत"—सराय के छोकरे ने कहा।

"यह भी उसी का पीछा कर रही है,—" बूढ़े टूटल्स ने कहा।

"उसके हाथ में क्या है ?"

"कपड़ा-लत्ता-सा दीखता है।

"कैसा जानवर है यह। अच्छा, लगाओ बाजी जार्ज पर एक के तीन !" सराय के छोकरे ने कहा—"अब !"

मिनी को नालियों की घड़घड़ाहट के बीच से गुज़रना पड़ा। उसे यह सब पसन्द तो नहीं आया, पर उसे गर्व था कि मैं अपना कर्त्तव्य पालन

कर रही हूँ। इसीलिए हेवरस्टॉक पहाड़ी के नीचे केमडेन टाउन हाई स्ट्रीट की तरफ़ वह उड़ी चली जा रही थी। उसके नेत्र बूढ़े जॉर्ज की हिलती डुलती पीठ पर स्थापित थे। वही तो उसके पति को इस तरह बिना कारण उससे परे खींचे ले जा रहा था।

आगे वाली गाड़ी में वह व्यक्ति कोने में दुबका बैठा था। एक हाथ में वह प्रलयकारी वस्तु जोर से पकड़े हुए था। भय और हर्ष का मिश्रित मनोभाव उसकी मुखाकृति पर स्पष्ट अंकित था। उसे खास भय तो इस बात का था कि काम बनने के पहले ही कहीं वह पकड़ न लिया जाय। किन्तु, उसके पीछे उसके इस पाप की भयंकरता का भय भी उसे सता रहा था। तो भी उसका हर्ष भय से कहीं अधिक था। यह बात पहले कभी किसी क्रान्तिकारी के ध्यान में नहीं आई थी। रेवेचोल, वायलेंट सभी जिनकी कीर्त्ति की वह स्पर्द्धा किया करता था, अब उसे अपने आगे फीके जान पड़ने लगे। बस, पानी के प्रवाह को पा लेना है और उसमें इस नली को तोड़ देना। ओहो, किस खूबी से उसने यह जाल बिछाया है! जाली चिट्ठी से प्रयोगशाला में प्रवेश पाकर कैसी हाथ की सफाई से यह अपूर्व वस्तु उड़ा लाया है! दुनिया को उसे जानना पड़ेगा। उन्हीं लोगों को, जो उसे चिढ़ाते थे, उससे घृणा करते थे, उससे अधिक दूसरों को चाहते, उसकी संगति को अवांछनीय समझते, अब उसे समझेंगे, जानेंगे। मृत्यु, मृत्यु, मृत्यु! कोई उसकी तिनके के बराबर भी गिनती नहीं करता था। सारी दुनिया ने उसे नीचे दबाए रखने का षड्यंत्र कर रखा था। अब वह उन्हें अच्छा सबक़ सिखा देगा कि एक व्यक्ति को एकाकी कर देने का परिणाम क्या होता है। कौन-सी परिचित सी सड़क

है यह ? सन्त एण्ड्रू की सड़क । हाँ ! कैसी बढ़िया दौड़ है यह ? उसने गाड़ी के बाहर मुँह निकाला । कीटाणु-विशेषज्ञ कोई पचास क़दम पीछे ही था । यह तो खराब बात है । वह पकड़कर यहीं रोक लिया जायगा । उसने जेब टटोली । आधी गिनी उसमें मिल गई । उसे उसने ऊपर की खिड़की में से गाड़ीवान की ओर ठूँसकर पुकारा—"भाग निकले तो और पाओगे ।"

गिनी उसके हाथ में से छीन ली गई । "अभी लीजिए, अभी—" गाड़ीवान ने कहा । गाड़ी उछलने लगी और घोड़े की पीठ पर चाबुक नृत्य करने लगा । हिलती-डुलती गाड़ी में वह क्रांतिकारी आधा खड़ा कपड़े के छोर से उस नली को पकड़े हुये अपने को सँभालने का प्रयत्न कर रहा था । वह नाज़ुक चीज़ टूटती-सी मालूम दी और उसका टूटा हुआ आधा हिस्सा गाड़ी के आँगन में झनझनाकर गिर पड़ा । अपने आपको दुत्कार कर वह गाड़ी में बैठ गया और कपड़े पर पड़ी हुई उन दो-तीन बूँदों की ओर निराशा से देखने लगा ।

वह काँप उठा ।

"ख़ैर ! सबसे पहले मेरी बारी ही आवेगी । उँह् ! चाहे जो हो, शहीद तो हो ही जाऊँगा । यह भी क्या कम है ? पर मरूँगा बेमौत । कौन जाने, लोग कहते हैं वैसी ही यन्त्रणा होगी क्या इससे ?"

सहसा उसे एक बात सूझी । वह अपने पाँवों के बीच में कुछ टटोलने लगा । टूटी हुई नली में अब भी एक बूँद बाकी रह गई थी, और वह उसे पीगया मौत को निश्चित करने के लिए । किसी बात का निश्चय हो जाना ही अच्छा होता है । कुछ भी हो, उसका प्रयत्न निष्फल नहीं जायगा ।

उसके ध्यान में आया कि विशेषज्ञ से बचकर भागने की अब ज़रूरत ? वेलिंग्टन स्ट्रीट में गाड़ीवान को रोककर वह नीचे उतर पड़ा। उसका सिर चकरा रहा था। हैज़े का यह विष सचमुच बड़ा तेज़ था। उसने गाड़ीवान् को दूर हट जाने का इशारा किया और स्वयं छाती पर हाथ समेटकर कीटाणु-विशेषज्ञ की प्रतीक्षा में फुटपाथ पर जा खड़ा हुआ। उसकी आकृति दुःखद-सी हो रही थी। निकटासन्न मृत्यु के ज्ञान से वह यत्किंचित् महिमामय हो रहा था। अपना पीछा करनेवाले का उसने लापरवाही से हँसकर स्वागत किया।

"चिरजीवो क्रान्ति ! तुमतो बहुत देर से आए, दोस्त ! मैं उसे पी गया हूँ। हैजा फैल गया ही समझो।"

कीटाणु-विशेषज्ञ गाड़ी में बैठे ही अपने चश्में में से उसकी ओर आश्चर्य से घूरने लगा—"तुम उसे पी गये ? क्रांतिकारी हो तुम ? अब समझा।" वह और भी कुछ कहने वाला था, पर रुक गया। उसके मुख पर हँसी की एक रेखा दिखाई दी। नीचे उतरने के लिए उसने गाड़ी का पर्दा हटाया ही था कि क्रांतिकारी एक अजीब तरह से विदाई लेकर वाटरलू पुल की ओर चल दिया। अपने रोग-ग्रस्त शरीर को सावधानी जितने अधिक लोगों से छुआ सकता था, छुआता हुआ वह आगे बढ़ा। कीटाणु विशेषज्ञ के दिमाग़ में उसीकी बातें घूम रही थीं। टोपी, जूते और लबादा लिए मिनी के आगमन से भी उसे आश्चर्य नहीं हुआ। "ये चीजें लाकर तूने बहुत ठीक किया, मिनी—" कहकर वह दृष्टि से लुप्त होते हुए क्रांतिकारी के ध्यान ही में लगा रहा।

"भीतर आ जाओ, मिनी ! गाड़ी में।" उसी ओर घूरते हुए उसने

कहा। मिनी को पूर्ण विश्वास होगया कि वह पागल होगया है" उसने गाड़ीवान् को घर की ओर चलने की आज्ञा दी। "जूते पहन लूँ ?" जरूर, अभी प्यारी !" गाड़ी के घूमने पर उसने कहा। दूर पर वह छोटी-सी आकृति उसकी दृष्टि से लुप्त होगई। अकस्मात् उसे किसी अनोखी बातका ध्यान आया। वह हँस पड़ा और बोला—"यह भी कुछ कम गंभीर बात नहीं है।"

"सुनो, वह आदमी जो अभी घर पर मुझसे मिलने आया था, क्रांतिकारी है क्रांतिकारी। नहीं। घबड़ाओ मत, नहीं तो मैं पूरी बात कहूँगा कैसे ? और मैं उसे क्रांतिकारी न जानकर अचरज में डाल देना चाहता था। कीटाणुओं का वह नमूना, वही, जिसकी बात मैं तुम्हें कह रहा था, मैंने उसे दिखाया। उससे मेरा अनुमान है उनसे बन्दरों पर नीले दाग़ पड़ जाते हैं, और मैंने एक मूर्ख की भाँति उसे कह दिया कि यह एशियाई हैज़ा है। और लंदन के पानी को विषमय बनाने के लिए वह उसे ले भागा। और सचमुच इस सभ्य नगर में वह एक भयङ्कर शोक फैला देता। अब तो वह उसे खुद गटक गया है। मैं कह तो नहीं सकता परिणाम क्या होगा, किन्तु तुम्हें मालूम है उससे वह पूसी और वे तीन पिल्ले नीले पड़ गये थे—धब्बे-धब्बे से, और वह चिड़िया तो हो गई थी बिल्कुल नीली। बस, चिन्ता इसी बात की है कि उसे फिर तैयार करने का खर्चा और हैरानी उठानी पड़ेगी।

" इस गरमी में कोट पहनूँ ? क्यों ? इसलिए कि घर पर शायद श्रीमती जेबर से मुलाकात हो जाय ? मेरी प्यारी, श्रीमती जेबर वर्षा की झड़ी तो हैं नहीं। इस गरमी में यह लबादा पहनूँ श्रीमती—के लिए ? ओह, बहुत ठीक !"

ग्रेट ब्रिटेन : : : जॉन गॉल्सवर्दी

गुणी

मैं उसे बचपन से जानता था। क्योंकि पिताजी के जूते भी वही बनाया करता था। एक छोटी-सी गली में अपने बड़े भाई के साथ एक में मिली हुई दो छोटी दुकाने किराए लेकर वह रहता था। अब तो उन दुकानों का नामोनिशान भी शेष नहीं; किन्तु उन दिनों तो वेस्ट एण्ड में उन्हें अपनी सजावट का बड़ा ग़रूर था।

उस स्थल में भी एक निराली शान्ति थी। वहाँ ऐसा कोई चिन्ह नहीं था, जिससे मालूम हो कि वहाँ राज-परिवार का काम होता है। वहाँ था केवल उसका जरमन नाम—'गेस्लर ब्रदर्स'; और थे खिड़की में दस-पाँच जूतों के जोड़े। मुझे याद है, उन एक से जूतों का कारण समझने के लिए मैं सदा परेशान रहता, क्योंकि वह किसी के बनवाने पर ही जूते बनाता और यह तो अनहोनी सी बात थी कि उसका बनाया हुआ जूता ठीक न बने। तो क्या उसने ये जूते यहाँ बाहर से खरीदकर रखे

हैं ? यह भी सम्भव नहीं। अपने घर में चमड़े का ऐसा एक भी टुकड़ा वह नहीं देख सकता था, जिस पर उसने खुद हाथ न चलाया हो। यही नहीं, वे जूते थे भी क्या खूब—बस देखते ही मुँह में पानी आजाय ! उन लम्बे, भूरे, सवारी के जूतों पर वह कजलिया चमक देखने में नए से, तो भी सौ वर्ष पुराने जैसे। इन जूतों का बनाना उसी के लिए सम्भव था जो जूते के अन्तस्तल को अपनी आँखों से देख सकता हो—पाँव की समस्त क्रियाओं के प्रतिरूप थे वे जूते। ये सब विचार मेरे मन में आए बाद में। तो भी जब चौदह वर्ष की उम्र में मेरा काम भी उससे लिया जाने लगा, तभी उसके और उसके भाई के प्रति मेरे मन में समाने के यत्किञ्चित भाव का उदय हो गया था। क्योंकि वैसे जूते बनाना—जैसे वह बनाता था—मुझे उस समय मालूम देता था और अब भी मालूम देता है—बहुत ही अद्भुत और आश्चर्य जनक।

अपना छोटा-सा पाँव उसके आगे करते समय, मुझे याद है, मैंने एक दिन झेंपते हुए कहा था।

"क्यों गेस्लर ! यह काम तो बड़ा मुश्किल है।"

अपनी दाढ़ी की लालिमा में से सहसा हँसकर उसने उत्तर दिया था, "मुश्किल तो है ही।"

वह स्वयं था चर्म-निर्मित एक छोटा-सा प्राणी, चेहरा था उसका पीला और झुर्रियों वाला। दाढ़ी और सिर के बाल थे सुर्ख घुँघराले, मुँह के कोनों के पास से गाल पर गल-गुच्छा बड़ी सफाई से नीचे की ओर झुका हुआ था, और उसकी आवाज़ थी कण्ठ्य और भारी। उसके चेहरे पर अनोखापन था। हाँ, उसकी आँखें थीं नीली-भूरी और उनमें

छिपा हुआ था वह गाम्भीर्य, जो किसी आदर्श ही में निहित पाया जाता है। उसका बड़ा भाई भी उसी के जैसा था—पर कुछ कम आकर्षक, मेहनत-मजूरी के कारण सभी प्रकार से क्षीण। आरंभ में तो कुछ दिनों तक मैं उसे मुलाक़ात के अन्त तक नहीं जान पाता। बाद में भी यदि उसे यह नहीं कहना पड़ता कि "मैं अपना भाई को पूछूंगा," तो मैं नहीं जान पाता कि वह है उसका बड़ा भाई।

उसके यहाँ बार-बार जाना भी तो नहीं पड़ता था। उसके जूते चलते भी थे कितने—ऐसा मालूम देता था, मानो जूतों का तत्व उनमें सी दिया गया हो।

कोई उसके यहाँ जाता तो दूसरी दुकानों की भाँति इस खयाल से नहीं—"मेरा काम कर दो तो मैं चल दूँ" किन्तु आराम से, मानों गिरजे में जाना हो। उस एक मात्र लकड़ी की कुरसी पर बैठकर बाट जोहनी पड़ती थी—क्योंकि, वहां कभी कोई हाज़िर मिलता ही नहीं था। शीघ्र ही, उस अंध-कूप-सरीखी, चमड़े की बांस से भरी, दुकान के उस छोर पर ऊपर की ओर से उसका अथवा उसके भाई का चेहरा झाँकता हुआ दिखाई देता। कण्ठ से निकलती हुई आवाज़ और लकड़ी के सकड़े ज़ीने पर पड़ते हुए मोटे जूतों की खटखटाहट सुनाई देती और सन्मुख आ उपस्थित होता वह, बिना कोट पहने, तनक झुका हुआ चमड़े का टुकड़ा सामने बाँधे हुए, आस्तीन चढ़ाए, आँखों को चमकाते हुए मानों जूतों के किसी सपने से वह अभी जागा हो अथवा इस व्याघात से चिढ़ गया हो, जैसे दिन में उलूक।

और मैं कहता—"क्यों गेस्लर महाशय, कैसी है तबियत मेरे लिए रूसी चमड़े की एक जोड़ी तैयार कर दोगे ?"

बिना एक भी शब्द कहे की वह जिधर से आया था उधर ही, अथवा दुकान के ओर किसी कोने में चला जाता और मैं उस कुरसी पर बैठा उसके उस व्यापार की गन्ध लेता रहता। जल्दी ही वह अपने दुर्बल हाथ में सुनहले-भूरे चमड़े का एक टुकड़ा लेकर आता। उस पर अपने नेत्र स्थापित करके वह कहता—"कैसा बढ़िया है यह चमड़ा !" और जब मैं भी उसकी तारीफ़ कर देता, तो वह फिर कहता। "कब तक चाहिए ?" और मैं जवाब देता—"ओह ! आसानी से जितनी जल्दी बना सको।" वह पूछता—"कल, पन्द्रह दिन में ?" अथवा उसका भाई होता तो, "मैं अपने भाई को पूछूँगा।"

इसके बाद मैं धन्यवाद देता—'गुड मार्निंग' कहता। वह भी जवाब में 'गूट मॉर्निङ्ग' कहता और हाथ में के चमड़े को ध्यान से देखता रहता। दुकान के दरवाज़े की ओर जाते समय सुनाई देती उसके जूतों की ज़ीने पर वही खटखटाहट, उसे जूतों के स्वप्न-संसार में ले जाती हुई। किन्तु यदि ऐसे जूते बनाने की बात होती, जैसे उसने पहले नहीं बनाए हों, तो उसे कुछ सोचना-विचारना पड़ता। मेरे जूतों को बहुत देर तक हाथ में लेकर, उनकी ओर आलोचनात्मक और प्रेमपूर्ण दृष्टि से वह देखता रहता। उस दृष्टि में होता था उन जूतों को बनाने में उसकी कला का आनन्द और उसकी कारीगरी की चीज़ के इस वर्त्तमान दुर्भाग्य के प्रति उलाहना। मेरे पाँव को एक पतले कागज़ पर रखकर वह दो-तीन बार पेंसिल से पांव की आकृति खींच लेता और अपनी दुर्बल अँगुलियों से मेरे पाँव के

अंगूठों को छूकर मेरी ज़रूरत के दिल को टटोल लेता। मैं वह दिन नहीं भूल सकता जिस दिन मुझे उसे कहना पड़ा था—"गेस्लर, शहर में पहनने के लिये जो जूता तुमने बनाकर दिया था, वह तो टूट गया।"

बिना कुछ कहे वह मेरी तरफ देखता रह गया। मानों इस आशा में हो कि मैं अपने शब्दों को वापस ले लूँ अथवा सुधार लूँ, ठहर कर बोला—

"टूटना तो नहीं चाहिये था।"

"न जाने, कैसे टूट गया?"

"गीले होगये थे क्या कभी?"

"नहीं तो।"

यह सुनकर उसने आँखे झुका लीं। मानों वह उन जूतों की स्मृति को खोज रहा हो। इस बात को छेड़कर मैं दुःखी ही हुआ था।

"मेरे पास ले आओ," उसने कहा—"मैं उन्हें देखूँगा।"

मेरे टूटे हुये जूतों के प्रति मेरे मन में समवेदना का भाव भर गया, मुझे ठीक याद है, उस बात से उसे कितना दुःख और कितना आश्चर्य हुआ था।

"कुछ जूते" उसने धीमे स्वर से कहा—"जन्म ही से खराब होते हैं। अगर मैं उन्हें नहीं सुधार सकूँगा तो आप के दाम वापस कर दूँगा।"

एक दिन (एक ही बार) मैं उसके यहाँ चला गया किसी बड़ी दूकान से जल्दी में खरीदा हुआ जूता पहने हुये। बिना चमड़ा दिखाए ही उसने जूते का आर्डर ले लिया। मेरी हल्की जोड़ी की ओर लगी हुई उसकी तीक्ष्ण दृष्टि को मैं उसी समय ताड़ गया। आखिर उसने कहा,

"ये जूते मेरे नहीं।"

उसके स्वर में न क्रोध था, न दुःख। घृणा भी नहीं। किन्तु उसमें कुछ ऐसी बात थी जिससे खून जम जाय। उसने मेरे बायें पैर की एक अँगुली दबाकर इशारा किया; ठीक इसी जगह पर जूता मुझे काटता था, उस जगह की वैसी ही बनावट नहीं होती, तो फैशन में फरक आजाता।

"क्यों, यहीं काटता है न? "उसने कहा—"बड़ी दूकान वालों को अपनी इज़्ज़त का भी ख़्याल नहीं!"और उसके बाद वह क्रुद्ध होकर न जाने क्या कहता रहा। बस, उसी बार मैंने उसे अपने पेशे की कठिनाइयों का ज़िक्र करते सुना।

"वही ले मरते हैं," उसने कहा—"काम से नहीं, नोटिस-बाजी से। जूतों के पीछे जी-जान एक करने वाले हम लोगों का काम भी वे लोग ले भागते हैं। और इसी का यह परिणाम है कि मेरे पास काम नहीं है। देख लेना, हर साल काम कम ही होता जायगा।" उसके झुर्रियों वाले चेहरे की ओर देखकर मैं सहसा अवाक् रह गया—ऐसी कठोरता तो पहले कभी नहीं थी, ऐसा कष्ट-पूर्ण संग्राम!—और इस सुर्ख़ दाढ़ी में ये इतने सफ़ेद बाल कहाँ से आगये?

उन मनहूस जूतों की खरीदी की अपनी विवशता का हाल मैंने उसे कह सुनाया। किन्तु उसके चेहरे और शब्दों का मुझपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि मैंने तत्क्षण बहुत-सी जोड़ियों का एक साथ आर्डर दे डाला। ओ, देव! वे जोड़ियाँ कितनी अधिक चलीं। मुझे दो वर्ष तक उसके यहाँ जाने की जरूरत ही नहीं पड़ी।

बहुत अरसे के बाद जब मैं वहाँ गया तब मुझे यह देखकर बहुत ही आश्चर्य्य हुआ कि उसकी उन दो छोटी खिड़कियों पर किसी दूसरे ही

का नाम अङ्कित है, जूता बनाने वाले ही का, सो भी राजघराने के लिये। वे पुराने चिरपरचित जूते अब वहाँ नहीं थे। हाँ, दूकान का एक छोर अब भी पहले की अपेक्षा अधिक अन्धकार-पूर्ण था और सड़ाहँद आ रहीं थीं। बहुत देर तक कुंडी खटखटाने के बाद एक चेहरा दिखाई दिया और पैरों की आवाज़ सुनाई दी। मेरे सामने खड़े होकर, अपने जंगली हुए लोहे की ऐनक में से मेरी ओर घूरकर, उसने कहा—

"जनाब—आप ही हैं न ?"

"ओह ! गेस्लर" मैं कह उठा—"तुम्हारे तो जूते बहुत चले, तुम जानते हो ! देखो, अभी तक ज्यों के त्यों हैं !" और मैंने मेरा पाँव उसके आगे फैला दिया। उसने उसकी ओर देखा।

"हाँ" उसने कहा, "लोगों को अच्छे जूते थोड़े ही चाहिये ?"

उसकी भर्त्सना-भरी निगाह और आवाज़ से बचने के लिये मैंने विषय बदला—"दूकान का क्या किया जाय ?"

उसने आहिस्ते से उत्तर दिया—"इतना खर्च कहाँ से लाता? आपको जूतों की दरकार है ?"

मुझे ज़रूरत तो दो ही की थी; पर तीन जोड़ियों का आर्डर देकर मैं वहाँ से झटपट चल दिया। उसकी दृष्टि में उसके अपने विरुद्ध तो क्या पर बढ़िया जूतों के विरुद्ध षड्यन्त्र में मेरा न जाने कितना भाग था। चाहे जो हो, मैं फिर उसके यहाँ कई महीने बाद गया तो मेरे मन में विचार उठा—"ओह, मैं इस बूढ़े को नहीं छोड़ सकता—कौन है उसका बड़ा भाई ?

उसके बड़े भाई का चरित्र ऐसा नहीं था कि वह मेरी मूक भर्त्सना भी कर सके।

और, मेरे सन्तोष के लिये उसका बड़ा भाई ही, हाथ में एक चमड़े का टुकड़ा लटकाए, आ उपस्थित हुआ।

"क्यों भाई गेस्लर," मैंने पूछा—"कैसे हो ?

नजदीक आकर उसने मुझ पर आँखें गड़ा दीं।

"मैं तो मज़े में हूँ," उसने निर्जीव वाणी से कहा—"पर मेरा भाई चल बसा।"

मैंने देखा वही था—पर सठिआया हुआ और जर्जरित काय। मैंने पहले उसे कभी अपने भाई का ज़िक्र करते नहीं सुना था। दिल में एक चोट-सी लगी। मैंने कहा—सुनकर बहुत ही दुःख हुआ, भाई!"

"हाँ," उसने उत्तर दिया, "बड़ा भला था वह—कारीगर था" वही चल बसा।" अपने माथे को वहाँ से पकड़कर, जहाँ उसके बाल अपने गरीब भाई की भाँति सहसा पतले पड़ गए थे, उसने मानो मृत्यु के कारण का निर्देश किया। "वह दूकान छोड़ना उसके लिए बहुत भारी होगया। आपको जूतों की दरकार है ?" हाथ में का चमड़ा दिखाकर बोला—"क्या ख़ूबसूरत है यह टुकड़ा !"

मैंने कई जोड़ियों का आर्डर दिया। बहुत दिनों के बाद मिले वे—पर थे निहायत उम्दा, सदा से अच्छे। बस, यही एक बात थी कि वे टूटेंगे तो कैसे ? और उसी के बाद मैं विदेश चला गया।

मैं लन्दन लौटा एक वर्ष बाद। मेरे वृद्ध मित्र की दुकान पर ही मैं सब से पहले गया। मैं छोड़कर गया था ६० वर्ष का वृद्ध और मुझे मिला ७५ वर्ष का दलित, जर्जरित और काँपता हुआ प्राणी जो सचमुच मुझे पहले-पहल नहीं पहचान सका।

"ओह, भाई गेस्लर," मैंने दुःखी दिल से कहा—"तुम्हारे जूते कैसे उम्दा हैं ।।देखो, यह जोड़ो मैं अपनी सारी यात्रा में पहने रहा । ज्यों की त्यों है अभी तक । क्यों है न ?"

रूसी चमड़े की उस जोड़ी को देखकर उसके चेहरे पर स्थिरता का भाव आगया । मेरे पाँव पर हाथ रखकर उसने कहा—

"यहाँ लगता तो नहीं ? मुझे याद है, इस जोड़ी में मुझे हैरानी उठानी पड़ी थी ।"

मैंने उसे विश्वास दिलाया कि वह जोड़ा मुझे बहुत ही ठीक बैठी है ।

"क्यों और जूतों की दरकार है ?" उसने पूछा—"मैं बहुत जल्दी बना दूँगा । मेरे पास बहुत कम काम है ।"

मैंने उत्तर दिया—"हाँ, हाँ ज़रूर ; मुझे बहुत से जूते दरकार है।"

"मैं नया ढाँचा बनाऊँगा, आपका पाँव कुछ न कुछ बड़ा हुआ ही होगा ।" बहुत ही होशियारी और धीरज से उसने कागज पर मेरे पाँव का ख़ाका खींचा, अँगूठों को छूकर देखा, और सिर्फ एक बार ऊपर की ओर देखकर इतना-सा बोला—

"मैंने बता दिया न कि मेरा भाई दुनिया से उठ गया ?"

उसे देखना अत्यधिक कष्ट-प्रद था, कितना दुर्बलकाय होगया था, वहाँ से बिदा लेकर मैंने शान्ति की साँस ली ।

शीघ्र ही एक दिन संध्या के समय जूतों की जोड़ियाँ बनकर आगईं । पारसल खोलकर मैंने चारों जोड़ियाँ एक कतार में रख दीं । एक-एक करके मैंने चारों की जाँच की । क्या ही खूब बनी थीं वे । आकार में,

प्रकार में, बनावट और चमड़े की खूबी में वे सर्वोत्कृष्ट थीं। और एक जूते में मुझे मिला उसका बिल। वही सदा वाले दाम लगाए थे, किन्तु उस बिल को देखकर मेरे दिल को एक चोट-सी लगी। पहले तो वह अपना बिल इतनी जल्दी कभी नहीं भेजता था। मैं झटपट दौड़कर नीचे गया, चेक लिखा और उसे अपने हाथ से डाक में छोड़ आया।

एक सप्ताह के बाद, उस छोटी गली में से गुजरते समय मैंने विचार किया–चलूँ, उसे कह आऊँ कि अबकी बार के जूते बहुत ही उम्दा बने हैं। किन्तु दूकान पर पहुँचकर मैंने देखा उसका नाम लापता है। तो भी, खिड़की में वे जूते, पेटेंट चमड़े आदि अब भी मौजूद हैं।

बहुत ही चकित होकर मैं भीतर गया। वे दोनों दूकानें फिर एक हो गई थीं—और उसमें मुझे मिला एक नौजवान अंग्रेज।

"गेस्लर है?" मैंने पूछा।

उसने मेरी ओर आश्चर्य और कृपा-पूर्ण दृष्टि से देखा।

"नहीं, महाशय," उसने कहा–"वे तो नहीं हैं। किन्तु, हम आपकी सेवा के लिए सहर्ष प्रस्तुत हैं। यह दूकान हमने ले ली है। आपने हमारा नाम बाहर बोर्ड पर देखा ही होगा? हम लोग बहुत से बड़े लोगों का काम करते हैं।"

"ठीक है," मैंने कहा—"पर गेस्लर?"

"ओह," उसने उत्तर दिया—"मर गया।"

"मर गया? अभी गत बुधवार ही को तो उसने मुझे जोड़ियाँ बनाकर भेजी थीं।

"आह," उसने कहा—"बिचारा बूढ़ा भूखों मर गया।"

"ओ दैव !"

"डाक्टर ने बताया था, मौत भूख के मारे हुई थी। देखा आपने उसके काम करने का ढङ्ग? दूकान छोड़ता नहीं। अपने सिवाय किसी को काम में हाथ लगाने नहीं देता। कोई आर्डर मिलता भी, तो काम पूरा करने में कितने दिन लगा देता। लोग थोड़े ही बाट जोहते रहते। सारी ग्राहकी मारी गई। बिचारा ताकता रह गया। सच कहता हूँ, लंदन में उसके जैसा जूता बनाने वाला एक भी नहीं। पर यह सब तो ज़माने की होड़ा-होड़ की माया है। उसने कभी नोटिस-बाज़ी नहीं की, विज्ञापन नहीं छपाए। वह बढ़िया से बढ़िया चमड़ा उपयोग में लाता, और सारा काम अपने आप करता। उसी का यह परिणाम हुआ। ऐसे विचारों से और आशा भी क्या की जा सकती थी?"

"पर भूखों मरकर................"

"मेरी बात में तनक नमक-मिर्च हो सकता है—पर मैंने अपनी आँखों देखा था, अन्तिम दिन तक रात-दिन एक करके वह जूते बनाने में लगा हुआ था। खाने की तो उसे फ़ुर्सत ही नहीं मिलती थी। घर में फूटी कौड़ी भी नहीं थी। सारी कमाई भाड़े और चमड़े में चली जाती। इतने दिन तक उसने गुज़र कैसे किया? इसी का मुझे अचरज है। वह भी था एक निराला आदमी। जूते तो वह बनाता था निहायत उम्दा।"

"हाँ," मैंने कहा—"वह बहुत उम्दा जूते बनाता था।"

मुँह मोड़कर मैंने झटपट वहाँ से चल दिया, क्योंकि मैं उस युवक के आगे यह नहीं प्रकट होने देना चाहता था कि मेरी आँखों के आगे अँधेरा छा रहा है।

इटली : : : एन्थोनियो फोगाज़ारो

किसान का दान-पत्र

मेरे जीवन के प्रारम्भिक काल में मैं एक वकील का सहायक था। उनका नाम था क—। एक दिन प्रातःकाल कोई दस बजे की बात है, दफ़्तर खुलते ही गाँव से एक जवान किसान आया और उसने वकील साहब को अपने गाँव ले जाने की प्रार्थना की। उसका पिता मृत्यु-शय्या पर पड़ा था और उसका दान-पत्र तैयार करवाना था।

वकील साहब ने स्वीकार कर लिया। उन्होंने मुझे भी साथ ले लेना चाहा। इसलिए हम तीनों किसान की उस ग्रामीण गाड़ी में सवार हुए। गद्दे की जगह उसमें पुआल बिछा था। कमानी का तो उसमें काम ही क्या? वकील साहब का शरीर स्थूल खूब था और मेरे उदर की परिधि तो उनसे अंगुल दो अंगुल बड़ी ही रहती थी। हमारे उन विशालकाय शरीरों को उठाकर गाड़ी बड़बड़ाती हुई आगे बढ़ी। शहर की सड़क पार करते ही जब गाँव के ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर गाड़ी चलने लगी तो

हमारा कलेजा मुँह को आने लगा। हरएक हचके के साथ क—साहब के मुँह से एक चीख निकल पड़ती। उनके चेहरे पर मुर्दनी छा गई। मैं भी चुपचाप कष्ट सह रहा था। उधर किसान का छोकरा अपने पिता की बीमारी का पचड़ा खोलकर बैठ गया। उसने बताया, उसका पिता कितना उदार है, यद्यपि उसे एक ही आँख से दीखता है, पर, दोनों आँखों से देखने वाले लोगों की अपेक्षा वह बहुत अधिक देख सकता है, इसीलिए लोग उसे रावजी कहा करते हैं।

ज्यों-ज्यों गाड़ी शहर से दूर होती गई, रास्तों की बलिहारी बढ़ती गई। हचकों के मारे नाकों दम होगया। उस कष्ट से मुक्त होने के लिए मैं बारम्बार भगवान् से प्रार्थना कर रहा था। आख़िरकार हमारी सुनाई होगई। हम लोग गाँव में पहुँच गए। सामने ही किसान का घर दिखाई दिया। उस घर की दीनता का क्या वर्णन करूँ? पानी और कीचड़ से घिरी हुई जगह में लकड़ी की एक 'दो मंज़िल इमारत' थी। नीचे गाय-बैलों का तबेला था और ऊपर की 'मंजिल' में सारा घर निवास करता था। एक ही छप्पर के नीचे घर के लोगों और पशुओं के विश्राम के लिए स्थान था।

क—और मैं नीचे तबेले में घुसने ही वाले थे कि हमें बताया गया कि वृद्ध रोगी यहाँ नहीं, सामने की उस अटारी में है। अटारी पर चढ़ने का रास्ता था बड़ा बेढब। दो बाँसों को जोड़कर सीढ़ी बना दी गई थी। उस सीढ़ी पर से हमारे उन विशालकाय शरीरों को ले जाना आसान काम थोड़े ही था?

क—ने इस प्रकार की सीढ़ी पर चढ़ना अपनी मान-मर्यादा के

खिलाफ़ समझा, और उन्होंने साफ़ कह दिया। कि उस सीढ़ी पर चढ़ना उनके लिए असम्भव होगा। वकील साहब शहर को लौट जाने के लिए तैयार होगए। बेचारा किसान का लड़का बड़ा हैरान हुआ। सीढ़ी पकड़कर उसने क—को आश्वासन दिया कि वह सीढ़ी को मज़बूती से पकड़े रहेगा, कोई डर की बात नहीं है। उन दोनों की बोल-चाल सुनकर एक दूसरा किसान और आगया और उसने सीढ़ी का सहारा लगाकर कहा —

"वकील साहब ! डरने की क्या बात है ? लो मैं भी सहारा दे देता हूँ, आओ, चढ़ जाओ।"

मैं था जवान, ऊँचे-नीचे चढ़ने-उतरने का भी मुझे अभ्यास था, और उससे भी अधिक था वकील साहब का हुक्म। मैंने कमर कस ली और बिना किसी विपत्ति के ऊपर चढ़ ही तो गया। मेरी सफलता देखकर वकील साहब को भी साहस हुआ और वे भी मेरे पीछे ऊपर चढ़ आए।

ऊपर अटारी में पुआल के गद्दे पर एक मैला-कुचैला बिस्तर बिछा था, और उसी पर फटे-पुराने चिथड़े पहने वह वृद्ध किसान पड़ा था। उसके चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी थीं। एक आँख तो मुँदी हुई थी ही, दूसरी भी जीवन-रहित-सी हो रही थी। वृद्ध बड़े कष्ट से साँस ले रहा था। किन्तु पीड़ा के और चिह्न नहीं दिखाई दिए। उसके दोनों ओर दो आदमी खड़े थे—जर्जरकाय और चालाक। एक के हाथ में नीम की एक डाली थी और उससे वह वृद्ध की मक्खियाँ उड़ा रहा था, और दूसरा वृद्ध के दन्त-विहीन मुख में सूखी रोटियों के कौर डाल रहा था।

"बापू ! थोड़ा-सा खा लो !" उसने ग्रामीण लहजे से कहा।

समीप ही घास के एक गट्ठर पर एक बुढ़िया अपने घुटनों पर सिर टेके बैठी थी, और उस ओर गाँव के कुछ लोग बैठे थे। वे आपस में धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। शायद वे किसान के वसीयतनामे के गवाह थे। बीच में एक तिपाई, कुरसी, और कलम-दावात हमारे उपयोग के लिए तैयार रखे थे। हमें बताया गया कि वृद्ध की ज़बान बन्द होगई है। वह बोल नहीं सकता। किन्तु इशारों से वह अपना इरादा ज़ाहिर कर देगा।

ऐसी हालत में क—को थोड़ा संकोच ज़रूर हुआ। परन्तु किसान के बेटों ने उसी समय अपनी बात का प्रमाण दे दिया। उनमें से एक ने पिता की ओर झुककर उसके कान में ज़ोर से कहा—"पिताजी, आपने मेरे लिए एक बकरा छोड़ा है ?"

वृद्ध ने गर्दन हिला दी—"नहीं।"

"तो क्या वह बकरा तीता के लिए है ?"

वृद्ध ने सिर झुका दिया—"हाँ।"

"और बाँध वाला खेत किसके हिस्से में आयेगा ?"

वृद्ध ने उस जवान बेटे की ओर नज़र डाली जो हमें लिवा लाया था। गीगीयो को ? उसी को न ?"

वृद्ध ने सिर झुका कर 'हाँ' भरी।

"क्यों वकील साहब !" क—की ओर घूमकर उसने कहा—"मैं जो कहता था, सच है न ?"

वकील साहब को तो भी सन्तोष नहीं हुआ। घास पर पड़ी हुई बुढ़िया को भी उन्होंने पूछ लेना ठीक समझा। बुढ़िया ने भी स्वीकार

किया कि उसके पति के बारे में जो कुछ बताया गया है, ठीक है। उसने बताया कि वृद्ध का ज्ञान अभी तक बराबर बना हुआ है। क्योंकि अभी आध घण्टे पहले ही तो वह अपने बीमार बैल को दवा-दारू की बात समझा रहा था। बुढ़िया ने यह भी बताया कि अपनी सम्पत्ति के विभाग के बारे में वह उसके मन की सब बातें जानती है।

बुढ़िया की वाणी में उत्तेजना ज़रूर थी, पर थी सच। वह मिल्कियत के बारे में किसी प्रकार की धोखा-धड़ी नहीं होने देना चाहती थी। उसने बताया कि वृद्ध के तीन ही सन्तान हैं और वे तीनों लड़के यहाँ मौजूद हैं। किसान की जायदाद में क़रीब ५० एकड़ उपजाऊ भूमि के खेत, बाँधवाली और बग़ीचे की भूमि के टुकड़े, यह घर, खेती-बारी की चीज़ें, गाय-गोरू और दूसरी छोटी-मोटी चीज़ें हैं।

बुढ़िया ने जो कुछ कहा, उसका समर्थन तीनों बेटों ने भी किया। दूसरे गवाहों ने भी वही बात कही। वकील साहब ने सलाह दी कि जायदाद सब में बराबर बाँट दी जाय ; किन्तु माँ, बेटों और गवाहों—सभी ने इसका विरोध किया। उन्होंने बताया कि वृद्ध की यह आन्तरिक इच्छा है कि सब को अलग-अलग ख़ास-ख़ास चीज़ें दी जायँ।

गवाहों में से एक, जो देखने में दूसरों की अपेक्षा अधिक होशियार और भला मालूम देता था, आगे बढ़ा। उसने अपना हुक्का वकील साहब की ओर बढ़ाते हुए, अपने साथियों की मूर्खता और अपनी बुद्धिमत्ता दिखाते हुए, कहा—

"वकील साहब! रावजी अब थोड़ी देर ही केनमहैंनक्का।हमे । नू की खांचातानी में समय बरबाद करने का मौक़ा नहीं है।"

क—ने उसकी बात मान ली। मैं दान-पत्र लिखने का कागज़-कलम सजाकर बैठ गया। वृद्ध से प्रश्न किये जाने लगे। धीरे-धीरे इशारों-इशारों ही में उसने अपने तीनों बेटों—गीगीयों, तीता और चेको के हिस्से की चीज़ें लिखा दीं। सब कुछ—घर-बार, खेती-बारी, गाय-गोरू यहाँ तक कि टूटी गाड़ी का भी उल्लेख करवा दिया।

"और तुम्हारी स्त्री को" क—ने पूछा—"अपनी स्त्री के लिए कुछ छोड़ने का तुम्हारा विचार नहीं है ?"

वृद्ध ने गर्दन हिला दी। सभी ने, बुढ़िया ने भी स्वीकार किया कि यही वृद्ध की निश्चित इच्छा है।

"किन्तु" क—ने कहा—"क़ानून कहता है, स्त्री को आवश्यक हिस्सा मिलना चाहिए। हम लोग उसे नहीं छोड़ सकते।"

"जनाब" बुढ़िया ने कहा—"क़ानून गया भाड़ में। मैं तो एक भी चीज़ नहीं छूने की। मैं तो यहाँ से खाली पेट निकलूँगी और भूखों मरकर जीवन बिता दूँगी।

वकील साहब ने उसकी बात टाल दी। वसीयतनामे की कलमों को अब वे पढ़कर सुनाने लगे। कुरसी मैंने वकील साहब को दे दी थी, और मैं उनके पीछे खड़े होकर सुन रहा था।

उसी समय अटारी के बाहर की ओर एक मुर्गा बोलता हुआ उड़ा। उसकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित हुआ तो मैंने देखा, एक जवान औरत बच्चे को गोद में लिए हाँफती हुई भीतर घुसी आ रही है।

"तुम लोग क्या कर रहे हो ?" मेरी ओर घूरकर उसने कहा—"मुझे और मेरे बच्चे को लूटने के लिए आए हो क्या ?"

उसकी इस बात पर एक घबराहट-सी फैलगई। बुढ़िया और किसान के तीनों बेटे उसकी ओर झपटे।

क—उछलकर खड़े होगए और सब को चुप रहने का आदेश देने लगे।

"यह औरत कौन है?" उन्होंने पूछा। बुढ़िया ने झट से जवाब दिया—

"मैं बताती हूँ यह कौन है? यह है मेरी बेटी, बिल्कुल बेहूदा। मैं आपको सच कहती हूँ, इसका बाप इसे एक फूटी कौड़ी भी नहीं देगा।"

"माँ, माँ, तुम भी ऐसा कहती हो?" लड़की ने क्रोध-पूर्वक कहा—"ये भाई तो मेरे साथ कुतिया का-सा व्यवहार करें, तो मैं वह भी सह सकती हूँ। पर माँ! मेरी माँ होकर तुम भी मुझे धोखा दे सकती हो? मेरे और मेरे पति के विरुद्ध तुम्हारे पास क्या प्रमाण है?"

"बस, बस", क—ने कहा—"शरम नहीं आती, चुप रहो। किसी ने भी पहले मुँह खोला तो उसे सौगन्ध है।"

तीनों भाइयों के चेहरे क्रोध से लाल होकर भय की ज़र्दी में बदल गए। माँ बेटी एक दूसरी को घृणा और अपमान की नज़र से घूर रही थीं। क—ने दान-पत्र के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। किसी की भी ज़बान नहीं हिली।

सहसा युवती कन्या आगे बढ़ी और मरणासन्न वृद्ध के बिछौने के पास जाकर उसने अपने बच्चे को उसके पास लेटा दिया।

"पिता!" उसने चिल्लाकर कहा—"क्या तुम मुझे भूखों मारना चाहते हो? और कुछ नहीं, तो इस बच्चे के लिए तो सत्तू का एक कटोरा

छोड़ते जाओ !" वृद्ध की भौं तन गई । विरोध का और कोई इशारा न कर सकने के कारण उसने अपनी वह एक आँख भी बन्द कर ली ।

मैं वह दृश्य कभी नहीं भूलने का। उस तकिए के सहारे दो सिर थे—एक जीवन से विदा ले रहा था और दूसरा अपना जीवन प्रारम्भ कर रहा था। उन गुलाबी गालों और चञ्चल नेत्रों में बाल्यावस्था की हँसी खेल रही थी, और दूसरी ओर था मृत्यु की कालिमा से ढका हुआ जर्जरित चेहरा। दुर्भाग्य उन दो में एक को हड़प जाने के लिए मुँह फैलाये आ रहा है, यह बात ध्यान में आते ही मैं काँप उठा।

उसी समय गाँव का पादरी वहाँ आ पहुँचा। वह एक उदारचेता भलामानस था। मैं पहले भी एक बार उससे मिला था। उसने बालक को बिछौने पर लेटे देखकर सोचा—आपस में मेल होगया होगा।

"आखिरकार, सब ठीक होगया। भगवान् की कृपा है।"उसने सहृदयता से कहा। मरणासन्न वृद्ध की नाड़ी की उसने परीक्षा की।

बालक रोने लगा। उसकी माता ने उसे उठा लेना चाहा। किन्तु पादरी ने ऐसा नहीं करने दिया।

"बालक को यहीं रहने दो" उसने कहा—"रावजी का अन्तिम समय आगया है। इस लोक से परलोक में जाते समय एक बालक फरिश्ते को उनके साथ रहने दो।" पादरी ने अन्तिम समय की प्रार्थना आरम्भ कर दी।

क—को ऐसे दृश्य बिल्कुल पसंद नहीं थे। जोखिम उठाकर भी उन्होंने सीढ़ी उतरने का प्रयत्न किया। मदद के लिए मैं उनकी ओर

दौड़ा। नीचे उतरने के पहले मैंने अपने कौतूहल को दूर करने के लिए पीछे की ओर देखा।

बेटे और गवाह सब ग़ायब होगए थे। न जाने वे कहाँ चल दिए? युवती माता ने अपने बालक को गोद में उठा लिया था और चुप करने के लिए उसे वह बार-बार चूम रही थी। उधर वह वृद्धा अपने पति के प्रति, जिसे उसने जन्म भर प्यार किया था, अन्तिम समय तक अनुराग दिखाने के लिए उसकी मृत्यु-शय्या के समीप घुटने टेककर प्रार्थना कर रही थी।

मैं नीचे उतर आया और क—के साथ शहर को लौट आया। रास्ते में हमें हरे-भरे खेत मिले; बाग़-बग़ीचों में फल-फूल महक रहे थे; मार्ग के वृक्षों पर बौरों के समीप बैठकर पक्षी कलरव कर रहे थे। ज्यों-ज्यों हम रास्ता तय कर रहे थे, मेरा आश्चर्य बढ़ता जाता था कि प्रकृति का यह भोलापन, फूल का यह सौन्दर्य और फलों का यह मधुर स्वाद भी मनुष्य के हृदय में इतनी घृणा इतनी नीचता क्यों कर भर देता है?

"मैं नहीं समझ सकता" मैंने क—से कहा—"मुझे ऐसा जान पड़ता है भगवान के दिए हुए इन अमूल्य पदार्थों के उपयोग की रीति में मनुष्य कोई बड़ी ग़लती कर रहा है।"

"मुझे भी यह सच जान पड़ता है," उसने उत्तर दिया—"और उस ग़लती का आधार है वही सबसे बुरा घृणित स्वार्थपरता का दुर्गुण। पर, छोड़ो इस बात को उसी सृजेता और मनुष्य-जाति पर। वे दोनों मिलकर कभी न कभी उसका कोई प्रतीकार सोच ही लेंगे।"

—o—

इटली : : : मैतिल्ड सेराओ

लुलु की विजय

—— :०:——

सोफिया अपने काम में, बिना नज़र उठाए, लगी हुई थी। उसकी वे सुकुमार अँगुलियाँ जरी की बेल पर नाच रही थीं। किन्तु, लुलु कमरे में व्यर्थ भटक रही थी। कभी गहनों की पेटी खोलती, तो कभी किसी आलमारी को बिना मतलब खोलकर उसकी ओर झाँकती रहती। यह स्पष्ट था कि वह या तो कुछ करना चाहती है, अथवा कुछ कहना चाहती है। किन्तु, अपनी बड़ी बहन के उस गंभीर भाव को देखकर वह झिझक रही थी। वह मन ही मन गुनगुनाने लगी। एक गीत की एक कड़ी भी उसने गाई। पर सोफिया मानों उसकी चेष्टाओं की ओर ध्यान ही नहीं दे रही थी। बेचारी लुलु में इतना धैर्य नहीं था। आखिर उसने साफ़ शब्दों ही में पूछ लेने का निश्चय किया। अपनी बहन के सामने खड़ी होकर उसने पूछाः—

"सोफिया ! तुम्हें मालूम है, जेनेटी ने मुझे क्या कहा है ?"

"कुछ भी कहा होगा, उसमें ऐसी कौनसी बात है?"

"वाह, तुम तो अजीब हो, तुम्हारा उत्तर तो ऐसा रूखा है कि उसे सुनकर सारा मज़ा किरकिरा हो जाता है। तुम्हारी बातें बरफ़ के समान ठंडी क्यों होती हैं मेरी बहन?"

"लुलु, तू तो निरी बच्ची है।"

"यहीं तो तुम ग़लती करती हो मेरी प्यारी रानी! मैं अब बच्च नहीं रही हूँ, मेरा तो विवाह होनेवाला है।"

"क्या कहा?"

"यही बात तो जेनेटी मुझे कह रही थीं।"

"क्या पागलपन की बात कर रही हो? मैं तो तुम्हारी बात का एक भी शब्द नहीं समझ सकी।"

"बहुत ठीक, लो सुनो, मेरी कथा सुन लो। पर तुम्हारी गम्भीरता क्या मेरी ओर ध्यान देगी?"

"हाँ, हाँ, कहो भी तो।"

"घुड़-दौड़ का दिन है, और 'फिल्ड-आफ़-मार्स' का स्थल। तुम वहाँ नहीं थीं, तुम तो अपनी किताबों में फँसी थी।

"इस प्रकार विषयान्तर करेगी तो लुलु! मैं तेरी बात नहीं सुनूँगी।"

"तुम्हें सुननी होगी। रहस्य की बात से मेरा पेट फूल रहा है, दम घुटा जा रहा है।"

"तो कहती क्यों नहीं?"

"हाँ, हाँ, सुनो भी तो। अच्छा, हम लोग घुड़-दौड़ में आगे की पंक्ति में बैठे। लोवेटो ने हमारा परिचय एक बहुत ही सुन्दर युवक से

करवाया, उसका नाम था रॉबर्ट मोन्टेफ्रैंको। साधारण नमस्कार और धन्यवाद-विनिमय के बाद वे भी ठीक हम लोगों के पीछे बैठ गए। घुड़-दौड़ आरम्भ होने के पहले हम लोगों में आपस में एक-दो बातें भी हुईं। तुम्हें मालूम है, मुझे 'गोरगों' घोड़ी पसन्द है। उसने मुझे बहुत बार धोखा दिया है, तो भी मुझे उसकी तरह अकृतज्ञ नहीं होना चाहिए। धूल के बादल में घोड़े छिप गए। "गोरगों जीती," मैंने चिल्लाकर कहा। "न, न," मोन्टेफ्रैंको ने कहा—"लॉर्ड लवेलो।" उसके इस विरोध से मुझे झुँझलाहट-सी आई। पर वह उसी प्रकार मुस्कुराता हुआ मेरी बात को काट करता रहा। हम दोनों आपस में बाजी लगाने लगे। अन्त में आध घण्टे की हृदय की धड़कन और चिन्ता के बाद मैंने देखा—गोरगों ने मुझे फिर धोखा दिया है; मैं हार गई हूँ और मोंटेफ्रैंको जीत गया है। ओह, वे मनोगत भाव! मैंने कहा—मैं अपनी होड़ अभी चुका देती हूँ। उसने झुककर हँसते हुए कहा-अभी तो बहुत समय बाकी है। छज्जे पर फिर उससे भेंट हुई। मैंने उसकी ओर प्रश्न-भरी निगाह से देखा। अनोखे भाव से मुस्कुराकर, झुककर नमस्कार करके वह मानों संतुष्ट हो गया। नाटक-घर में सर्वत्र यही हाल रहा। मैं तो आश्चर्य के सागर में गोते लगा रही हूँ। रॉबर्ट सुन्दर है। छब्बीस वर्ष का युवक है और आज सबेरे मेरे भावी श्वसुर मोन्टेफ्रैंको पीयर दो घण्टे तक माँ से बातें करते रहे।"

"ओह!"

"मेरे श्रोता ने मेरी बात की ओर ध्यान तो दिया। कहानी सुनने वाली ने हुँकार तो किया। अच्छा, इस मुलाकात की बात मुझे बताई

जेनेटी ने। तो अब विवाह का निश्चय होगया ही समझो। एक ही बात बाक़ी है कि मैं किस दिन गाँव के मुखिया के आफिस में जाऊँ? उस दिन मैं किस रंग का गाउन पहनूँ? अपने टोप में किरन लगाऊँ या नहीं?"

"तुमतो खूब सपाटे से दौड़ चली!"

"दौड़ चली? क्यों, मार्ग में कौनसी बाधा है? रॉबर्ट और मैं आपस में दिल खोलकर प्यार करेंगे। हमारे अभिभावक भी राज़ी हो गये हैं।"

"और तुम इस प्रकार एक आदमी से विवाह कर लोगी?"

"'इस प्रकार' का क्या मतलब? इसके तो बहुत-से अर्थ हो सकते हैं।"

"बिना उसे समझे, बिना उसे प्यार किए?"

"पर मैं तो उसे जानती हूँ, मैंने उसे घुड़दौड़ में और बाहर घूमते हुए देखा है। मैं उसे प्यार करती हूँ। परसों तो मुझे इसीलिए खाना अच्छा नहीं लगा था कि मैं उसे नहीं देख पाई थी। उसी दुःख में मैंने काफी के तीन प्याले पी लिए थे कि उसे नहीं देख पाने से इन प्राणों का निकल जाना अच्छा!"

"और वह?"

"वह तो मुझसे विवाह करना चाहता ही है। इसीलिए प्यार भी करता है।" लुलु ने विजय-गर्व से उत्तर दिया। किन्तु, सोफिया के चेहरे की जर्दी को देखकर वह सहम गई। अपनी ढिठाई पर उसे क्षोभ हुआ, बहन की ओर झुककर उसने स्नेह-पूर्वक कहा—

"मैंने कोई अनुचित बात तो नहीं कह दी, बहन ?"

"नहीं तो। लुलु, तुम ठीक कहती हो। कोई जब प्यार करता है तब विवाह भी करता ही है। हाँ, प्रेम को जगाना कठिन है।"

उसने धीरे से एक उसास ली।

"प्रेम जागो, जागो प्रेम !" उत्तेजना के स्वर में लुलु ने कहा। "यह बहुत आसान है सोफिया ! किन्तु जब तुम्हारी तरह भौंहों में भारीपन हो, आँखें उदास हों, ओठों पर मुस्कराहट न हो, जब और दूसरे नाचते-कूदते हों, उस समय खुद एक कोने में विचार-मग्न पड़ी रहे, हँसने-खेलने की जगह किताबों से माथापच्ची करे और भरी जवानी में भी इस प्रकार उदासी की आदतों को पाल ले, तो प्रेम उससे परे ही रहेगा।"

सोफिया ने गर्दन झुका ली। कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उसके ओठ थोड़े से फड़के, मानों वह अपनी सिसक को दबा रही थी।

"मैंने फिर तुम्हें चोट पहुँचाई न ?" लुलु ने पूछा—"इसीलिए कि मैं तुम्हें भी प्रेम में पगी देखना चाहती हूँ। कोई तुम्हें प्यार करे और तुम बनो उसकी दुलहिन—ओह, कितना अच्छा हो, यदि हम दोनों का एक ही दिन विवाह हो !"

"क्या पागलपन की बात करती हो ? मेरी तो अवस्था ही ढल चुकी।"

"चुप, कैसी अनोखी बात करती हो मेरी दुष्ट बहिन ? रॉबर्ट भलामानस है तो उसके कुँआरा भाई भी होगा। मैं तो चाहती हूँ, ऐसा ही हो !"

उसी समय उनकी माँ बाहर जाने की तैयारी में उस कमरे में आई।

"तुम बाहर जा रही हो क्या माँ ?" लुलु ने पूछा।

"हाँ बेटी, मैं वकील के यहाँ जा रही हूँ।"

"वकील के यहाँ ? कोई बड़ा काम है क्या ?"

"जल्दी ही जान जाओगी, सोफिया। थोड़ी देर के लिए मेरे साथ तो आओ।"

"सोफिया को भी वकील से कुछ मतलब है क्या ?"

"लुलु, तुम यह लड़कपन कब छोड़ोगी ?"

"बहुत ही जल्दी। माँ, देख लेना।"

अपनी माता और बहन के जाने के लिए द्वार खोलकर, उसने झुककर, उन्हें प्रणाम किया। जब वे बाहर निकल आए तो उसने ज़ोर से हँसकर कहा—

"खूब घुल-घुलकर बातें कर लेना। मैं तो अनजान बन जाऊँगी।"

साधारणतः रॉबर्ट मोन्टेफ्रेंको अधिक विचार-शील नहीं था। इसके लिए उसके पास अवकाश का भी अभाव था। दिन बीत जाता खाने-पीने में, घुड़सवारी में, मित्रों से मिलने-जुलने और प्रीति-भोजों में। संध्या वह व्यतीत करता अपनी प्रेमिका लुलु के साथ। इसके सिवा कुछ अरुचिकर कामों में भी समय देना पड़ता। जैसे, वकील के यहाँ हाज़िरी देना, कागज-पत्रों पर सही करना, कुछ पुराने क़र्जों को आपस में निपटाना। घर की सजावट और शादी की तैयारियों का तो कहना ही क्या ? अपने नियमित आधे घण्टे के पठन-पाठन और पाव घण्टे के व्यायाम के लिए भी उसे मुश्किल से समय मिलता। इसीलिए वह कभी किसी

गम्भीर बात के सोच-विचार में नहीं दिखाई दिया। सामाजिक समस्याओं को हल करते हुए भी वह कभी नहीं देखा गया। क्योंकि उसके स्वभाव में न चिन्ता को स्थान था और न साहस-दुस्साहस को। उसकी प्रकृति शान्त व स्थिर थी। उसके इस स्वभाव की बहुत से लोग ईर्ष्या करते।

आज मध्याह्न के बाद वह एक आराम-कुरसी पर किताब हाथ में लेकर, पाँव पसारकर, पढ़ने में मन लगाने का निश्चय करके पड़ा था। पुस्तक मनोरञ्जक थी। तो भी आश्चर्य की बात है पाठक का मन उसमें नहीं लगा। वह तो शिथिल और अस्थिर-चित्त हो रहा था। किताब का वहएक भी पन्ना नहीं उलट पाया। दो-चार पंक्तियाँ पढ़ता, आँखों के आगे से अक्षर सरकते हुए-से दिखाई देते, अपनी जगह छोड़कर अक्षर अस्पष्ट होकर लोप हो जाते। रॉबर्ट तो किसी दूसरे ही विचार-संसार में विचरण कर रहा था।

"पिताजी भी खुश हैं, सब नाते-रिश्तेदारों ने बधाइयाँ और आशीर्वाद भेजे हैं, काफे में मेरे मित्र-गण व्यंग-पूर्ण शब्दों में बधाई देते हैं, मेरे सच्चे मित्र प्रेम से मेरा हाथ झकझोर डालते हैं, इसलिए मैं विवाह करके ठीक ही कर रहा हूँ। लुलु बहुत ही सुन्दर है। जब वह अपनी वह मदभरी आँखें मेरी ओर उठाती है, हँसकर जब वह अपनी दंत-पंक्ति की शोभा दिखाती है, तब मैं उसके उस सुन्दर मुखड़े को दोनों हाथों में पकड़कर बार-बार चूमने के लिए आतुर हो उठता हूँ। उसकी प्रकृति तो अद्भुत है, और चरित्र सोने के समान पवित्र सदा प्रसन्न चित्त रहती है, अच्छे स्वभाव की है, हँसी-मज़ाक के लिए तो

हरवक्त तैयार। बुद्धिमान है, विनोद-पूर्ण है, और है विषाद-रहित। हम दोनों में खूब पटेगी। मुझे कोरी गम्भीरता पसन्द नहीं और सो भी प्रेमी जनों में। मुझे ऐसा मालूम देता है कि उस गम्भीरता के पट के नीचे कोई गोपनीय विषाद छिपा रहता है। उस विषाद से मैं अपरिचित हूँ। उसे हलका करने का उपाय भी मैं नहीं जानता। और कौन जाने, मैं ही अस्वेच्छया उस विषाद का कारण होऊँ! मेरी भावी साली सोफिया में भी यही दुर्गुण है। उसके चेहरे के अगम्य भावों को देखकर मैं घबड़ा जाता हूँ। जब कभी वह आती है, तो मेरी बुद्धि मंद पड़ जाती है, हँसी मेरे ओठों से दूर हो जाती है। और यदि आकाश में बसन्त ऋतु का बहुत ही सुन्दर सूर्य चमकता हो, तो भी मुझे वह शीत-काल का-सा निष्प्रभ दिखाई देने लगता। लुलु से विनोद करना मैं भूल जाता हूँ। सोफिया सारा मज़ा किरकिरा कर देती है। उसका जो बुरा असर मुझ पर पड़ता है, उसे वह ज़रूर जान गई होगी। क्योंकि जब मुझसे बात करती है, तो मेरी ओर बिना देखे अपनी एक अँगुली भी नहीं हिलाती और थोड़े से थोड़े शब्दों में काम चलाती है। उसके प्रति मेरी अप्रियता को वह ताड़ गई है, शायद उसे इसका दुःख भी हुआ हो।

"लुलु तो सदा हँसती रहती है। उसमें जवानी है। उसके मुँह से एक भी गम्भीर शब्द नहीं निकलता, और जब कभी वह प्रयत्न करती भी है, तो ऐसा मालूम देता है कि वह अपना उपहास कर रही है। वह मुझे प्यार करती है, पर आँख मीचकर नहीं। सच तो यह है, मैं भी उसके पीछे पागल नहीं हूँ, यही तो होना चाहिए। मेरे ये दो सिद्धान्त अटल हैं—एक तो यह कि, पति-पत्नी का स्वभाव समान होना चाहिए,

दूसरे उनके पारस्परिक प्रेम का आरम्भ उत्तेजना-पूर्ण मनोवेग से रहित होना चाहिए। हम दोनों में भी तो ऐसा ही है। लुलु और मैं बहुत ही सुखी होंगे। हम दोनों इटली की सैर करेंगे। बिना जल्दबाजी के, छोटी यात्रा करके सब प्रकार की सुख-सुविधा का आनन्द लेते हुए, स्थान-स्थान पर ठहरकर, छोटी से छोटी बात का भी निरीक्षण करेंगे। इस सैर में तीन महीने लग जायँगे; नहीं, तीन से क्या होगा? चार मास तो लग ही जायँगे। अच्छा होगा, लुलु सोफिया की उस उदासीन संगति से कुछ दिन तक तो दूर रह लेगी। पर, मैं एक बात पूछता हूँ, वह लड़की इस उम्र में इतनी उदास और गम्भीर क्यों रहती है? वह तेईस वर्ष की होगी। सौन्दर्य उसका साधारण नहीं है, आँखें बड़ी-बड़ी हैं, चेहरे का रोब तो रानी-जैसा है। यदि वह इतनी क्रूर न हो, तो बहुत अधिक आनन्द-दायक हो सकती है। मैं तो कहता हूँ, वह इसी प्रकार जीवन बिता देगी। शायद यही उसके हृदय की छिपी हुई पीड़ा है। सम्भवतः किसी अज्ञात असफल प्रेम की पीड़ा हो। कौन जाने?—मैं उसकी गम्भीरता का कारण जानने के लिए उत्सुक हूँ—मैं यह बात लुलु ही से पूछूँगा। जब हम लोग अकेले होंगे तब—

"लुलु को खाँड़ के खिलौनों का शौक है। उसदिन जब मैं उसके पास गया था, तो वह यही तो कह रही थी। वह उन्हें किस तरह कुतर रही थी, उसके उन लाल ओठों में खिलौने कितनी जल्दी समाप्त होते जाते थे और अन्त में जब सब समाप्त होगए तो उसने पश्चात्ताप का कैसा नाटक रचा था! ओह, वह कैसी प्रिय है! मेरी प्यारी! उसदिन उस ने मुझसे कहा था, जब मेघ गरजता है तब वह डर जाती है और

भय की मारी बिछौने में जाकर छिप जाती है। उसने यह भी कहा था कि उसे एक लम्बे घेरे के काले रेशमी गाउन का बहुत बार सपना आया करता है। उसकी गरदन और बाँहों पर लगी हुई सफेद बेल उस पर बहुत फबती है। कैसी भाव-भङ्गी से उसने मेरे दिल में यह जँचाना चाहा था कि उसका हृदय एक स्पेन-वासी की भाँति ईर्षालु है। सुनहरी मूठ की एक कटार वह सदा अपने पास रखेगी और उससे अपना बदला चुकावेगी। बहुत ही भोली बनकर जब इस प्रकार की अनहोनी बातें वह करती है, तब कितनी प्रिय मालूम देती है। कभी-कभी तो सोफिया को भी हँसी आ जाती है। उस हँसी में उसका रूप कितना खिल उठता है। सोफिया ! अनूठी सोफिया ! तेरे रहस्य को कभी कोई समझ पायेगा क्या ?"

पुस्तक उसके हाथ में से छूटकर नीचे गिर गई। उस आवाज से चौंककर उसने आश्चर्य से चारोंओर देखा। क्या वह वही रॉबर्ट है ? वह अपने आपको नहीं पहचान सका। हाँ, वही रॉबर्ट मोन्टेफ्रेंको है, पर विचार-सागर में निमग्न !

धूल की वर्षा की भाँति संध्या का अंधकार नीचे उतर रहा था। सोफिया घर के छज्जे में खड़ी होकर नीचे की कोलाहल-पूर्ण गली की ओर ताक रही थी। आने-जाने वाले गाड़ी घोड़ों की भीड़ के कारण इस समय 'वाया तो लेदो' जनाक्रांत हो रहा था। सोफिया की आँखें उस भीड़ में किसी को ढूँढ़ रही थीं। सहसा उसके गुलाबी गालों में लालिमा दौड़ गई।। उसने गर्दन झुका ली। और दूसरे ही क्षण उसका चेहरा पीला पड़ गया। वह चुपचाप अपने कमरे में लौट आई। एक मिनट बाद

लुलु ने आँधी की भाँति कमरे में प्रवेश किया। जल्दी करने से रास्ते की कुर्सियाँ उलट गई। किवाड़ भड़भड़ा उठे।

"आप यहाँ क्या कर रही हैं डोना सोफिया सेन्टेंगेलो? क्यों, कुछ पटन-पाठन हो रहा है क्या?"

"हाँ, पढ़ ही रही थी।"

"और, बाहर झरोखे में कौन खड़ी थी?"

"अच्छा, मैं ही खड़ी थी तो?"

"हूँ! मुझे तो ऊपर रह जाना पड़ा। दरजी आज मेरा गाउन सीकर लाया था। उसीके लिए मुझे रुक जाना पड़ा। मैं तो नीचे आने के लिए आतुर हो रही थी। कल मैंने रॉबर्ट से कहा था कि वह अपना भूरा लम्बा कोट पहनकर, गाड़ी में 'सलीम, घोड़े को जोतकर, शाम के साढ़े छै बजे इधर से निकले। कौन जाने उसने मेरी बात रक्खी, या नहीं?"

"रॉबर्ट इधर से गाड़ी में गया तो था, वह भूरा कोट भी पहने था।"

"ओ हो! तुम्हें क्या मालूम? तुमतो किताब पढ़ रही थी न?"

"मैं झरोखे में थी।"

"और तुमने रॉबर्ट को पहचान लिया? तुम तो उसकी ओर कभी आँख उठाकर भी नहीं देखती न? आश्चर्य की बात है! उसने तुम्हें सलाम किया?

"हाँ"

"उसने अपनी टोपी कैसी उतारी?"

"क्यों? सदा की भाँति ही तो।"

"और तुमने भी बदले में सलाम की ?"

"क्या मैं सभ्योचित व्यवहार भी नहीं जानती ?"

"ख़ैर, तुम उसे देखकर मुस्करायी तो—"

"नहीं—मुझे पता नहीं।"

"सोफिया तुम तो बड़ी खोटी हो। कल शाम को रॉबर्ट तुम्हारे बारे में कह भी रहा था।"

"यही कि मैं बड़ी खोटी हूँ, क्यों ?"

"नहीं, वह तो तुम्हारी उदासी का—और मुझसे बिल्कुल विपरीत तुम्हारे इस स्वभाव का कारण पूछ रहा था। मैंने तुम्हारी प्रशंसा के पुल बाँध दिए। मैंने कहा—तुमतो बहुत ही भली हो, सुशील हो, मनभावनी हो, मुझसे अधिक प्रीतिपात्र हो। तुममें तो एक ही अवगुण है और वह अपने गुणों को छिपाए रखना। यही देखो न, वह मेरी बात को बड़े प्रेम से सुनता है। किन्तु अन्त में पूछता है अपने प्रति तुम्हारी अप्रियता की बात-"

"अप्रियता की बात ?"

"उसने तो यही कहा था। और, क्या तुम यह समझती हो कि उसकी बात निराधार है ? उसके साथ तुम्हारे व्यवहार में आदर-सत्कार भी तो नहीं। तो भी, मैंने तो इस बात में भी तुम्हारा ही पक्ष लिया। मैंने यों ही कह दिया कि तुमतो उसे बहुत चाहती हो और उसका अत्यधिक आदर करती हो—"

"लुलु !"

"मुझे मालूम है, यह बात असत्य है। किन्तु रॉबर्ट तो तुम्हें हृदय से चाहता है। तुम्हें उसके साथ एक अपरिचित की भाँति व्यवहार थोड़े ही करना चाहिये ?"

सोफिया ने अपनी बहन के गल-बहियाँ डालकर उसे चूम लिया। लुलु ने बाहु-पाश को छुड़ाकर धीरे से कहा—

"तुम रॉबर्ट को प्यार क्यों नहीं करती ?"

सोफिया ने अचानक मुँह फेर लिया और बिना कुछ कहे वह वहाँ से हट जाने को उद्यत होगई।

"ओह ! हाँ तो," लुलु ने कन्धे मटकाकर बात बदलते हुए कहा—"तो क्या आज शाम को तुम हम लोगों के साथ नहीं चलोगी ?"

"नहीं, मेरा सिर दर्द कर रहा है, तुम माँ के साथ चली जाना।"

"सदा की भाँति। अच्छा मैं तो जाऊँगी। समय आनन्द से बीत जायगा।"

"रॉबर्ट भी तुम्हारे साथ ही जायगा न ?"

"नहीं—वह तो क्लब में जायगा। वहाँ आज डाइरेक्टरों की सभा है। मैं तो नाचघर में जाऊँगी और कल सुबह तक खूब नाचूँगी।"

"और, उसे मालूम होगा तो ?"

"और भी अच्छा। मुझे वह अभी से स्वतन्त्र छोड़ना सीख जायगा। मैं नहीं चाहती कि उसमें बुरी आदतें पड़ जायँ।

"मुझे तो मालूम देता है, तुम उसे बहुत कम प्यार करती हो।"

"बहुत ज्यादा, पर मेरी निजी रीति से। अब मुझे देरी नहीं करनी चाहिए। दो घण्टे तो मुझे कपड़े पहनने में लग जायँगे।"

सोफिया ने उस जाती हुई गाड़ी की आवाज़ को ध्यान से सुना, जिसमें बैठकर उसकी माँ और बहन बाहर चली गईं। वह अकेली रह गई। बहुत बार वह इसी प्रकार घर में अकेली रह जाया करती थी और यही उसे पसन्द था। जब वह छोटी-सी बालिका थी, तब भी किसी गलती या ज़्यादती पर उसे रोना आता था तो अकेले में, अंधकार में, अपने बिछौने पर, और वही आदत अबतक बनी हुई थी। उस बड़ी बैठक में, झाड़ के प्रकाश-पुञ्ज में, जब वह हाथ और मुँह लटकाए बैठी थी, तो उसके चेहरे पर चिन्ता और मानसिक संग्राम का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई देता था। सचमुच उस एकान्त और मौन वातावरण में उसके मन पर चिन्ता के बादल छा गए; वास्तविकता की वह भावना जिसे उसने अपने से दूर रखा था, अब स्पष्टतया क्रूर दिखाई देने लगी।

किसी की पद-ध्वनि ने उसे सचेत कर दिया। वह था रॉबर्ट। उसे, अकेली देखकर वह रुक गया। उसे तनिक पशोपेश हुआ; किन्तु, यह सोचकर कि घर के दूसरे लोग पास के कमरे में होंगे, वह आगे बढ़ आया। सोफिया एकदम से उठ खड़ी हुई—घबड़ा-सी गई।

"बन्दगी, सोफिया!"

"बन्दगी।"

दोनों ही संशय में पड़ गए।

"ओह! भगवन्, यह सोफिया कितनी मनहूस है।" रॉबर्ट ने सोचा।

इसी बीच में वह युवती कन्या सँभल गई। अपने भावों को ठीक करके वह पुनः गंभीर होगई। दोनों थोड़ी दूर के अन्तर पर बैठ गए।

"तुम्हारी माता ठीक है न?"

"बहुत मजे में है।"

"और—लुलु ?"

"वह, वह भी राज़ी-खुशी है।"

फिर थोड़ी देर तक चुप्पी रही। रॉबर्ट ने कठोरता से मिश्रित हर्ष की अनोखी उत्तेजना का अनुभव किया।

"लुलु किसी काम में है ?"

अपनी अधीर चेष्टा को रोककर सोफिया ने कहा—

"वह माँ के साथ नाच-घर में गई है।" उसने दूसरे प्रश्न की आशा में शीघ्रता से उत्तर दिया।

सोफिया घर में अकेली है, अपनी ओर से वह कोई रूखापन नहीं दिखाना चाहता था, इसलिए उसने थोड़ी देर बैठकर उससे गप-शप करना ही ठीक समझा।

"मैं तो यहाँ इसलिए आगया था कि क्लब में आज बहुत थोड़े सदस्य आए थे।" अपने आने की सफाई देते हुए उसने कहा।

"लुलु को तुम्हारे यहाँ आने का अनुमान नहीं था—मुझे दुःख है—"

"ओह, यह कौन-सी बात है ?" रॉबर्ट ने बात काटकर कहा।

"तुम नहीं गई ?" उसने पुनः कहा।

"नहीं, तुम्हें तो मालूम है मुझे नाच-तमाशे का शौक़ नहीं है।"

"तुम तो लिखना-पढ़ना ही पसंद करती हो ?"

"हाँ, बहुत ही।"

"इससे कहीं तुम्हें शारीरिक हानि तो नहीं उठानी पड़ेगी ?"

"मेरी दृष्टि बहुत ठीक है।" सोफिया ने उत्तर देकर, अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से प्रश्न-कर्त्ता की ओर देखा।

"और सुन्दर भी" रॉबर्ट ने सोचा—"किन्तु, भाव-रहित।" "मेरा अभिप्राय था—"

"मानसिक हानि ? शायद। मैं तो ऐसा नहीं समझती। मेरी पुस्तकों से मुझे तो बड़ी शांति मिलती है।"

"तुम्हें शांति की ज़रूरत रहती है ?"

"हम सभी शांति की खोज में हैं।"

"सोफिया की वाणी गम्भीर थी और थी गूँजती हुई। रॉबर्ट को उसकी इस वाणी में आनन्द हुआ। उसने तो उसके मुख से ऐसे शब्द पहली बार सुने। उसने अपने आपको उपस्थित पाया एक अपरिचित रमणी के सम्मुख, जो अपने प्रत्येक शब्द और अपनी प्रत्येक चेष्टा से अपने रहस्य को प्रकट करती हुई दिखाई दी। सोफिया का वह रूखापन नष्ट होगया। उसने उसकी ओर एकटक देखा। देखकर हँस दिया और एक मित्र की भाँति वह उससे बात करने लगी। इससे पहले उन दोनों के बीच में ऐसा कौन प्रतिबन्ध था ? और अब— ?

"कोई पुस्तक जब मुझे रुचती है" रॉबर्ट ने कहा—"तब मुझे उसके लेखक का परिचय प्राप्त करने में अधिक आनन्द आता है। वह चाहे लेखक हो, चाहे लेखिका, मैं यह जानने के लिए उत्सुक हो जाता हूँ कि वह भला है कि बुरा ? उसे भी कभी कष्ट उठाना पड़ा है क्या ? उसने भी कभी किसी से प्यार किया है क्या ?—"

'उसकी बात सुनकर तो शायद तुम्हें अचरज में पड़ जाना होता होगा ? लेखक कभी अपनी बात नहीं लिखते, वे तो पराए प्रेम की गाथा ही गाते हैं।"

"सम्भवतः उनके प्रति अपना सम्मान प्रकट करने के लिए।"

"मैं तो समझती हूँ ईर्ष्यावश। ऐसे बहुत से दृष्टान्त हैं जिनः मालूम होता है कि हृदय के कोष में छिपा हुआ धन है प्रेम का पिटारा।"

इतनी बात कहते हुए भी सोफिया की वाणी में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उसके भावों में इतना खरापन था, उसकी वाणी इतनी सरल, स्पष्ट और विश्वस्त थी कि उसे प्रेम के संबन्ध में इस प्रकार निश्चित मत प्रदर्शित करते हुए देखकर भी रॉबर्ट को आश्चर्य नहीं हुआ। इस अद्भुत युवती के साथ एकान्त में बीती हुई यह संध्या रॉबर्ट को सौभाग्य-स्वरूप और चिर-वांछित मालूम थी। बिदाई के समय दोनों की आँखें चार हुईं, मानों एक दूसरे को भली-भाँति पहचान लेने का वे प्रयास कर रहे हों। सोफिया ने हाथ बढ़ाया, रॉबर्ट ने हस्त-मिलाप करके उसे नमस्कार किया। उसके पीछे बैठक का पर्दा पड़ गया। उन्हें बिछुड़ना पड़ा।

सोफिया की उस सुखकर उपस्थिति और प्रेम-पूर्ण वार्त्तालाप की की समाप्ति पर रॉबर्ट उलझन में पड़ गया। अनेक संकल्प-विकल्पों ने उसके दिमाग़ में घर कर लिया। वह खुश भी था और दुःखी भी। एक ओर नवजीवन से जाग्रत था, तो दूसरी ओर मृत्यु को निमन्त्रण देने के लिए विकल होजाता। वह नहीं जानता था, लुलु के विषय में, अपने विषय में, अपने और उसके भविष्य के विषय में कैसे और क्या सोचे ?

सोफिया प्रसन्न थी—अत्यधिक प्रसन्न। आनन्द के मारे उसके आंसुओं की नदी उमड़ आई। तकिए पर सिर रखकर वह दिल खोलकर रोती रही।

तीन मास व्यतीत होगए। लुलु का विवाह अभी तक स्थगित ही होता रहा है। माता को इस विलम्ब का कारण ज्ञात नहीं था। इसलिए वह अपनी बेटी को बुलाकर एकान्त में उसका कारण पूछने का प्रयत्न करती।

"मैं थोड़ी प्रतीक्षा करना चाहती हूँ" लुलु ने उत्तर दिया—"अभी तो मैं रॉबर्ट को पहचानने का प्रयत्न कर रही हूँ।"

सचमुच वह लड़की सहम-सी गई थी। वह उसी प्रकार गाती-बजाती, हँसती-हँसाती; किन्तु, इन आनन्द-दायक कामों को छोड़कर वह बीच-बीच में अपनी बहन का अध्ययन करने अथवा रॉबर्ट के शब्दों को बड़े ध्यान से सुनने के लिये एकाग्र हो जाती। बहुधा देखने में आता उसके होठ कसे हुए हैं, भौंहें मिली हुई हैं और वह ध्यान में निमग्न है।

लुलु ने अपने चारोंओर देखा। और उसने देखा, नई-नई बातें होने लगी हैं। रॉबर्ट की वह शांति, वह प्रसन्नता नष्ट होगई है। अबतो वह किसी निगूढ़ चिन्ता से चिन्तित रहता है, चेहरा सूख गया है, मन उद्विग्न रहने लगा है। वह बोलता भी है तो अनमना होकर थोड़े से शब्द। पहले जिन बातों में वह खूब रस लेता था उन बातों में भी उसे अब रुचि नहीं रह गई है। अपनी मनोदशा को काबू करके बहुत प्रयत्न करने पर वह कभी-कभी अपने पूर्व स्वभाव पर लौट आने में सफल होता; किन्तु बहुत थोड़ी ही देर तक। उसे कपट-रूप का अभ्यास था ही नहीं, अपने

मनोवेग को छिपाकर दूसरा नाटक रचने में वह सफल कैसे होता? उसका आन्तरिक दुःख और मनोराग आँखों की राह बाहर की ओर झाँकता रहता।

सोफिया में भी अद्भुत परिवर्त्तन होगया। वही सोफिया जो अनुराग-पूर्वक अपनी बहन को छाती से लगा लेती थी, अब उसे बिना देखे ही समय बिता देती और जान-बूझकर उससे परे रहती। उसके गालों पर रह-रहकर लालिमा दौड़ती रहती। उसकी आँखों में एक ज्वाला प्रज्वलित रहती; उसकी वाणी कभी गम्भीर और कभी मनोवेग-पूर्ण होती, तो कभी रूखी-सूखी होती। उसका बदन काँपता रहता। रातको उसे नींद नहीं आती। लुलु बहुधा रातको उठकर नंगे पाँव उसके द्वार पर जाकर, कान लगाकर, सुनती। सोफिया बेचैनी से करवटें बदलती हुई रोती सुनाई देती। पूछने पर सोफिया यही उत्तर देती—कुछ भी तो नहीं है। उसके पास एक यही उत्तर था।

जब रॉबर्ट और सोफिया मिलते—और वे प्रतिदिन मिलते ही—तब दोनों में जो विचित्र परिवर्त्तन होगया था, वह स्पष्ट लक्षित होजाता। बहुत कम बात होती। होती भी तो झटपट थोड़े-से शब्दों में; कनखियों से देखा-देखी होती; सारा समय योंही बीत जाता। पर वे आपस में नहीं बोलते। हाँ, एक दूसरे की चेष्टाओं को अध्ययन करने में दोनों तल्लीन रहते। वे दोनों कभी पास-पास नहीं बैठते, तो भी रॉबर्ट बार-बार सोफ़िया की पुस्तक अथवा उसके किसी काम में हस्तक्षेप करने का बहाना ढूँढ़ता रहता। और जब कभी सोफ़िया कमरे में नहीं होती, तो वह बंद दरवाजे की ओर ताकता रहता, उसका चित्त उड़ा-सा रहता और कभी-

कभी तो सोफिया के आने के बाद पाँच मिनट ही में अपनी टोपी उठाकर वहाँ से चल देता। बेचारी सोफिया का रङ्ग फीका पड़ने लगा। उसकी आँखों के गड्ढों में स्याही छागई। आखिर, वह औरों की नज़र से बचकर रहने लगी। एक सप्ताह तक वह अपने कमरे के बाहर नहीं निकली। अधैर्य से काँपती हुई अपने दुःख को हल्का करने के लिए वह बिछौने पर पड़ी रहती।

एक दिन सन्ध्या के समय लुलु उसके कमरे में गई। "एक काम करोगी क्या, बहन?" उसने पूछा।

"क्या?"

"मुझे कुछ लिखना है।" लुलु ने कहा—"रॉबर्ट ऊपर छत पर अकेला है। इतनी देर तुम ज़रा उसके पास चली जाओ न, मेरी प्यारी बहन?"

"किन्तु, मैं—"

"तुम यहाँ क्यों पड़ी रहना चाहती हो? मेरी ज़रा-सी बात रखने में तुम्हें इतना ज़ोर आता है?"

"तुम जल्दी ही आ जाओगी न?"

"मुझे दो-चार ही पंक्तियाँ तो लिखनी हैं।"

सोफिया ने छत की ओर पाँव रखा, उस कठिन परीक्षा के लिए हृदय में साहस बटोरकर। छत की देहली पर वह ज़रा-सी झिझकी। उसने देखा रॉबर्ट इधर से उधर चक्कर लगा रहा है। वह उसके समीप चली गई।

"लुलु ने मुझे भेजा है" उसने बहुत ही मन्द स्वर में कहा।

"तुम्हारे हृदय ही ने तो तुम्हें यहाँ आने के लिए बाध्य नहीं कर दिया ?"

"बाध्य—नहीं !"

उसका अङ्ग-अङ्ग काँप उठा। रॉबर्ट उसके समीप खड़ा था। मनोराग के चिह्न उसके मुख पर स्पष्ट लक्षित होरहे थे।

"मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? मेरी सोफिया !"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं। कौन कहता है, तुमने मेरा बिगाड़ा है। मेरी ओर इस तरह मत देखो रॉबर्ट !" उसने भयभीत होकर प्रार्थना की।

"सोफिया ! तुम नहीं जानती, मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ ?"

"यह तो वञ्चकता है।"

"मैं जानता हूँ, तो भी मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। सोफिया ! तुम्हें—खैर, मैं चला जाता हूँ—"

"देखो" लुलु ने दूर ही से चिल्लाकर कहा—"तुम दोनों में सुलह हो गई न ?"

किन्तु, उसे कोई उत्तर नहीं मिला। अपने मुँह को हाथों से ढाँप कर सोफिया वहाँ से भाग गई। रॉबर्ट अवाक् और गति-रहित होकर किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ होगया।"

रॉबर्ट" लुलु ने पुकारकर कहा।

"लुलु"

"क्या हो रहा था ?"

"कुछ भी तो नहीं। अच्छा तो मैं जाता हूँ।"

बिना उससे बिदा लिए ही वह भी निराशा में डूबा हुआ वहाँ से चला गया। लुलु उसे देखती रही। वह भी विचार-सागर में निमग्न थी।

"एक यहाँ—एक वहाँ", उसने गुनगुनाया "और इससे पहले? बस, मुझे अब इस काम में हाथ डालना ही चाहिए।

"और इन्हीं सब बातों के कारण मैं रॉबर्ट से शादी नहीं कर सकती।" लुलु ने अंत में अपनी माँ को स्पष्ट कह दिया।

"ये तो सब फालतू बातें हैं, बेटी!" माता ने उत्तर दिया।

"सौ बातों की एक बात यह है कि मैं रॉबर्ट से खुश नहीं हूँ। मैं उससे विवाह नहीं करूँगी।"

"बात तो साफ़ है, पर है बेहूदी। देखो रॉबर्ट तुम्हें कितना प्यार करता है?"

"किसी तरह ढाढ़स बाँध लेगा।"

"तुमने तो आपस में प्रतिज्ञायें भी कर ली हैं।"

"हम उनको तोड़ सकते हैं। अब वह ज़माना गया, जब ज़बरन् शादी कर दी जाया करती थी।"

"दुनिया क्या कहेगी?"

"माँ, दुनिया है क्या? मुझे बतावो।"

"जन-समाज"

"और ये श्रीमान् जन-समाज कौन हैं? मैं तो उन्हें नहीं जानती। उन श्रीमान् जन-समाज के लिए मैं क्यों दुःख उठाऊँ?"

"तुम तो बड़ी बेहूदी हो, लड़की! बताओ, मैं अब रॉबर्ट को किस प्रकार मुँह दिखाऊँ, ? उसे क्या कहूँ?"

"तुम्हारा जी चाहे, सो कहो। इसीलिए तो तुम मेरी माँ हो।"

"इसीलिए? तुम्हारी बिगड़ी को सुधारने के लिए? यह तो निरी कलंक की बात होगी।"

"मैं तो ऐसा नहीं समझती। नम्रता से राजी करके कह देना। मेरे लिए तो चाहे जो बुरा भला कह देना। कह देना मैं चंचल हूँ, ओछे विचार की ढीठ लड़की हूँ; यह भी कह देना कि मैं योग्य पत्नी नहीं बन सकूँगी। न मैं गंभीर हूँ, न मुझमें गौरव है, प्रत्युत मेरी बहन—"

तुम्हारी बहन? लुलु तुम पागल तो नहीं होगई हो?"

"हूँ, यह कह देना आसान है। अभी तो रॉबर्ट और सोफिया आपस में विरक्त से दिखाई देते हैं; किन्तु, वे एक दूसरे को भली-भाँति जान लेंगे तो आपस में प्यार करने लगेंगे, और फिर—कौन जाने? और तब बड़ी बहन का विवाह पहले कर देने के लिए माता की खूब बड़ाई होगी।

"सचमुच?"

"और मैं कुँवारी थोड़े ही रहूँगी। अभी तो १८ वर्ष की हुई हूँ। मुझे तो मनोरंजन अधिक पसंद है; मैं नाचने-गाने में मस्त रहूँगी और मेरा यह यौवन-काल मेरी प्यारी माता की देख-रेख में बिताने में मुझे अधिक आनन्द आयेगा।"

"बड़ी बदमाश हो लुलु तुम!" लड़की को छाती से लगाकर माता ने प्यार से कहा।

"अब तुम मुझे समझी माँ! जाओ, यह दुःसंवाद रॉबर्ट को नम्रता से सुना दो। यह भी कह देना कि हमारी मैत्री में कोई ख़लल नहीं पड़ने

पाये। वह हमारे यहाँ आता-जाता रहे। इन दोनों का आपस में प्रेम-बन्धन होना होगा, तो वैसा होकर रहेगा, यह विधि का लेख है।"

"पर, क्या तुम्हें विश्वास है कि सब मामला ठीक से सलट जायगा। मुझे तो लड़ाई-झगड़े से घृणा है।"

"ओह, मेरी भोली माँ! तुम तो सेंट थोमास से भी अधिक नास्तिक हो! हाँ, हाँ, अपने विशाल अनुभव के ज़ोर पर मैं तुम्हें कहती हूँ, जाओ; इस मामले में कोई निन्दा-अपवाद नहीं होगा। रॉबर्ट भला-मानस है, बिना प्यार किए ही मुझे वह विवाह के लिए बाध्य नहीं करेगा।"

"मुझे तो सोफिया का मामला ही सब से अधिक कठिन मालूम देता है।"

"जो असंभव है, वही तो सबसे अधिक संभव है" लुलु ने गंभीरता से कहा।

"रहने दो इन पहेलियों को। छोड़ो इन बातों को भावी पर। समय सब बातों को अपने-आप दुरुस्त करेगा। और सब भले ही दुरुस्त हो जायँ, पर तुम्हारी नादानी दूर होने की नहीं।"

"और चंचलता?"

"समझ की कमी—"

"और मेरी ज़िद? कहती जाओ, मैं सब कुछ हूँ। क्यों? और कुछ कहना है? बस?"

"लो, मेरे समीप आओ। मैं तुम्हें चूम लूँ। जाओ, सोओ, मेरी बिटिया!"

"धन्यवाद, मेरी माँ ! अच्छा, प्रणाम।"

"ठीक हुआ" माता ने सोचा—"लुलु अभी कमसिन भी है। बिना सोचे-विचारे आसानी से जो शादियाँ हो जाती हैं उनका नतीजा अच्छा भी नहीं होता। भगवान् उनसे बचावे। यह बहुत ठीक रहा।"

"उफ् !" लुलु ने एक गहरी साँस लेकर कहा—"मुझे कैसी चाल खेलनी पड़ती ? माँ को मनाने के लिए अच्छी तरक़ीब रही। मैं राजदूत का काम खूब अच्छी तरह बजा सकूँगी। कैसी है यह विजय ! प्रेम की विजय। नहीं, यह है लुलु की विजय !"

अपनी बहन के द्वार पर खड़ी रहकर उसने कान लगाया। रह-रह कर दबी हुई आह सुनाई दे रही थी। बेचारी सोफिया के मन की शान्ति नष्ट हो गई थी।

"सोओ, सोफिया, सोओ !" अपनी बहन के माथे की भाँति द्वार की आगल को चूमकर उसने कहा—"शान्ति धारण करो, बहन ! आज मैंने तुम्हारे लिए एक बड़ा काम कर दिया है।"

अपनी बहन के भावी सुख की आशा से आनन्दित होकर वह उदार स्वभाव की लड़की सुख और संतोष-पूर्वक शय्या की गोद में गई।

उसी प्राचीन बुद्धिमान् वृद्ध सज्जन—समय ने—अपना काम कर दिखाया। वही लुलु अपनी अविवाहिता बहन से, जो वधू की सखी होती, पूछ रही थी कि वह कौन-सा कपड़ा पहनेगी ? आसमानी रंग का रेशमी गाउन या बेलदार सादे चम्पई रंग का ? उसने रॉबर्ट को पूछा कि उसके लिए वह बहुत से खाँड़ के खिलौने मँगवा देगा न ? और सोफिया से वह हठ कर रही थी कि वह बादल के समान उसके उस सुन्दर रुमाल

को ज़रूर लेगी। रॉबर्ट और सोफिया, उसके हृदय की उस चमता को, उसके मन की उस मस्ती को, देखकर खुश हो रहे थे और उसे अपने लिए समझ रहे थे ईश्वर का प्रसाद।

"मैं तो यह मानता हूँ" रॉबर्ट ने विवाह के समय अपने एक मित्र से कहा—"पति-पत्नी की रुचि में वैभिन्य होना ही चाहिए। दो छोर ही परस्पर जुड़ते हैं। ऐसे ही वे एक दूसरे को समझेंगे। एक-सी रुचि के दो प्राणी तो समानान्तर रेखाओं की भाँति होते हैं; वे साथ-साथ चलेंगे, पर आपस में कभी नहीं मिलेंगे। और जब आपस में प्यार हो तो— ! मैं तो सदा ही से यही मानता आया हूँ।"

इटली : : जिब्राइल डी एनुन्ज़िओ

शूरमा

—:○○:—

सेंट गान्सेल्वो की विशाल पताकायें चौराहे पर हवा के झोंके के साथ-साथ फहरा रही थीं। आबदार चेहरे और तनी हुई ग्रीवों वाले बलवान उन्हें बड़ी सावधानी से थामे हुए थे।

रेडूसा के लोगों पर विजय प्राप्त करके मैसकालिको-वासी अद्वितीय समारोह के साथ सितम्बर मास का उत्सव मना रहे थे। धार्मिक उत्साह ने उनके आत्माओं को उन्नत बना दिया था। सभी लोग अपनी खेती के बहुमूल्य पदार्थ अपने रक्षक सन्त की सेवा में समर्पित कर रहे थे। मार्ग के इस छोर से उस छोर तक प्रत्येक वातायन में रमणियाँ अपने वैवाहिक घूँघटों से सुसज्जित खड़ी थीं। पुरुष-वर्ग ने अपने घर-द्वार पुष्प-मालाओं से सजाये थे। प्रत्येक देहली पर पुष्प बिखरे हुए थे। पवन बह रहा था। गली की प्रत्येक वस्तु सुशोभित हो रही थी। जनता हर्षोन्मत्त हो रही थी।

एक अजस्र धारा की भाँति वह जुलूस गिरजाघर से आ रहा था, चौराहे पर विभिन्न समूहों में बँटता जाता था। वेदी के सामने, जहाँ से

अभी थोड़े समय पहले पैंटिलिआन राजासन से च्युत किया गया था, आठ आदमी खड़े थे, जिन्हें सेंट गान्शेल्वो की प्रतिमा स्थापन के लिए निर्वाचित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे थे—गिओवानी क्यूरो, ल' उमालिदो, मतओ, विनेंजिओ गुआनो, रोसिओ डि सिंजो, बिनिडेटे गैलो बिएंजिओ डि क्रिसी, जिओवानी सेंजो पुअरा। वे खड़े थे मौन, अपने कर्त्तव्य की गुरुता जानकर यत्किञ्चित चिन्तित। कानों में सोने की बालियाँ पहने और आँखों में धार्मिक उन्माद का प्रकाश भरे उनका वह समुदाय बहुत ही शक्तिशाली प्रतीत होता था। बार-बार अपनी नाड़ी और भुजाओं को देखकर वे अपनी शक्ति की नाप-तौल कर रहे थे; और कभी-कभी तो उनके मुखों पर मन्द हास्य नाच उठता था।

सर्वमान्य सेंट की वह प्रतिमा विशालकाय और वजनदार थी; असली स्याह ताँबे से ढालकर बनाई गई थी, हाथ और सिर बने थे चाँदी के।

"आगे बढ़ो!" मतओ ने आज्ञा दी।

जुलूस देखने के लिए भीड़ चारोंओर से बढ़ी आ रही थी। पवन के प्रत्येक झोंके के साथ खिड़कियाँ बोल उठती थीं। मन्दिर का भीतरी भाग सुगन्धित द्रव्यों के धूम से पूरित होरहा था। विभिन्न वाद्य यन्त्रों के कर्ण-मधुर स्वर बारी-बारी से एक सुस्पष्ट सीमा को प्राप्त करके किसी अज्ञात दूरी में विलीन हो रहे थे। भीड़ के धक्कम-धक्का में मिलकर और धार्मिक जोश से चौंधियाकर उन आठों आदमियों ने रवाना होने के लिए अपनी भुजायें पसार दीं।

"एक!—दो!—तीन!—" मतओ ने उच्च स्वर से कहा।

हिल-मिलकर, तन का सारा ज़ोर लगाकर, उन्होंने मूर्त्ति को वेदी पर से उठाने का प्रयास किया। किन्तु वज़न बहुत ज्यादा था, प्रतिमा बाईं ओर थोड़ा झुक गई। लोगों को मूर्त्ति-तल सम्भालने का बहुत कम अवकाश मिला। अपना तौल सम्भालने के लिए वे लोग आगे को ओर झुक गए; किन्तु उनमें कम फुर्त्तीले बिएंजिओ डि क्रिसी और गिओवानी क्यूरो के हाथों में से प्रतिमा फिसल गई। उमालिदो चिल्ला उठा।

"सम्भालो! सम्भालो!" सर्वमान्य सेंट की प्रतिमा पर आई हुई उस विपत्ति को देखकर चारोंओर से लोग पुकार उठे। भयङ्कर हल्ला मच उठा।

उमालिदो अपने घुटनों पर झुक गया। उसका दाहिना पञ्जा मूर्त्ति से बिल्कुल पिस गया। अपने घुटनों पर टिककर वह अपने हाथ की ओर देखने लगा। पर क्या करता? हाथ को टस से मस करने की भी शक्ति नहीं रह गई थी। उसकी आँखों में भय और कष्ट छा गया। पीड़ा के मारे उसका मुँह सिकुड़ गया, तो भी उसने ज़बान नहीं हिलाई। वेदी पर रुधिर की धारा बह चली।

उसके साथियों ने फिर ज़ोर लगाकर प्रतिमा को उठाने का प्रयास किया। पर यह काम आसान थोड़े ही था। तीव्र वेदना से उमालिदो का चेहरा ऐंठा जा रहा था। समीपस्थ रमणियाँ उस दृश्य को देखकर सिहर उठीं।

अंत में प्रतिमा उठा ली गई और उसके नीचे से उमालिदो का हाथ निकाल लिया गया। लोहू-लुहान, कुचला हुआ वह हाथ बस एक मांस-पिण्ड-सा दिखाई देता था।

"जाओ, जल्दी घर चले जाओ !" भीड़ में से एक सलाह मिली और उसके लिए लोगों ने रास्ता छोड़ दिया।

एक स्त्री ने अपना कपड़ा फाड़कर पट्टी उसकी ओर की, पर उसने इन्कार कर दिया। प्रतिमा के पास झगड़ते हुए एक समुदाय की ओर वह चुपचाप ताक रहा था।

"मेरी बारी है।"

"नहीं, मेरी बारी है।"

"नहीं, मेरी।"

सिक्को पोनो, मैतिओ स्कारफरोला और तोमासो क़िसी आपस में उमालिदो के रिक्त स्थान के लिए झगड़ रहे थे।

उमालिदो उन झगड़ते हुए लोगों के पास पहुँचा। उसका विकृत हाथ एक ओर लटक रहा था और दूसरे हाथ से वह लोगों को हटाकर अपने लिए रास्ता कर रहा था।

"यह जगह मेरी है।" उसने केवल इतना कहा, और प्रतिमा उठाने के लिए अपना कंधा बढ़ा दिया। असह्य पीड़ा को दबाने के लिए उसने ज़ोर से दाँत बन्द कर लिए।

"क्या करने जा रहे हो ?" मतओ ने पूछा।

"सैंट गान्सेल्वो की जो मरज़ी होगी," उसने उत्तर दिया और सबके साथ जुलूस में आगे बढ़ा।

लोग हक्के-बक्के रह गए।

जुलूस में उसका लोहू-लुहान हाथ धीरे-धीरे काला पड़ता गया। बीच-बीच में कोई पूछ लेता—

"क्यों, उमा कैसा मालूम देता है ?"

उमालिदो उत्तर नहीं देता, संगीत के साथ क़दम मिलाकर चलता जुलूस हवा में उड़ते हुए चौड़े चंदोवे के नीचे वह गम्भीर भाव से बढ़ा चला जा रहा था। जनता की भीड़ प्रतिक्षण बढ़ती जा रही थी।

एक गली के कोने पर उमालिदो सहसा धरती पर गिर पड़ा। प्रतिमा थोड़ी-सी खसकी। एक क्षण के लिए चिन्तित होकर भीड़ की गति मंद पड़ गई। शीघ्र ही जुलूस फिर आगे बढ़ा। उमालिदो की जगह मैतिया स्कारफरोला को मिली। दो सम्बन्धी मूर्च्छित व्यक्ति को उठाकर एक निकट के घर में ले गए।

वृद्धा एना दि सेंज़ो इलाज में बड़ी होशियार थी। उसने भी कुचले हुए विकृत हाथ को देखकर सिर हिला दिया।

"क्या किया जा सकता है ?"

इस मामले में उसकी होशियारी भी बेकार थी।

उमालिदो की मूर्च्छा भङ्ग हुई, और वह दृढ़ता-पूर्वक मौन धारण किए रहा। वह उठ बैठा। घाव की ओर उसने ध्यान से देखा। हाथ की हड्डियों का भी चूरा होगया था। वह हाथ से हाथ धो बैठा।

दो-तीन बूढ़े किसान उसे देखने के लिए आए। संकेत व स्वर से उन्होंने भी वही भाव प्रदर्शित किया।

"संट को कौन ले गया ?" उमालिदो ने पूछा।

"मैतिया स्कारफरोला," उन्होंने उत्तर दिया।

"और अब क्या हो रहा है !" उसने फिर पूछा।

"सांध्य-प्रार्थना और गान।" उत्तर मिला।

किसान उससे बिदा लेकर सांध्य-प्रार्थना के लिए चले गए। गिरजा-घर से विशाल घण्टों का निनाद सुनाई दे रहा था।

एक संबंधी ने ठंढे पानी का वर्त्तन ज़ख़्मी के पास रखकर कहा—

"अपना हाथ इसमें डुबाकर रखो। हम तो जा रहे हैं, सांध्य-प्रार्थना के घण्टे बुला रहे हैं।"

उमालिदो अकेला रह गया। घण्टों के निनाद की ध्वनि बदली और तेज हो गई। दिवस का अवसान समीप था। अँधेरा होता जाता था। हवा के झोंकों से जैतून की डालियाँ किवाड़ों से टकरा रही थीं।

धीरे-धीरे उमालिदो अपना हाथ धोने लगा। जमे हुए रुधिर के धुलने पर मालूम हुआ कि वास्तव में घाव कितना भयानक है।

"क्या रखा है इस हाथ में? सेंट गान्सेल्वो! मैं इसे तुम्हारी वेदी पर बलि देता हूँ।"

एक चाकू लेकर वह बाहर निकल पड़ा। सारी सड़कें सूनी पड़ी थीं। धार्मिक जनता गिरजे में एकत्रित हो रही थी। घरों की चोटियों पर, सितम्बर के सूर्य से चमत्कृत रक्तवर्ण बादल शूरमाओं की भाँति बढ़े चले जा रहे थे।

गिरजे में एकत्रित होकर जन-समुदाय संगीत के स्वर में स्वर मिला रहा था। लोगों के शरीरों की गरमी और बत्तियों के धूप से वातावरण घुट रहा था। जन-समुदाय के ऊपर की ओर सेंट गान्सेल्वो का रजत-मस्तक आकाश-दीप की भाँति सुशोभित था।

उमालिदो ने प्रवेश किया। उस अव्यवस्थित समुदाय को पार करके वह वेदी के समीप पहुँच गया।

"सेंट गान्सेल्वो, यह मेरी भेंट स्वीकार करो," अपने हाथ में चाकू थामकर उसने दृढ़ स्वर से कहा।

इतना कहकर उसने अपने दाहिने हाथ की कलाई में चाकू घुसेड़ दिया। हक्के-बक्के लोगों की बोलती बंद हो गई। वह विकृत पंजा भुजा में से अलग लटकने लगा। एक क्षण तक अंतिम नसों से लटककर पंजा उस महान संत के चरणों—में उस पात्र में, जा गिरा जिस में लोग भेंट चढ़ाया करते थे।

उमालिदो ने अपने ठूँठ-सरीखे रुधिर से सने हाथ को ऊपर उठाकर दृढ़ स्वर से पुनः कहा—

"सेंट गान्सेल्वो! तुम्हारे चरणों में मेरी यही भेंट है।"

जर्मनी : : : आर्थर शीज़लर

तीन सूचनायें

प्रातःकालीन कुहरे के आवरण से आच्छादित पर्वत-माला उस युवक को मानो अपनी ओर आने का संकेत कर रही थी। युवक उस ओर बढ़ता चला जा रहा था। उसके हृदय का स्पंदन जगत् की स्थिर प्रकृति के ओंकार-स्वर का साथ दे रहा था। पर्वत की समतल उपत्यका में वह बहुत दूर तक बिना किसी भय अथवा चिन्ता के बढ़ता चला गया। ज्योंही वह सामने के जंगल के समीप पहुँचा, उसे एक वाणी सुनाई दी—अत्यधिक रहस्यमय—मानो एक ही साथ पास ही में कोई बोल रहा हो, और सुदूर प्रान्त से भी—

"युवक! इस अरण्य में प्रवेश नहीं करना, नहीं तो तुझे हत्या करनी पड़ेगी।"

चकित होकर युवक खड़ा रह गया। उसने चारोंओर दृष्टि दौड़ाई। किन्तु, कहीं कोई दिखाई नहीं दिया। उसने अनुमान किया—किसी भूत-प्रेत ने यह सूचना दी होगी। किन्तु, अपने स्वाभाविक साहस के बल पर

उसने उस विचित्र सूचना की परवा नहीं की। अपनी चाल को तनिक मन्द करके, इस प्रकार की सूचना देने वाले अज्ञात शत्रु का सामना करने के लिए सतर्क होकर, युवक आगे बढ़ा। जंगल के घने वृक्षों को पार करके वह पुनः खुले मैदान में आगया। किन्तु उसे कोई नहीं मिला। न कोई खटका हुआ। जंगल के उस छोर पर एक सघन वृक्ष की छाया में वह सुस्ताने के लिए लेट गया। सामने के चरागाह को पार करके उसकी दृष्टि पर्वत-माला पर जाकर रुक गई। उसी पर्वत-माला में एक शिखर दिखाई दे रहा था—ऊँचा और बिलकुल नग्न। युवक को वहीं जाना था।

आगे बढ़ने के लिए वह उठा ही था कि उसे फिर वही वाणी सुनाई दी—अत्यधिक रहस्यमय—मानो एक ही साथ पास ही में कोई बोल रहा हो और सुदूर प्रान्त से भी। हाँ, इस बार उसमें अधिक विनम्रता थी—

"युवक! इस चरागाह को पार नहीं करना, नहीं तो तू अपनी मातृभूमि के विनाश का कारण बनेगा।"

युवक के अभिमानी हृदय ने उसकी कोई परवा नहीं की। उसे तो हँसी आगई कि एक बे ठौर-ठिकाने की बात को भी, कहने वाला इस प्रकार कह रहा है मानो उसमें कोई महत्व-पूर्ण रहस्य छिपा है। युवक ने कदम बढ़ाया। अधैर्य और बेचैनी ने उसकी चाल तेज कर दी। जिस समय वह पर्वत के चरणों में पहुँचा, उस समय सूरज डूब रहा था। संध्या का श्याम-पट धीरे-धीरे फैल रहा था। उसने पर्वत पर चढ़ने के लिए ज्योंही पैर बढ़ाया, वही वाणी पुनः सुनाई दी—अत्यधिक रहस्य-

मय—मानो एक ही साथ पास ही में कोई बोल रहा हो और सुदूर प्रान्त से भी। पहले की अपेक्षा इस बार स्वर अधिक भय-प्रद था :—

"बस, और आगे नहीं, युवक ! नहीं तो अपनी जान से हाथ धो बैठना पड़ेगा।"

युवक ज़ोर से हँसा। बिना किसी सोच-विचार के वह अपने मार्ग पर बढ़ा। ज्यों-ज्यों वह मार्ग तय करता जाता था, उसका हौसला बढ़ता जाता था, छाती फूलती जाती थी। अन्त में वह उस पर्वत-शिखर पर एक विजेता की भाँति पहुँच गया—जिस समय सूरज की अन्तिम किरण पर्वत-शिखर को चूम रही थीं।

"यह देखो मैं पहुँच गया" उसने विजय-पूर्ण स्वर से कहा—"यदि यह मेरी परीक्षा थी तो, ओ भले अथवा बुरे प्रेत ! देख, मैं उत्तीर्ण हुआ हूँ। किसी प्राणी के रक्त से मेरे हाथ नहीं रँगे हैं। वह देखो; सामने मेरी मातृभूमि बिना किसी विपत्ति के आनन्द-मग्न है और मैं जीता-जागता मौजूद हूँ। तू कौन है ? मुझे पता नहीं। चाहे जो हो, मैं तुझसे अधिक शक्ति-शाली हूँ। मैंने तेरा विश्वास नहीं करके ठीक ही किया।"

पर्वत-माला में से एक गर्जना हुई। समीप पहुँचने पर उस गर्जना में से सुनाई दिया—

"युवक ! तू गलती कर रहा है।" उस वाणी की गंभीरता के बोझ से युवक दब-सा गया। पास ही एक शिला पर विश्राम के लिए वह बैठ गया। उसके ओठों पर व्यंग-मय हँसी थी। उसने अस्फुट स्वर में अपने आप कहा—

"तो क्या मैंने अनजान में किसी का गला घोंट दिया है ?"

"तेरे अल्हड़ पाँव ने एक जन्तु को कुचल डाला है।" भीषण नाद से उत्तर मिला। उदासीनता से युवक ने प्रत्युत्तर दिया—

"अच्छा, यह बात है क्या? तब तो किसी भले या बुरे भूत-प्रेत की यह सूचना नहीं दीखती, यह तो निरा मज़ाक ही निकला।"

पर्वत-शिखर के उस मुरझाते हुए सांध्यकाल में पुनः वही वाणी गूँज उठी—

"युवक! क्या अब भी तू वही युवक है जिसका हृदय आज प्रातः-काल ही इस जगत की प्रकृति के ओंकार-स्वर के साथ स्पंदित हो रहा था? क्या तेरी आत्मा इतनी निर्जीव हो गई है कि उस पर एक जन्तु के हर्ष-विषाद का प्रभाव नहीं पड़ता"?

"तुम्हारे कहने का अभिप्राय यह है?" माथा सिकोड़कर युवक ने उत्तर दिया—"तब तो मैंने उन प्राणियों की भाँति, जिनके पाँवों के तले अनजान में अगणित छोटे-छोटे जन्तु मरते रहते हैं, यही अपराध सैकड़ों-हजारों बार किया होगा।"

"इस बार तो तुझे सचेत कर दिया गया था। क्या तुझे पता है जगत के इस शाश्वत कर्त्तव्य-क्षेत्र में इस जन्तु ने क्यों जन्म धारण किया था?"

सिर झुकाकर युवक ने उत्तर दिया—

"न मैं यह जानता हूँ, और न जान सकता था। मैंने तो अपनी यात्रा में ऐसी बहुत ही सम्भव हत्याओं में से एक ही की है, जिसे रोकने की तेरी इच्छा थी। पर, यह तो बता, मैंने अपनी मातृभूमि के विनाश का कौन-सा काम किया है? मुझे इस बात का बहुत ही आश्चर्य है।

"युवक ! तूने उस सुन्दर तितली को देखा था न ?" धीरे से उत्तर मिला—"वह एक बार तेरी दाहिनी ओर उड़कर आई थी।"

"मैंने बहुत सी तितलियाँ देखी थीं, और तेरी इस तितली की भी मुझे याद है।"

"बहुत-सी तितलियाँ ? ओह, बहुत सी तो तेरे कारण अपने मार्ग-से दूर हट गईं। किन्तु जिस तितली की बात मैं कहता हूँ, उसे तू ने उड़ा दिया सुदूर पूर्व प्रदेश में। उड़ती-उड़ती वह सुनहली बाड़ को पार करके शाही बगीचे में पहुँच गई है। उस तितली से पैदा होगा एक कीड़ा, और वह अगले साल गरमियों में मध्याह्न के समय फुदकता-फुदकता महारानी की सुन्दर ग्रीवा पर जाकर रेंगेगा, जिससे महारानी सहसा चौंककर जाग पड़ेंगी और अवाक् रह जायँगी। आश्चर्य के उस धक्के से रानी का गर्भस्थ बालक कुम्हला जायगा—मर जायगा। इस प्रकार एक सच्चे उत्तराधिकारी के हाथ में न जाकर देश का शासन जायगा राजा के कुटिल, विद्रोही और अत्याचारी भाई के हाथ में। उसके शासन से प्रजा को अनेक कष्ट और चिन्ताओं का सामना करना पड़ेगा। अत्याचार-पीड़ित प्रजा विद्रोही हो उठेगी और शासक अपने प्रभुत्व के लिए देश में घोर संग्राम छेड़ देगा। जिससे तेरी सारी मातृभूमि का सर्व-नाश हो जायगा। इसका दोष और किसे होगा ? तुझे ही तो ? तेरे ही कारण तो वह तितली पूरब की ओर उड़कर राजप्रसाद में पहुँची है।"

युवक ने कंधा हिलाकर कहा :—

"ओ अज्ञात शक्ति ! मैं तेरी भविष्य-वाणी का कैसे विरोध करूँ ? जो तूने कहा है, वह सच ही होगा। क्योंकि इस जगत् में एक घटना दूसरी

घटना की अनुगामिनी होती है। बहुधा देखा जाता है, एक छोटी-सी बात से भयङ्कर घटना घटित हो जाती है और दूसरी ओर एक बड़ा भयानक दुर्घटना का परिणाम होता है बहुत ही सूक्ष्म। मैं इस भविष्य-वाणी का विश्वास ही क्यों करूँ? मौत की वह धमकी भी तो सच नहीं हुई!"

"जो ऊपर चढ़कर आया है" भयानक स्वर गरज उठा—"उसे यदि फिर संसार में जाना है, तो नीचे लौट जाना होगा। तूने इस बात को विचार लिया है न?"

युवक सहसा ठहर गया और एक क्षण के लिए उस के ध्यान में आया कि खैरियत इसी में है कि वह किसी सीधे मार्ग से नीचे लौट जाय। किन्तु चारोंओर घिरे हुए रात्रि के अंधकार के कारण वह ऐसा भी नहीं कर सका। कुशलता-पूर्वक नीचे पहुँच जाने के लिए उसे सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता प्रतीत हुई। यह सोचकर कि प्रातःकाल होने पर ही वह भले-बुरे का विचार कर सकेगा, उसने पास ही की एक शिला पर रात बिताने का निश्चय किया।

उस निर्जन और अंधकार-पूर्ण प्रदेश में वह बैठा था बिल्कुल मौन और गति-विहीन। जागते रहने के लिए वह अपनी थकी हुई पलकों को यत्न-पूर्वक खोले हुए था। उस के हृदय में—नस-नस में—चिंता और घबराहट समा रही थी। उस अंधकार में भी पहाड़ी से नीचे उतरता हुआ पथ उसकी आँखों के सामने स्पष्ट था—ओह, यही तो जीवित रहने का एक मात्र मार्ग है। वही युवक जो आज तक अपने पथ पर अग्रसर होने के लिए दृढ़-निश्चय रहा करता था, आज शंका-शील हो रहा था। ऐसी शंका का तो उसने पहले कभी अनुभव ही नहीं किया था। चिंता

और भय का बोझ उसके मन पर बढ़ता ही गया। यहाँ तक कि उस भार को और अधिक वहन करने के लिए वह असमर्थ होगया। सूर्य के प्रकाश की प्रतीक्षा भी उसे असह्य मालूम दी। आशा-निराशा के उस जाल से मुक्त होने के लिए, उसी अंधकार में अपने घर की राह लेने के लिए वह व्यग्र हो उठा। उस अंधकार में उसने कदम उठाया ही था कि उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके भाग्य का फैसला होगया और उसे अब कोई नहीं मिटा सकता। वह दण्ड उसे शीघ्र ही भोगना होगा। क्रोध और दुःख से पागल-सा होकर युवक चिल्ला उठा—

"ओ अज्ञात शक्ति! तूने मुझे तीन सूचनायें दीं और तीनों ही बार मैंने तेरा निरादर कर दिया। ऐ शक्ति! एक अजनबी की भाँति मैं तुझे नमस्कार करता हूँ। किन्तु, मेरा विनाश करने के पहले मुझे यह तो बता दे, तू कौन है?"

पुनः वही भीषण नाद गरज उठा, एक साथ समीप ही में और अनन्त दूरी पर से भी:—

"अभी तक कोई मनुष्य देह-धारी मुझे नहीं जान पाया है। मेरे बहुत से नाम हैं—अंधविश्वासी मुझे देवता बतलाते हैं, मूर्ख मुझे समझते हैं भाग्य, और पुण्यात्मा समझते हैं ईश्वर। और जो लोग अपने आप को बुद्धिमान समझते हैं उनके लिए तो मैं वह शक्ति हूँ जो आदि के नित्य निरंतर समान भाव से विद्यमान है—अविनाशी है!"

"तब तो मैं अपनी इस अंतिम घड़ी के समय तुझे धिक्कारूँगाही।" मृत्यु की यंत्रणा को हृदय में समेटकर युवक चिल्लाकर बोला—"यदि तू वह शक्ति है, जो आदि से नित्य निरंतर समान भाव से विद्यमान रही

है और अविनाशी है, तो क्या यही भाग्य में बदा था कि जो कुछ हुआ है वह इसी प्रकार हो ? मैं जंगल में से जाऊँ ही और हत्या करूँ ? उस चरागाह को पार करूँ ही और अपनी मातृभूमि के विनाश का कारण उपस्थित करूँ? इस पहाड़ी पर चढ़ूँ ही और यहाँ प्राप्त करूँ अपनी मृत्यु? और यह सब हुआ तेरी सूचनायें दे देने पर भी ? पर यह तो बता यदि तेरी सूचनायें भी मुझे नहीं बचा सकीं, तो उन्हें सुनना ही मेरे भाग्य में क्यों लिखा था ? ओ कुटिल ! यह भी बता, मेरी इस अंतिम घड़ी के समय मैं अपना यह दुखड़ा तेरे आगे क्यों रो रहा हूँ ?"

युवक को उत्तर मिला हँसी के भीषण नाद में अतिशय भयानक और कठोर स्वर में—दशों दिशाएँ कुटिल हास्य से गूँज उठीं। युवक ने उत्तर को समझने का प्रयत्न किया। पर उसके पाँवों के तले से धरती खिसकी जा रही थी। अनन्त काल से सब प्राणियों में जो होता आया है, वही हुआ। वह मानों जा गिरा एक गहरे गर्त्त में—घात में बैठे हुए काल-चक्र की अँधेरी गोद में।

जर्मनी ✓ : : : जैकब वासरमैन

हिंसक पशु

——:o:——

जर्मनी की एक प्राचीन राजधानी में क्रांति के आरंभ-काल में श्रमजीवियों के भयंकर दंगे-फसाद उठ खड़े हुए थे, जिनकी स्मृति नागरिकों के लिए अब भी भय-प्रद है। कोहरे से आच्छादित उस फरवरी के प्रातः-काल सहस्रों हड़ताली मजदूरों का समुदाय शहर के व्यापारिक केन्द्र की ओर बढ़ता जा रहा था। दुर्व्यवहार के लिए तुले हुए बेकारों का दल उनमें और सम्मिलित हो गया। सुसज्जित पुलीस भी शीघ्र ही उस डरावने दल को काबू में करने में असमर्थ हो गई। दुकानों की खिड़कियों पर लोहे के सीकचों के किवाड़ लग गए। होटल व नाचघर आकस्मिक भय के कारण बंद कर दिए गए। घरों के दरवाजे बंद हो गए। आगे बढ़ते हुए दल के हल्ले-गुल्ले को सुनकर खिड़कियों में से झाँकते हुए भय-भीत और चकित लोगों के चेहरे यत्र-तत्र दिखाई दे रहे थे।

अजस्र-धारा की भाँति वह दल आगे बढ़ रहा था, पत्थरों की बौछार करते हुए, खिड़कियों के काच तोड़ते हुए। कभी-कभी एक आध गोली भी चल जाती। पुलीसवाले बेचारे तो खड्ग और सोंटों से अपनी आत्म-रक्षा करने के उपाय सोचने में ही फँसे रह गए। प्रतिक्षण बेचैनी और कटुता बढ़ती जा रही थी। हल्ले-गुल्ले और चीत्कारों की ध्वनि और भी भयंकर होती जाती थी। खुले हाथ और धमकी से भरी हुई मुट्ठियाँ आगे की ओर तनी हुई थीं, दंगाइयों की आँखें विद्रोह, घृणा और लोभ से जल रही थीं। औरतें मर्दों को उत्तेजित कर रही थीं। चिथड़े पहने हुए लड़के अपनी चीत्कारों से कानों के परदे फाड़ रहे थे। ज़रा सी उत्तेजना, एक आध भड़काने वाले शब्दों ही से खून-खराबी और लूट-पाट की आशंका हो रही थी।

ऐसे समय बड़े चौराहे के समीप, जहाँ भीड़ का सब से बड़ा भाग पहुँच गया था, काठ-कबाड़ ढोने की-सी एक बड़ी गाड़ी आ खड़ी हुई। किन्तु, उस गाड़ी में लकड़ी की दीवाल के स्थान में मोटे परदे लटक रहे थे और उन पर उस राज-घराने के चिह्न अंकित थे, जो अभी थोड़े समय पहले तक उस देश का शासन कर रहा था। उन घृणास्पद राज चिन्हों को देखकर दंगाइयों का क्रोध भड़क उठा। एक ही क्षण में गाड़ी घेर ली गई। उस भीड़ के तितर-बितर करने का पुलीस का प्रयत्न असफल सिद्ध हुआ। गाड़ीवान ने घोड़ों की लगाम खींच ली, कोड़ों की मार से घोड़े थर-थर काँपने लगे। पुलीस का एक आदमी पीछे की ओर से गाड़ी पर जा चढ़ा और उसने अपने कंधे पर से बंदूक उठाकर उसका घोड़ा चढ़ा लिया। आक्रमण के लिए यह उत्तेजना काफ़ी थी। एक अच्छे सधे हुए

धक्के से वह नीचे आ गिरा। गाड़ीवान की चीख़-पुकार और धमकी भरे हाव-भावों की ओर कौन ध्यान देता? उसके शब्द लोगों के बेचैन हल्ले-गुल्ले में ग़ायब होगए। सहसा गाड़ी के परदे गिर पड़े। परदे हटते ही, सब के सब—बहादुर और दिलेर भी—भयानक भय से भीत हो गए। मानों किसी अज्ञात आज्ञा से हल्ला-गुल्ला, चीख़-पुकार एक दम से बंद होगए; लोगों के मुँह पर ताले पड़ गए। इस दृश्य को देखकर आगे के लोगों की बोलती बंद हो गई, और पीछे के लोग किसी अनिष्ट की आशंका से भयभीत होकर आगे की ओर देखने के लिए गरदन उठाने लगे।

उस गाड़ी में था शाही पशु-शाला का भयानक शेर। कुछ तो उन पशुओं को पालने के भारी ख़र्चे के कारण और कुछ अपने पूर्व शासकों की प्रवृत्तियों के प्रति विराग के कारण नई सरकार ने उस शेर को अन्यत्र बेंच देने का निश्चय किया था। और इसीलिए, उस प्रातःकाल वह शेर रेल पर सवार करवाकर बाहर भेजे जाने के लिए लिवाया जा रहा था।

कपड़े का आवरण दूर होते ही वह शेर उठ खड़ा हुआ और हज़ारों के उस दल की ओर भयोत्पादक शाही दृष्टि से देखने लगा। किसी के मुँह से एक भी आवाज़ नहीं निकली, सब के सब साँस खींचे खड़े थे। उसके प्रज्वलित नेत्रों में एक अजनबी जगत की तसवीर खिची हुई थी। किन्तु, उस जगत की गति, विधि और प्रकृति कैसी थी? पत्थर के समान कठोर और निर्जीव है वह जगत। स्वर्ग और क्षितिज से विहीन, अप्रकट स्वर-लहरियों और अरुचिकर वाससे पूरित। क्या उसे निराशा और दुःख से उत्पन्न अमानुषिक चित्त-वेग का भान भी था? उसे, जिसे निराशा और

दुःख छू भी नहीं गए थे और मनोराग में तो उसे मतलब था केवल मूल से—स्वाभाविक से? क्या उसने उन व्याकुल लोगों—सम्मुख उपस्थित कुरूप मुखों—की ओर ध्यान दिया था? अथवा यह थी केवल उस दृश्य की उसपर अधूरी छाप? बाहर निकले हुए दाँत, सिकुड़ा हुआ माथा, आगे बढ़ी हुई ठोड़ी, आँखों में हिंसक ज्वाला—मीजीरा* की-सी निर्दय दृष्टि, दुर्बल का-सा चिड़चिड़ा कटाक्ष।

किन्तु, सम्मुख उपस्थित समुदाय तो अद्भुत भय से भीत हो गया। शेर तो उससे सर्वथा अपरिचित-सा था। गन्दी काल-कोठरियों में रहकर वे बुराइयों को पालते-पोसते, वहीं पड़े उनके बच्चे बिलबिलाते और बीमार जीवन की अवधि काटते, और वहीं पड़े वे अपने प्रति परम्परागत अन्याय की उदास विचार-धारा में हाथ-पाँव पटकते रहते। अपने जीवन के समस्त मार्गों में, यात्राओं में और अधम मनोवासनाओं के सपनों में वे प्रकृति की महत्ता और शक्ति की कल्पना भी नहीं कर सकते थे, जो उनके जगत के बाहर अविच्छिन्न रूप से विद्यमान है। वे काँपने लगे, उनकी नसें ढीली पड़ गईं, उनके सिर नीचे हो गए और नेत्र बंद। उनकी सघन भीड़ झीनी पड़गई, बीच-बीच में तोड़ आगए। ऐसा होने से पुलिसवालों के लिए प्रमुख उत्तेजक अगुओं को गिरफ़्तार करना आसान होगया, और एक बार तो वह दंगा सिर उठाते ही कुचल दिया गया।

---

* प्रतिद्रोह की एक प्राचीन रोमन देवी।

स्पेन : : : पेड्रो ए० एलार्कोन

लौकी वाला

जिस समय की यह बात सुनाता हूँ, उन दिनों बस्काबीटस 'काका' की कमर झुकने लग गई थी; और इसका कारण था उसकी पकी हुई उम्र। साठ वर्ष में से चालीस वर्ष उसने कोस्टिला के तट पर धरती के एक टुकड़े के जोतने-बोने ही में बिता दिये थे।

उस साल उसने अपनी बाड़ी में बोयी थी लौकियाँ, स्मारकों की बाड़ों पर सजे हुए गोलों के समान बड़ी-बड़ी। और इन लौकियों पर बाहर और भीतर नारङ्गी रङ्ग खिल उठा था, जिससे मालूम होता था कि जून का महीना आगया है। बस्काबीटस 'काका' सूरत-शक्ल से और पकने के हिसाब से एक-एक लौकी के भली प्रकार पहचानता था, और उसने उनके नाम भी रख छोड़े थे। विशेषतः उन मोटो-ताज़ी और रङ्ग में क़ीमती चालीस लौकियों के, जो मानो मुँह खोलकर कह रही थीं—"हमें

पकाकर खालो !" दिन भर वह उनकी ओर स्नेह भाव से देखता रहता, और उदास भाव से कहा करता—"जल्दी ही हमें बिछुड़ना पड़ेगा।"

आखिरकार एक दिन अपरान्ह के समय उसने उनके बलिदान का निश्चय कर लिया और अपनी उन प्यारी लौकियों में से अत्यधिक पकी हुई लौकियों की ओर, जिन्हें तैयार करने में उसे इतना कष्ट उठाना पड़ा था, संकेत करके इस भयंकर वाक्य का उच्चारण किया:—

"कल", उसने कहा—"इन चालीस को तोड़कर केडिज़ के बाज़ार में ले जाऊँगा। इन्हें खानेवाला कितना ख़ुश होगा !"

छोटे-छोटे क़दम उठाकर वह घर की ओर लौट गया, सारी रात उसने उस पिता के समान बिताई, जिसकी कन्या का विवाह दूसरे दिन होने वाला हो।

"ओ मेरी प्यारी लौकियो !" रह-रहकर वह उसास ले रहा था। आँखों में नींद का नाम नहीं था। किन्तु सोच-विचार के बाद उसने अपना निर्णय इन शब्दों के द्वारा प्रकट किया:—

"इन्हें बेंचने के सिवा मैं और कर ही क्या सकता हूँ ? इसी इरादे से मैंने इन्हें बोया था। कम से कम पन्द्रह डूरॉस तो इनकी बिक्री से आही जायँगे।"

अब कल्पना कीजिये उसके अतिशय आश्चर्य की, उसके अशान्त कोप की, उसकी निराशा की, जब कि दूसरे दिन प्रातःकाल बाड़ी में जाकर उसने देखा कि रात-भर में कोई उसकी चालीसों लौकियाँ चुरा ले गया है। बात को बढ़ाने की अपेक्षा मैं इतना ही कह देना चाहता हूँ

कि शेक्सपियर के यहूदी की भाँति वह अतिशय शोक-मिश्रित कोप से आविष्ट होगया; और 'शायलाक' के ये भयानक शब्द पागल की तरह बार-बार दोहराने लगाः—

"ओह, यदि उसे मैं पकड़ पाऊँ ! यदि उसे मैं पकड़ पाऊँ !"

अब वह करने लगा विचार शान्त चित्त से। और उसने निश्चय किया कि उसके प्यार की वे चीज़ें उसी के गाँव रोटा में तो बिक्री के लिये नहीं पहुँची होंगी; क्योंकि, वहाँ उनके पहचाने जाने का डर है। दूसरे वहाँ लौकियों के दाम भी बहुत कम उठते हैं।

"वे हैं केडिज़ में, निस्सन्देह !" उसने निष्कर्ष निकाला। "वह दुष्ट चोर रात को नौ-दस बजे के बीच में मुझे लूटकर आधीरात के बोट से भाग निकला है। आज अभी सबेरे के बोट से केडिज़ जाउँगा। यदि उस चोर को न पकड़ पाया और मेरे परिश्रम की पुत्रियों को न पा लिया तो मेरा नाम बस्काबीटस नहीं।" इतना कहकर वह बीस मिनट तक घटना स्थल पर और ठहरकर कुचली हुई लताओं को मानो पुचकारता रहा। अथवा चोरी गई लौकियों की गिनती करता रहा। अथवा अपराधी के लिये किसी कठोर दण्ड की तजवीज़ करता रहा। आठ बज गये और वह घाट की ओर दौड़ पड़ा।

बोट छूटने ही वाला था। वह छोटा बोट रोज़ाना ठीक नौ बजे मुसाफ़िरों को लेकर छूटा करता था, जिस प्रकार आधीरात के समय माल का बोट शाक-सब्ज़ी लेकर।

यह बोट था सबसे तेज़। क्योंकि यह घण्टे भर में, और कभी-कभी तो जब हवा अनुकूल होती, चालीस मिनट ही में ड्यूक डी-एर्कास

और हरकुलीज़ के प्राचीन नगरों को विभाजित करने वाली तीन लीग पार कर लेता।

उस दिन साढ़े दस बजे बस्कावीटस 'काका' केडिज़ के बाज़ार में शाक-सब्ज़ी की एक हाट के आगे जाकर रुक गया, और पुलिस के एक सिपाही को सम्बोधित करके बोला—

"यह लौकियाँ मेरी हैं। इसे गिरफ़्तार करो!"

और उसने उस हाट वाले को दिखा दिया।

"गिरफ़्तार करो, मुझे?" हाट वाला बहुत ही चकित और क्रोधित होकर चिल्ला उठा। "यह लौकियाँ हैं मेरी। मैंने इन्हें खरीदा है..."

"अपना खुलासा एलकेल्डी को सुनाना," बस्काबीटस 'काका' ने उत्तर दिया।

"मैं नहीं जाने का वहाँ।"

"जाना पड़ेगा।"

"तुम हो चोर।"

"तुम हो लुच्चे-लफङ्गे।"

"आदमियत से बात करो भाई। आपस में गाली-गलौज नहीं किया करते हैं।" दोनों विरोधियों को ढकेलकर पुलीस के सिपाही ने कहा।

तमाशबीनों की भीड़ जमा होगई। खाने-पीने की चीजों का निरीक्षक पुलिस का इन्स्पेक्टर भी वहाँ पहुँच गया।

पुलिस के सिपाही ने सब बातें समझाकर मामला उस अफ़सर को सौंप दिया। बड़ी शान के साथ इन्स्पेक्टर ने हाट वाले से प्रश्न किया:—

"ये लौकियाँ तुमने किससे खरीदीं?"

"रोटा के बूढ़े फ़ुलेनो से।" दुकानदार ने उत्तर दिया।

"हाँ, वही होगा, वही दुष्ट!" बस्काबीटस 'काका' चिल्ला उठा। "उसीपर तो मेरा शक है। उसकी बाड़ी में कुछ भी पैदा नहीं होता तो पड़ोसियों के यहाँ डाका डालता है, बदमाश!"

"मान लिया, रात को कोई तुम्हारी चालीस लौकियाँ चुरा लेगया", इन्स्पेक्टर ने बूढ़े किसान से तर्क किया—"पर तुम यह कैसे सिद्ध कर सकते हो कि यही लौकियाँ तुम्हारी हैं?"

"क्यों नहीं?" बस्काबीटस'काका' ने उत्तर दिया। मैं उन्हें ठीक उसी तरह पहचानता हूँ, जिस तरह आप अपनी लड़कियों को—यदि कोई हों तो। क्या आप को मालूम नहीं, मैंने उन्हें पाला-पोसा है? देखिए! यह रही 'गोलमटोल', वह रही 'मुटकी', और यह है 'पेटू', वह है 'लाली'। इसका नाम मैंने रखा था मेन्यूला, क्योंकि यह ठीक मेरी छोटी लड़की-सरीखी है।"

बिचारा वह बूढ़ा रोने-चिल्लाने लगा।

"यह सब तो ठीक," इन्स्पेक्टर ने उत्तर दिया—"किन्तु क़ानून तो इस बात से संतुष्ट नहीं होता कि तुम स्वयं अपनी लौकियों को पहचानते हो। यह आवश्यक है कि तुम इस बात का विश्वास करा दो कि यह वस्तु पहले से तुम्हारे अधिकार में थी, और अपने उस अधिकार की पुष्टि अकाट्य प्रमाणों से कर दो...सीनोर्स, हँसते क्यों हो? जानते नहीं, मैं क़ानून जानता हूँ?"

" बहुत ठीक, दूर जाने की ज़रूरत नहीं होगी। आपको यहीं प्रमाण

मिल जायगा कि ये लौकियाँ मेरी बाड़ी की हैं।" बास्कावीटस 'काका' ने तमाशबीनों को आश्चर्य-चकित करते हुए कहा।

अपने हाथ की एक छोटी-सी पोटली धरती पर पटककर वह भी नीचे बैठ गया और पोटली की गाँठ खोलने लगा।

इन्स्पेक्टर और उपस्थित भीड़ का आश्चर्य चरम सीमा पर पहुँच गया।

"क्या निकालेगा यह इसमें से ?" सभी पूछ रहे थे।

और उसी समय भीड़ में एक और तमाशबीन आ मिला। उसे देखते ही हाट-वाला चिल्ला उठाः—

"बहुत अच्छा किया, फ़ुलेनो 'काका'। तुम भी आ गए। यह बूढ़ा कहता है कि रात को ये लौकियाँ जो तुम मुझे बेंच गए थे, चोरी की हैं। तुम इसका खुलासा कर सकोगे..."—

नवागत बात सुनकर पीला पड़ गया। वह वहाँ से भाग जाना चाहता था। पर भागता कैसे ? इन्स्पेक्टर ने भी उसे वहीं ठहरने का हुक्म दिया।

इस बीच में, बास्कावीटस 'काका' ने चोरसे मुखातिब होकर कहाः—

" अब देखना अपने किए का फल !"

फ़ुलेनो 'काका' ने होश सँभालकर डपटकर कहाः—

"देखें, किसकी बात ठीक सिद्ध होती है ? यदि तुम मेरे सिर चोरी नहीं मँढ़ सके—अवश्य ही नहीं मँढ़ सकोगे—तो याद रखना, इस मान-हानि के लिए मैं तुझे जेल भेजकर रहूँगा। ये लौकियाँ मेरी हैं। एजीडो की अपनी बाड़ी में मैंने इन्हें बोया था। उसी बाड़ी में से और भी कई

बार लौकियाँ केडिज़ के इस बाज़ार में ला चुका हूँ। मेरी बात को कौन झूठी साबित कर सकता है?"

"देख लेना!" बस्काबोदस 'काका' ने पोटली खोलकर कहा।

पोटली में से उसने लौकियों के हरे डंठल बाहर बिखेर दिए। डंठलों में अब भी रस चू रहा था। हँसी के मारे बावला-सा होकर, घुटनों के बल बैठकर बूढ़ा किसान इन्स्पेक्टर और उपस्थित भीड़ को सुनाकर व्याख्यान देने लगाः—

"महाशयो, आपने कभी चुंगी अदा की है? की होगी, तो आपने चुंगी के अफ़सर के पास रसीद की वह हरी किताब ज़रूर देखी होगी। रसीद फाड़ने के बाद फटी हुई जगह से मालूम हो सकता है कि रसीद उसी का आधा हिस्सा है न?"

"यह रसीद-बुक की बात तुमने क्या चलाई?" इन्स्पेक्टर ने गंभीरता से पूछा।

"वही तो मैं साथ लेता आया हूँ। मेरी बाड़ी की रसीद-बुक यह रही। चोरी गई मेरी लौकियों के ये हैं डंठल। विश्वास नहीं हो, तो यह देखो। यह डंठल इस लौकी का है। कौन शक कर सकता है? और यह डंठल है इसका। और यह चौड़ा डंठल तो इसका है। बहुत ठीक! और यह...वह...और यह!"

अपनी बात के साथ वह लौकियों पर उन डंठलों को बैठा-बैठाकर दिखाता जाता था। लोगों को बहुत ही अचरज हो रहा था कि डंठलों के कटे हुए टेढ़े-मेढ़े नाके लौकियों के नाकों में बराबर बैठते जाते थे। वे डंठल मानो लौकियों के घावों के अवशेष चिह्न-स्वरूप थे।

अब तो सब के सब, पुलिस का सिपाही और इन्स्पेक्टर भी, नीचे झुककर लौकियों की जाँच में बस्काबीटस 'काका' की मदद करने लगे, और सभी बालकों की भाँति आनन्द-मग्न होकर कहते जाते थेः—

"हाँ, हाँ, यह देखो यह रहा। ठीक यही तो। क्यों, है न? और उसका वह रहा! हाँ, यही!"

गली-कूचों के बदमाशों की सीटी से, औरतों के कोसने से, वृद्ध किसान के विजय के आँसुओं से और जेल भेजने के उत्साह में पुलिसवाले के हाथ से चोर की पीठ पर घूँसों की बौछार से लोगों की हँसी दुगुनी हो गई।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि लोग इस घटना से अतीव प्रसन्न हुए। फ़ुलेनों 'काका' को लौकियों की कीमत के पन्द्रह ड्रुरॉस हाट वाले को लौटा देने पड़े; और बस्काबोटस 'काका' अत्यन्त सन्तुष्ट होकर घर लौटा, यद्यपि वह सारे रास्ते कहता आता थाः—

"बाज़ार में हाट के आगे कितनी लुभावनी मालूम देती थीं मेरी लौकियाँ! कम से कम मेन्यूला को तो लौटा लाना था, खूब छककर खाता उसे, और बीज बचाकर रख लेता।"

—०—

स्पेन : : : लियोपॉल्डो एलास

विदा कोरडेरा

वे थे तीन—सदैव वही तीन—रोज़ा, पिनिन और "कोरडेरा" ।

उस नीलाभ पहाड़ी की तलेटी में ज़मीन के एक त्रिकोण टुकड़े में था उनका चरागाह—हरा-भरा, मानो हरियाली का कालीन । चरागाहके नीचे की ओर की सीमा ओवीदो से गिजो के बीच की रेलवे लाइन तक पहुँच गई थी । चरागाह के एक कोने में तार का एक एकाकी खम्भा झण्डे के खम्भे की भाँति खड़ा था । रोज़ा और पिनिन के लिए तो वह *प्रतिनिधि-स्वरूप था बाह्य जगत का—एक अज्ञात और अनोखे जगत् का,* जिसका उनसे कोई सरोकार नहीं था ।

पिनिन उस खम्भे को रोज़ ध्यान से देखता और उसके उस अविचल और शांत-भाव पर विचार करता । अंत में उसने यही निर्णय किया कि और कुछ नहीं, यह तो सूखा-झाड़ बनने का प्रयास कर रहा है और

अपने सिरे पर लगे हुए सफ़ेद मिट्टी के प्यालों को वह अपना फल बनाना चाहता है। यह धारणा कर वह खम्भे तक चढ़ जाने का साहस दिल में बटोरता ; किन्तु, उसके सिरे तक कभी नहीं चढ़ पाया। वे चाँदी के समान चमकते हुए प्याले उसके लिए तो गिरजाघर के पवित्र पात्रों की भाँति अप्राप्यही रहे। ऊपर चढ़ने के प्रयास के बाद वह सर से सरक कर राज़ी-ख़ुशी ज़मीन के उस हरे गलीचे पर पाँव टेककर, भय के बोझ से हलका होकर, संतोष की साँस लेता।

रोज़ा, पिनिन की भाँति निडर और साहसी तो नहीं थी ; पर उस अज्ञात जगत् के प्रति उसके मनमें कहीं अधिक लोभ था। वह घण्टों उस खम्भे का सहारा लेकर बैठी रहती और उस तार की गूँज को ध्यान से सुनती। हवा के झोंकों से तारों की झंकार आस-पास के वृक्षों को आह के साथ मिलकर जब एक संगीत उत्पन्न करती, तो रोज़ा मुग्ध हो जाती। कभी वह उस गुंजार को संगीत समझकर सुनती, तो कभी वह अनुभव करती कि यह तो एक अज्ञात से दूसरे अज्ञात के बीच में कानाफूसी हो रही है। इतना अनुभव करने पर भी उसके मन में यह जानने की उत्सुकता नहीं होती थी कि वे दो अज्ञात आपस में क्या बातें कर रहे हैं? उसे इसकी क्या परवा थी? वह तो उसके उस निगूढ़ संगीत को सुनने में मस्त रहती।

'कोरडेरा' उम्र के साथ सयानी हो चुकी थी और इसलिए अपने साथियों की अपेक्षा अधिक मतलबी थी। संसार के सरोकार की उन बातों से वह परे थी। उसकी दृष्टि में तो उस खम्भे का एक ही उपयोग था—बदन खुजलाना। वह उससे यही काम लेती थी।

'कोरडेरा' एक गाय थी और उसने अपने जीवन में बहुत ऊँच-नीच देखे थे। वह घण्टों तक उस चरागाह में मौन और शांत-भाव से बैठी समय बिताती रहती; चरने की अपेक्षा किसी ध्यान में लीन रहती; जीवन को उस शांति, उस नील आकाश और उस माता वसुन्धरा को देख-देखकर वह सुख का अनुभव करती और अपनी बुद्धि के विकास का प्रयास करती।

बालकों के खेल में वह भी भाग लेती। वे दोनों भाई बहन उसकी रखवाली करते थे। कोरडेरा हँस सकती तो इस बात पर ज़रूर हँसती—वे दोनों बालक देख-रेख रखेंगे उसकी? कोरडेरा की? वे ध्यान रखते कि उनकी प्यारी गाय कहीं बाड़े को लाँघकर रेल की लाइन पर न चली जाय। वह क्यों कूदकर जायगी? रेल के मार्ग में दख़ल करने का उसे प्रयोजन ही क्या है?

उस निष्प्रयोजन कौतुक को देखने के लिए गर्दन उठाए बिना, अपनी मन की पसंद के अनुसार चुन-चुनकर घास चरने ही में वह परमानन्द का अनुभव करती। खा-पीकर वह किसी दरख़्त की छाया में बैठकर अपने ध्यान में मग्न हो जाती। बस, यही उसका नित्य का कार्य था। अन्य किसी काम से उसे मतलब भी नहीं था। उसके मन की शांति में ख़लल पड़ा था उस समय, जब उधर से रेल निकली। पहली गाड़ी को उधर से जाती देखकर वह डर से बेसुध होगई थी। पत्थर की दिवाल फाँदकर जानवरों के भयभीत टोले के साथ मीलों दूर तक भाग गई थी। कई दिन तक उसके मन में डर समाया रहा। जब-जब पहाड़ी की ओट में

से वह भीषण एंजिन अपना मुँह निकालता, 'कोरडेरा' का भय सहसा जाग उठता।

धीरे-धीरे उसने अनुभव किया कि यह लम्बी गाड़ी उसे कोई नुक़सान नहीं पहुँचाती। है तो यह एक सङ्कट ही, पर आती है और चली-जाती है। अपने विकट रूप से डराती ही है, मारती नहीं। अब उसके मन का डर भी कम होने लगा। अपना बचाव करने के लिए वह अब सिर झुकाकर पहले की तरह खड़ी नहीं होती। ट्रेन आकर चली जाती और वह चुप-चाप बैठी रहती। अन्त में तो यहाँ तक होगया कि रेल के प्रति उसके मन में न घृणा रही और न अविश्वास। वह उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखती।

रेल की उस नवीनता ने पिनिन और रोज़ा के मन पर अनुकूल ही भाव उत्पन्न किए। पहले-पहल तो उन्होंने भय से मिश्रित उत्तेजना का अनुभव किया। रेल को देखकर वे उछलने लगते; ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगते। बाद में अनेक अनजान आदमियों के बोझ को लादे, दिन में कई बार उस लोहे के विकराल सर्प को तेज़ी से दौड़ते हुए जाते देखकर वे अभ्यस्त हो गए। अब तो वह उनके लिए रोज़ का तमाशा होगया।

रेल की ओर उनका आकस्मिक ध्यान ही खिंचता था। उसका वह कोलाहल उस जंगल की नीरवता में उसी समय विलीन होजाता। पुनः वही शांति छा जाती। न किसी बाहरी प्राणी का मुँह दिखाई देता, न उसका स्वर सुनाई देता।

सूर्य की तप्त किरणों और भाँति-भाँति के जीव-जन्तुओं के बीच बैठकर पिनिन, रोज़ा और कोरडेरा दोपहर की प्रतीक्षा करते और आलस्य-

मय दुपहरिया बिताकर, दिन-ढलते, वे प्रसन्न चित्त से घर लौटते। सर्वत्र छाया फैल जाती; पक्षीगण चुप हो जाते; नभ की कालिमा में तारे अपना मुँह दिखाने लगते; प्रकृति की उस गंभीरता और शांति का प्रतिबिम्ब बालकों के स्वच्छ दिलों पर पड़ता; 'कोरडेरा' के समीप बैठकर वे मौन स्वप्न-संसार में विचरण करते। बीच-बीच में उनका ध्यान भंग होता अपनी प्यारी गाय के गले में बँधी हुई कर्ण-मधुर घण्टी की आवाज़ से!

दोनों बालक आपस में अटूट स्नेह-भाव से आबद्ध थे। उन्हें इस बात का तो ज्ञान था नहीं, कि उनमें आपस में क्या पार्थक्य है और वे दो क्यों हैं? उनका वह प्रेम माता के समान उस 'कोरडेरा' में भी उसी प्रकार था। 'कोरडेरा' भी अपने उन रक्षक बालकों को उतना ही प्यार करती। हाँ, वह उसका स्पष्ट प्रदर्शन नहीं कर सकती थी। बालकों के खेल-कूद में जब उसे कभी दिक्क़त भी उठानी पड़ती, तो वह अद्भुत धैर्य और सहन-शीलता दिखाती। अभी थोड़े दिन ही हुए, बालकों के पिता एन्तो-द-चिन्ता ने उस चरागाह को लिया था और 'कोरडेरा' उस हरे-भरे चरागाह का आनन्द लूटने लगी थी। इसके पहले तो उसे सड़क के किनारे पर उगी हुई घास खाकर ही पेट भरना पड़ता था।

ग़रीबी के उन दिनों में पिनिन और रोज़ा उसके लिए अच्छे-अच्छे स्थान खोजते और सड़कों पर चरनेवाले पशुओं का जो अपमान होता है, उससे उसे बचाने का ध्यान रखते। घर में जब घास नहीं होती और भूखों रहने की नौबत आती, उस समय उन बालकों की प्रेम-भरी देख-रेख और चिंता के कारण ही उस मूक पशु को अपना जीवन भार-स्वरूप नहीं

मालूम देता। गाय के ब्याने और बछड़े के लिए दूध छोड़ने के बीच में जब कभी इस बात का प्रश्न उपस्थित होता कि कितनी देर तक बछड़े को छोड़ा जाय, तो पिनिन और रोज़ा सदा बछड़े का पक्ष लेते। वे स्वयं थोड़े ही दूध में संतोष कर लेते। कई बार तो वे चुपके-से बछड़े को खोल देते। बछड़ा छलाँग मारकर दौड़ता हुआ अपनी माँ की विशाल देह के नीचे छिपकर दूध पीने लगता और 'कोरडेरा' अपने नेत्रों में कृतज्ञता का भाव भरकर उनकी ओर टुकुर-टुकुर ताकने लगती।

प्रेम का वह बंधन न कभी टूट सकता है और न वे मधुर स्मृतियाँ कभी मिट सकती हैं।

एन्तो-द-चिन्ता इस निर्णय पर आया कि उसका भाग्य उसके विपरीत है। इसीलिए तो गाय-गोरू बढ़ाने की बात तो दूर रही, बीसों कम-खर्चियाँ करके पाई हुई उस एक इस गाय को भी वह भली-भाँति नहीं पाल सकता। ज़मींदार का लगान बढ़ता हो चला जाता है। लगान तो चुकाना होगा; पास में पैसा नहीं। 'कोरडेरा तो घर के प्राणी की भाँति है। बच्चों की माँने मरते समय उसीके हाथ बच्चों को सौंपा था; तो भी, 'कोर-डेरा' को बेंचना ही पड़ेगा।

बच्चों की माता ने अपनी मृत्यु-शय्या पर पड़े-पड़े ही 'कोरडेरा' की ओर घूमकर जिन चिंताशील नेत्रों से देखा था, उनसे स्पष्ट मालूम हो रहा था कि वह अपने उन सुकुमार बालकों को उसी के हाथ में सौंपकर जा रही है। पिता जिस प्यार को नहीं समझ सकता, उस प्यार को वह अपने बालकों के लिए सुलभ बनाने के लिए 'कोरडेरा' को उनकी दूसरी माता बनाकर जा रही है।

एन्तो-द-चिन्ता को इस बात की क़द्र थी। पर बेचारा करता क्या? गैया को बेंचना होगा, इसकी चर्चा उसने बालकों से नहीं की।

एक दिन शनिवार को सूर्योदय के पहले ही, पिनिन और रोज़ा को सोते देखकर वह 'कोरडेरा' को खोलकर ले चला। गाय की रस्सी पकड़ कर जब वह घर के बाहर हुआ, उस समय उसका दिल दुःख के बोझ से दबा जा रहा था।

बालकों ने जाकर देखा—पिता भी नहीं हैं, गाय माता भी नहीं है। वे इसका कारण नहीं समझ सके। उन्होंने इतना तो जान लिया कि गाय पिता के साथ बहुत ही अनमनी होकर गई होगी। सूर्यास्त के समय पिता थका-माँदा धूलि-धूसरित लौटकर आया और उसने चुप-चाप गाय को खूँटे से बाँध दिया। पिता अपने बाहर जाने का मतलब नहीं बता रहा था। बालक भावी विपत्ति की आशंका से डर गए।

उस दिन गाय नहीं बिकी। अपने हृदय की कोमलता और ममत्व के कारण उसने गाय की क़ीमत इतनी ऊँची रखी थी, कि कोई उसे ख़रीदने को राज़ी नहीं हुआ। संभवतः कोई ख़रीदार उस क़ीमत तक भी गाय ख़रीदने को राज़ी हो जाता; पर वह तो ख़रीदार को देखते ही नाक-भौं सिकोड़ लेता। उसने मन को इस प्रकार समझाया कि वह तो 'कोरडेरा' को बेंचने के लिए तैयार है ही, पर कोई 'कोरडेरा' को ख़रीदने वाला भी तो चाहिए! वह घर लौट आया। पास-पड़ोस के किसानों का साथ होगया। वे भी अपने-अपने जानवरों को ला रहे थे। उनके दिलों में भी अपने-अपने जानवरों के साथ जितने दिनों का वास्ता रह चुका है, उतना ही कम व अधिक दर्द हो रहा था।

जिस दिन से पिनिन और रोज़ा ने भावी विपत्ति की आशंका को, उसी दिन से उनके दिल को चैन नहीं रहा। उनकी आशंका उस समय और भी दृढ़ हो गई, जब ज़मींदार दो-तीन बार आकर बेदख़ली का डर दिखा गया।

'कोरडेरा' को बेंचना ही पड़ेगा और शायद पानी के मोल ही!

दूसरे शनिवार को बालक पिनिन अपने पिता के साथ निकट के एक बाज़ार में गया। वहाँ क़साइयों के हाथ में पैने छूरे देखकर डर के मारे उसका कलेजा बैठ गया। उनमें से एक के हाथ 'कोरडेरा' का बेचान हो गया। उसकी पीठ पर निशान लगा दिया गया। गाय को घेरकर वे घर ले चले। रास्ते भर गाय के गले की घण्टी उदासी से बज रही थी।

एन्तो चुप था, पिनिन की आँखें सूजकर लाल हो गईं थीं, रोज़ा तो बेंचने की बात सुनकर 'कोरडेरा' की गर्दन में अपनी बाहें डालकर फूट-फूट कर रोई।

वे अगले कुछ दिन खेत में बहुत ही उदासी से कटे। 'कोरडेरा' अपने भाग्य से अनजान थी। वह तो वैसी ही धीर, गंभीर और शांत थी, जैसी क़साई की कुल्हाड़ी खाने तक बनी रहेगी। किन्तु, पिनिन और रोज़ा निश्चेष्ट भाव से घास पर पड़े रहते, उनकी ज़बान से एक भी शब्द नहीं निकलता, भावी भय से वे बेचैन रहते।

वे तार को, तार के खंभों को और रेल को, घृणा की दृष्टि से देखने लगे। इन चीज़ों का सम्पर्क तो उसी जगत् से है, जो उनके विवेक से परे है और जो आज उन के सर्वस्व को, उनकी एकमात्र माता को, उन-से लूटने पर उतारू हो रहा है।

थोड़े ही दिनों में विदाई की घड़ी आ गई, क़साई आया और वह क़ीमत दे गया। एन्तो ने उसे शराब का प्याला पिलाकर अपनी गाय की बड़ाई की बहुत सी बातें सुनाईं। पिता को इस बात का विश्वास ही नहीं होता था कि 'कोरडेरा' एक नए मालिक के पास नहीं जा रही है और वहाँ वह आदर-सत्कार और सुख नहीं पायेगी। शराब और जेब में भरी चाँदी के नशे में चूर होकर उसने उसके गुणों का बखान किया। वह कितना दूध दे सकती है, कितने हल चला सकती है* आदि सब बातें विस्तार-पूर्वक बताईं। सुनने वाला तो मुस्कराकर रह गया। क्योंकि वह तो जानता था कि उसके भाग्य में अब क्या बदा है।

पिनिन और रोज़ा एक दूसरे का हाथ पकड़कर दूर ही से उस शत्रु को देख रहे थे। खड़े-खड़े वे उन गुज़री हुई बातों को सोच रहे थे,—'कोरडेरा' की सुख-स्मृतियों को याद कर रहे थे। जब गाय का रस्सा खींचा गया, तो दोनों उसकी गर्दन से लिपटकर फूट-फूटकर रोने लगे। उसे चूमने लगे। थोड़ी दूर तक तो वे उस सँकड़े मार्ग पर अपनी प्यारी 'कोरडेरा' के साथ मुँह लटकाए गए। अंत में गाँव की सीमा पर से झाड़ियों में छिपती हुई 'कोरडेरा' को देखकर वे मन मसोसकर रह गए।

उनकी वह विमाता उनसे सदा के लिए विदा हो गई।

"विदा, कोरडेरा!" रोज़ा ने आँखों में आँसू भरकर पुकारकर कहा—विदा, 'कोरडेरा,' माता, विदा!

* जो गायें दूध नहीं देतीं, युरोप में उनसे खेतों में काम लिया जाता है।

"विदा, कोरडेरा", पिनिन ने भी दोहराया। दुःख से उसका गला रुँध गया। "विदा'—दूर से बहुत ही दुःख के क्षीण स्वर में गाय की घण्टी ने उत्तर दिया। उस करुणा-जनक दुःख का वह स्वर रात्रि के शून्य में विलीन हो गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही पिनिन और रोज़ा अपने चरागाह में गए। उसकी वह नीरवता पहले कभी इतनी भयानक नहीं मालूम दी थी। इससे पहले वह कभी मरु-भूमि के समान नहीं मालूम दिया था।

अकस्मात् पहाड़ी की ओट में धुआँ दिखाई दिया और थोड़ी ही देर में आँखों के आगे से रेलगाड़ी गुज़री। एक कटघरे के-से डब्बे की छोटी-छोटी खिडकियों में से उसमें भरे हुए पशु दिखाई दे रहे थे।

उस बाहरी जगत की भीषण क्रूरता का—लूट का कटु अनुभव करके बालकों ने रेलगाड़ी की ओर क्रोध से अपना हाथ उठाया।

"वे उसे क़साई-घर में ले जारहे हैं।"

"विदा, कोरडेरा!"

"विदा, कोरडेरा!!"

पिनिन और रोज़ा ने रेल और तार को घृणा की दृष्टि से देखा—वे तो उस क्रूर जगत् के चिन्ह-स्वरूप हैं, जो उनकी जन्म भर की साथिन को अपने पेट की भूख बुझाने के लिए लूटकर ले गया है।

"विदा, कोरडेरा!"

"विदा, कोरडेरा!!"

—o—

बेलजियम : : : केमिल लेमोनियर

काँच का महल

——:o:——

"कौन ? मेरे प्यारे जीन ?"

फर्श के क़ालीन में उसकी पद-ध्वनि विलीन हो गई। उसने सोचा, उस अधखुले वातायन के समीप वह सुख की नींद सो रही है, जिसके परदों पर पवन थपकियाँ लगा रहा है। किन्तु, एलिस के चोखे कानों से उसकी वह हलकी पद-ध्वनि भी छिपी नहीं रही।

"हाँ, तुम्हारा जीन ही..."

स्वागत के लिए पसारी हुई उन कोमल, किन्तु रुग्ण भुजाओं की ओर वह बढ़ा। भुजा पसारकर मानो वह उसके आगमन से आन्दोलित वायु की लहरों का स्पर्श करके ही उसके आलिंगन का सुखानुभव कर रही थी। समीप आते ही उसने उसके वस्त्रों का स्पर्श किया, अपनी कुरसी पर रखे हुए उसके चेहरे पर हाथ फेरा।

"हाँ, तुम्हीं तो हो..." उसने धीरे से कहा—"इन हाथों से तुम्हारे आगमन की सूचना पाना कितने सौभाग्य की बात है! इन बिचारी आँखों का काम ये हाथ ही तो करते हैं...पास आ जाओ, प्यारे!...कैसी मधुर सुगंध है तुम्हारी—इस रमणीय दिवस की गंध से सनी हुई!"

"प्यारी—मेरी प्यारी!"

उस मुरझाए हुए चेहरे के आवरण में छिपे हुए उन अँधियारे पलकों को उसने चूम लिया। उसने उसे अपने आप नहीं उठने दिया। अपने दृष्टि-विहीन नेत्रों के उस प्रेम-पूर्ण चुम्बन को बनाए रखने के लिए उसने दोनों हाथों से उसके मुख को थामकर अपने गाल से सटा लिया।

"बस, इसी तरह—सदा सर्वदा!...तुम्हारे ओठों की उष्णता, ऐसा मालूम देता है, मेरे नेत्रों का फिर खोल देगी! ओह, मेरे जीन! इन गई हुई आँखों से मैं तुम्हें फिर देख सकूँगी?"

श्रान्ति का उसने बहुत ही कम मालूम दे, ऐसा हलका-सा संकेत किया।

"अब, एलिस..."

"सचमुच मैं बहुत ही हठीली हूँ। मुझे दुत्कारो। मैं तो उसी तरह घण्टों रह सकूँगी, बिना सोचे-बिचारे, केवल इसी हर्ष में मग्न कि तुम मेरे पास—बिल्कुल पास हो।...तुम तो जानते हो, मुझे दिखाई नहीं देता। मैं जो कुछ देखती हूँ, तुम्हारे द्वारा...। बैठो जीन...। बहुत देर से तुम बाहर थे...। बहुत-सी बातें मुझे सुना सकोगे।"

एक तिपाई खींचकर वह उस पर बैठ गया। उसके वे नन्हें-नन्हें हाथ उसकी अँगुलियों में थे।

"बाग़-बग़ीचों के पेड़ों में नए पत्ते निकल आए हैं", उसने कहा—"मैं तुम्हारी सखियों से मिला था, जेनी और एमिलाइन से।...उनका सौन्दर्य खिला हुआ है, तुम्हारी तरह ही मेरी प्यारी एलिस !..."

उस नेत्र-विहीना स्त्री के गहरे अंधकार में भी हास्य की आभा दिखाई दी।

"फिर वही बात सुनाओ प्यारे !...यह जानने में कितना सुख है कि दूसरों में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ है !...सभी चीज़ें वैसी ही हैं जैसी मैंने उन्हें देखा था—उस समय जब अँधेरे में मुझे टटोलना नहीं पड़ता था !...और तुम क्या उस औरत से नहीं मिले जो मेरी बातों में इतना रस लेती थी और जिसके बारे में मेरे मन में सदा ग़लत-फ़हमी बनी रहती है ?"

"मैडम ड्यूलैक ? ओह, वह तो अब तुम-जैसी नहीं रही। उसके केश हो गए हैं सफ़ेद। वह तो बहुत ही अक्खड़ है !"

"जानते हो, उसकी आवाज़ ही से मैं तो घबड़ा जाती हूँ। उसकी ज़बान से मालूम होता है उसके दिल है ही नहीं। तो भी उसकी बोली है मीठी—उसकी बोली में तो कभी-कभी कोयल की-सी कूक सुनाई देती है।...वह यहाँ आती है, तो मैं नहीं जान पाती किसलिए उसने यह कृपा की है। माफ करना, मेरे प्यारे जीन ! मेरी इन लम्बी-चौड़ी बातों के लिए। जब से दिखना बंद हुआ है, मेरा सारा विवेक आँखों में समा गया है।...वह औरत मुझे दिखाई देती है—बहुत ही अशुभ और असुन्दर।...और, तब मुझे न जाने क्यों ऐसा मालूम देने लगता है कि तुम मुझे तनिक धोखा-सा दे रहे हो।"

"पगली ! तू तो बहुत ही सुन्दर है !"

"ओह, मुझे कितना डर लगता है !...यह देखो—मेरे गालों में यह सिकुड़न तो नहीं है ? आज कुछ बाल सफ़ेद तो नहीं हो गए ? ओह, मैं वैसी ही बनी रहूँ जैसी पहले थी—वही तुम्हारे प्यार की पुतली एलिस ।"

उसने पुनः अपनी पीली भुजायें पसारीं, किसी गोपनीय जीवन से हिलती हुई, कोमल और दीप्तिमान पुष्पित शाखा की भाँति। उसकी अँगुलियाँ सदा किसी अदृष्ट रेशम...हवा के तारों की लैस बुनती-सी दिखाई देतीं। खिड़की के प्रकाश में उसने अपने मुख के पास जीन के मुख को भी कर लिया। अपने अंधे नेत्रों से वह जीन की ओर ऐसे ताक रही थी मानो सचमुच देख रही है। उन आँखों से वहउसके मन की बात जान लेना चाहती है।

"नहीं, नहीं एलिस ! एक भी सिकुड़न नहीं है और न एक भी बाल सफ़ेद..। तुम्हारे गाल तो गुलाब के समान हैं—और प्यारी ! तुम्हारा चिकना ललाट है ग्रीष्म के सुनहले गेहुँओं-सा।"

"और तुम ? तुम भी बहुत ही सुन्दर हो मेरे जीन ! मेरी निर्जीव आँखों के लिए तुम सदा जवान और सुन्दर हो।...मैं तो तुम्हें उसी रूप में अब भी देखती हूँ, जिस रूप में मैंने पहिले साक्षात् देखा था।...तो भी कभी-कभी ऐसा मालूम देता है कि तुम में थोड़ा परिवर्त्तन हो गया है। जब तुम मुझे कहते हो कि मैं वैसी ही सुन्दरी हूँ जैसी पहले थी, तब क्या तुम्हारी वाणी ठीक वैसी ही होती है ?"

दस वर्ष हुए, एलिस की आँखें चली गई थीं। दिवस का प्रकाश पहले धुँधला हुआ और फिर सर्वथा विलीन हो गया, उसकी उन दीप्तिमान आँखों पर हलका-सा परदा पड़ गया। वह एक अँधेरी दीवार के उस ओर रहती थी। सारी दुनिया से परे रखने वाली उस दीवार में एक द्वार था उसके पति जीन का निर्मल कोमल प्यार, जो उसके लिए जीवनप्रद और हाथ के हलके स्पर्श ही से जानने योग्य था। गुलाब की भाँति एक-एक पंखुड़ी बखेरकर उसका प्यारा मुखड़ा मुरझा गया। चेहरे के खड्डों के चारोंओर डरावनी सिकुड़नें पड़ गईं। शक्ति के साथ उसके सुनहले बालों के वे छल्ले भी गायब हो गए, और वह केश-पाश हो गया सफ़ेद। अब तो वह मनमोहिनी एलिस दुर्बलकाय प्रेतमात्र रह गई थी।

किन्तु, प्यार के उस कौतुक ने उसके दिल में यह बात बैठा रखी थी कि अब भी उसका यौवन बना हुआ है। क्योंकि, दस वर्ष से असत्य कथन के द्वारा उसकी दृष्टि-विहीनता के कारण जीन उसे उसके सौन्दर्य के बारे में धोखे ही में रखे हुए था। यह भ्रम उसके लिए तो काँच के एक नाज़ुक महल के समान ही था। सपने की तरह वह जादू के उस बोदे महल में बास करती थी। दिन के प्रकाश की समाप्ति के पहले ही उसके नेत्रों का जीवन रुक गया था। नेत्र-विहीनता के दुःख से पोषित होकर कई प्रतिमायें उसके मनोमन्दिर में जाग्रत हो गईं। और उसकी आँखों के सम्मुख इस अभेद्य अंधकार के ऊपर सुनहली आभा का संसार रचकर एक जादूगर की भाँति जीन ने अपनी प्रेम-पूर्ण वंचकता से उसके मन में यह बात बैठा दी थी कि उसके चारोंओर किसी बात में परिवर्त्तन नहीं

हुआ है। वे फूल भी उसी प्रकार फूले हुए हैं। उसके उन प्यारे दिनों की भाँति अब भी वैसे ही दिन होते हैं। ऐसी कल्पना में रहकर एलिस हलकी पोशाक और फीते धारण किया करती थी (क्योंकि वह तो वैसे ही कपड़े पहनने की इच्छा रखती थी जैसे उसने अंतिम बार दर्पण के सामने पहने थे। यद्यपि बुढ़ापे के कारण वह केश भूषे-अनुचित चोचले बाज़ी और उसके जर्जरित शरीर के कारण सर्वथा विपरीत दिखाई देती।

एक दिन, खुली हुई खिड़की में से आती हुई हलकी पवन के साथ गली का हल्ला-गुल्ला सुनती हुई वह सो रही थी, क्योंकि उसे बाहर जाने का शौक़ नहीं था, वह तो स्वेच्छा से उसी आराम-कुर्सी पर पड़ी रहकर अपने कष्ट को भोगना पसंद करती थी। सहसा कमरे के उस ओर से आती हुई आवाज़ से उसकी नींद टूट गई। वह जीन के स्वर को तो पहचान ही गई; पर उसके साथ व्यंग पूर्वक बात करती हुई मैडम ड्यूलेक की आवाज़ भी छिपी नहीं रही, जो उसे सदा चिंतित कर जाया करती थी। कुरसी पर से उठकर, आगे को ओर हाथ पसारकर, क़ालीन पर धीरे-धीरे क़दम रखकर वह उसी ओर बढ़ी, जिस ओर से आवाज़ आ रही थी।

"सुन्दरी तो तुम हो!" जीन ने कहा—"मेरे लिए तो तुम सौन्दर्य, आशा और हर्ष का केन्द्र हो।···देखो, मैं तुम्हारे चरणों में पड़ा हूँ। तुम्हारा होकर ही मैं जीने-जैसा हुआ हूँ!"

बाँसुरी-सी हँसी फूट पड़ी।

"अपनी पत्नी को भी ऐसी ही बात नहीं कहते क्यों? अपने उस बदसूरत चेहरे और सफ़ेद बालों को लेकर भी क्या वह मन में नहीं

समझती कि तुम्हारे लिए तो वह सुन्दरता की मूर्त्ति बनी हुई है? ओह, प्यारे! कैसी अजीब बात है यह।"

उन्होंने देखा—द्वार के प्रकाश में एक पतली-सी छाया प्रकट हो रही है।

"जीन! मेरे जीन!"

काँच का वह महल टूट गया—उसका दिल टूट गया।···एलिस ने एक आख़िरी क़दम उठाया, एक चक्कर खाकर वह अपने पति के चरणों पर गिर पड़ी।

———

बेलजियम : : : जॉर्ज रॉडनबैच

शहर का शिकारी

———:०:———

उस दिन मैंने अपने मित्र त्त—को पीछे से पहचान लिया। वह मुझसे कुछ आगे वाटिका की ओर जा रहा था। उसकी लम्बी क़दमों और छड़ी की फुर्तीली हलचल से कोई भी ताड़ सकता था कि वह आज निहायत खुश है। छड़ी से वह हवा में रेखायें-सी खींच कर मानो अपनी हथेली की रेखाओं और उनके साथ ही अपने भाग्य की प्रतिलिपि कर रहा हो।

कुछ क्षण के बाद मुझे मालूम पड़ा कि वह एक औरत का पीछा कर रहा है। यह क्या? त्त—और औरत के पीछे? वह था भले घर का, समाज में सम्मानित, सुप्रसिद्ध, चतुर ही नहीं पर भले आदमियों की बैठकों में बैठकर ही अपने सौन्दर्य के बल पर अनायास अनेक रमणियों का हृदय जीत लेने में समर्थ।

उसके प्रेम-प्रपंच तो क्या? चुलबुलाहट की बात भी कभी सुनने में

नहीं आई। वह था विवाहित, यही नहीं, लोगों का यह विश्वास था कि वह अपनी पत्नी के प्रति पूर्ण अनुरागी है।

तो भी, वही आज एक राह-चलती के पीछे पड़ा हुआ था। मैं समझ गया, मामला गंभीर है। जैसा दिखाई देता था उससे अधिक जटिल है।

प्रकट में तो ऐसा चरित्रवान किन्तु भीतर ही भीतर इतना कपटी कि ऐसे दुराचार और विचार-हीन विषय-लालसा की शंका भी नहीं की जा सके!

वाटिका के उस छोर पर वह रुका। ऐसा मालूम दिया कि अब वह पीछा छोड़ रहा है। सहसा वह मेरी ही ओर घूमा। हम दोनों आमने-सामने आ मिले।

"हूँ, पकड़े गए इस बार!" मैं कह उठा—"क्यों गलियों में औरतों का पीछा करते फिरते हो?"

"हाँ, अवश्य। इसी मतलब से तो मैं बाहर निकला करता हूँ।"

उसके इस कथन को व्यंग-पूर्ण समझकर मैं तो अचरज में पड़ गया। पर वह तो अपनी बात पर अड़ा ही रहा। मानो उसका वर्णन सत्याभास-रूप हो और उसे शीघ्र प्रकट कर देना आवश्यक।

"वर्ष भर में इन दिनों सभी शिकार के लिए निकलते हैं!" उसने कहा—"मैं गाँवों में नहीं जाता, मेरा मैदान यही है। ये बड़े नगर ही जंगल हैं और उनमें हैं शिकार के लिए नानारूप की बहुमूल्य रमणियाँ। मैं रोज अपराह्न में शिकार के लिए बाहर निकलता हूँ। देख लेता हूँ कि मेरी वेश-भूषा दुरुस्त है न? जैसे एक शिकारी अपनी बंदूकों और कुत्तों की जाँच कर लिया करता है।

"और मैं आनन्द लूटता हूँ मनोराग का, प्रतीक्षा के मीठे दर्द का, निगहदारी का, आतुर अनुसरण का और अपने आखेट पर विजय पा लेने का—ठीक एक शिकारी की भाँति।

"शिकार भी मिलते हैं भाँति-भाँति के। कई औरतें ऐसी होती हैं जो पक्षी की भाँति पंख फड़-फड़ाकर गली में से निकल जाती हैं। कई औरतें तीतर की तरह रंग-बिरंगी पोशाकें पहनकर निकलती हैं, तो कई औरतें भीड़ में से प्रकट होकर उसी में ऐसी ग़ायब हो जाती हैं, जैसे घास में खरगोश। और कई औरतें होती हैं खूँखार। पहली ही मुलाक़ात में भालू का-सा झपट्टा मार बैठती हैं।

"इन सब का पीछा करना क्या आखेट नहीं है? ऐसी औरतों का पीछा करना! और एक होशियार शिकारी की भाँति अस्त्र-शस्त्र ठीक से सजाना, उचित मौक़ा देखना, निशाने को ठीक से साधना। वार दूर से हो या पास से? चिड़िया को छेद दिया जाय या उसके पर काट दिए जायँ? प्रशंसापूर्ण शब्दों से औरत को फुसलाया जाय अथवा चतुराई से झटपट दो-चार बातें बनाकर विरोध प्रकट करने के पहले ही सामने वाली को चुप कर दिया जाय?

"इस प्रकार चाहिए स्थिर-चित्त, औरत के रंग-ढंग को तत्काल पहचानने के लिए, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार शिकारी अपने शिकार को पहचानता है; उसकी चाल की आवाज़ से, चाहे वह आँखों की ओट में ही क्यों न हो।"

"मैं तो समझता था तुम अपनी स्त्री के प्रति निष्कपट हो!" बहले हुए दिल और उससे भी अधिक आश्चर्य-चकित भाव से मैंने कहा।

"मैं तो हूँ", मेरे मित्र ने उत्तर दिया—"स्वेच्छाचारी। यह तो है दूसरी बात। कोई भी सच्चा शिकारी अपने शिकार को नहीं खाता। चाहे चकोर हो, तीतर हो, बारहसिंगा हो अथवा ख़रगोश ही हो। शिकारी के मुँह में पानी नहीं आता। और मैं भी जिस औरत का पीछा करता हूँ—शिकार करता हूँ—कभी उसका उपभोग नहीं करता।

"आखेट है एक मानसिक आनन्द का विषय—स्वयं अपने ही में पूर्ण एक स्नायुसंबंधी हर्ष। आगे और पीछे जो सामने आता है उसी में उसका मज़ा छिपा रहता है। अस्त्र-शस्त्र से सज्जित होना, सवार होकर निकल पड़ना, घात लगाकर बैठना, आखेट की खोज में लगना, उस पर वार करना, आड़ में से उसे निकाल बाहर करना, प्रत्येक छोटे से छोटे कौतुक का अनुभव करना, आखेट की चालों को जानना, निगरानी रखना, दिल की उछल-कूद और सफलता के अनिश्चय का सामना करना, पहुँच में आई हुई चिड़िया का फुर्र से उड़ जाना—है तो एक पल भर की ही बात, किन्तु सब कुछ उसी पर अवलम्बित रहता है। और उसके बाद, अपने श्रम-पूर्ण ग़रूर का संतोष, शिकार में मारे हुए प्राणियों का परिमाण और अपनी वीरता का मित्रों के सम्मुख अतिरञ्जित वर्णन !... बस इसी में तो आखेट का मज़ा है। एक ही बात है पशु-पक्षी का पीछा करो अथवा औरत का। निशाना मारने का ठीक मौक़ा तो वर्णन-मात्र है।..."

"बहुत चतुर हो तुम," मैंने मित्र से कहा—"किन्तु तुम्हारी यह चतुराई और कल्पना मुझे तो अस्वाभाविक-सी मालूम देती हैं !"

"बिल्कुल नहीं," "उसने विरोध किया—"मेरी बात की स्वाभाविकता में शङ्का की तनिक भी गुंजाइश नहीं। जैसा मैंने कहा ठीक वैसा ही

करता भी हूँ मैं। इस विनोद को मैं नहीं ढूँढ़ निकालता तो इन गलियों में मैं ऊबकर कभी का ढेर हो जाता। बाहर घूमते समय यही तो मेरे मनोरञ्जन का साधन है। मैंने कहा न, मैं बाहर निकलता हूँ शिकार के लिए! ओह, इस आखेट की मैं कितनी रोचक कथायें तुम्हें सुना सकता हूँ!

"और वे दुर्घटनायें, जोखम भरी खोज, आखेट को माँद में खदेड़ने का वह आनन्द-दायक भय! मुझे भी ऐसे ही अनेक बार अनुभव हुए हैं। औरत का पीछा करने में तो उत्तेजना है, उबाल है। बहुधा ऐसा क्षण आ उपस्थित होता है, जब रुकना मुश्किल हो जाता है। ऐसे अवसर पर मैंने अपने आखेट का पीछा उनके निवास-स्थान—उनके निजी घर अथवा होटल-तक किया है; जहाँ से उनका सुन्दर मुखड़ा मुझे लुभाता रहा है।

"पर इसके लिये चाहिये नम्रता-पूर्ण चतुराई और धूर्तता! एक ही क्षण में निर्णय करना, और उसके अनुसार आचरण करना! सहारे से निकल जाना, अथवा दूर से, बहुत देर तक अथवा थोड़ी देर ही! मुस्काराना अथवा चेहरे का भाव शिथिल कर देना! अपने को भावानुगामी प्रकट करना अथवा विजेता! औरत के पीछे सीढ़ियों तक चढ़ जाना अथवा उसकी खिड़की के नीचे प्रतीक्षा में खड़े रहना! कुछ औरतें होती हैं ऐसी, जिनका अनुसरण किया जाना चाहिए सूनी गलियों में, और कुछ का, मुख्य चौराहे पर लोगों की भीड़ में! किसी औरत को सकड़ी गली की ओर घसीटना ठीक होता है तो किसी को गाड़ी में!

"और इस प्रकार मैंने इस विषय में पारंगत पण्डित की भाँति अनेक बार सफलता प्राप्त की है।...सहस्रों छल-बल! और ये सब उस निश्चित सीमा से परे नहीं, जहाँ आकर पीछा की हुई औरत अपने अधीन हो जाती है। घुल-मिल जाने की तत्परता, निकट भविष्य में आत्मार्पण करने का वचन, अथवा प्रेम-पूर्ण चञ्चलता का प्रदर्शन मात्र ही, जिससे सफलता का अनुमान किया जा सके—बस, इतने ही से मैं संतुष्ट हो जाया करता हूँ।

"इतना होते ही मैं अपने आखेट का पीछा छोड़ देता हूँ। दूसरे शब्दों में, मैं बात-चीत के बीच ही में अथवा वचन की पूर्त्ति के पहले ही भाग छूटता हूँ। बारीकी से देखने पर सफलता के तीन रूप दिखाई देंगे। सफलता की पकाई ही से मुझे मतलब रहता है, ऐसा हुआ और मेरा काम समाप्त। मैं पहले ही कह आया हूँ, सच्चा शिकारी अपने शिकारको कभी नहीं खाता। और मैं भी अपनी पराजिता रमणियों से और कोई मतलब नहीं सिद्ध करता।..."

मेरा मित्र चुप होगया। अपनी भूरी आँखें उठाकर उसने दूर पर कुछ देखा, मानो कोई नया शिकार उसकी नज़र में पड़ गया हो। उसकी वे बातें सुनने पर मुझे आज पहले पहल मालूम दिया कि कैसी हैं वे भूरी आँखें—फ़ौलाद के समान, बन्दूक़ की नाली के समान।...सहसा उसके नथने फूल उठे। उसकी नाक थी शिकारी कुत्ते की सी—हरेक वस्तु सूँघने में प्रवीण। शिकारी का-सा जोश उसमें छागया। कुछ दूरी पर से निकल गई वह तीतर की भाँति रङ्ग-बिरङ्गी पोशाक से सजीली सुन्दरी—सचमुच आखेट के योग्य!

तो भी मेरे मित्र की कथा से मैं अव्यवस्थित होरहा था और उसके विषय में उद्विग्न। इस निरुद्देश उत्तेजना का अभिप्राय? इस मानसिक असंयम का तात्पर्य? मैंने मेरी चिन्ता को छिपाए रखा, तो भी उसका यत्किंचित पता तो मैंने उसे दे ही दिया।

"ध्यान रखना!" मैंने कहा—"यही आनन्द कभी भयानक भी हो सकता है। इन बातों में है एक अनोखा सनकीपन—पागलपन!"

"चाहे जो हो," उसने कहा—"एक मैं ही तो हूँ नहीं, शहरों में मेरे जैसे अनेक शिकारी भरे पड़े हैं। किसी औरत का पीछा करते समय मैं कभी-कभी क्या देखता हूँ कि मेरी ही तरह और चार-पाँच आदमी भी उसके आगे-पीछे जा रहे हैं। ऐसा करना तो शिकार को तङ्ग करना है। बहुत से निशानों के बीच में से चिड़िया उड़ ही जाती है।...

"इसके अतिरिक्त शिकार के अनेक प्रकार होते हैं, रुचि भी विभिन्न होती है! कई लोग विशेषज्ञ भी होते हैं। कुछ लोग विशेष प्रकार की औरतों की खोज ही में रहते हैं—गौरवर्ण अथवा साँवली लता की भाँति लचकीली कमर वाली, पतली अथवा मांस से भरी हुई मोटी-ताज़ी। कुछ लोग पसंद करते हैं नवयुवतियों ही को। किन्तु उनके केश भूरे ही हों। शोकित स्त्रियों के पुजारी मिलते हैं सार्वजनिक बगीचों में। जहाँ उनकी काली पोशाक सूखे पत्तों के साथ ख़ूब फबती है। और कुछ आदमी तो पीछे पड़े रहते हैं विधवाओं ही के।...

"ये शिकारी हैं, वे जो घायल शिकार पर वार करने ही में मज़ा पाते हैं। यहाँ भी अनेक प्रकार के शिकारी होते हैं। कुमारियों का पीछा करने वाला होता है उसके समान, जो जङ्गली बतख़ ही पर हाथ चलाता है

जो आदमी कठोर स्त्री को वशीभूत करने पर अड़ा रहता है, वह है जङ्गली भालू के शिकारी की भाँति।..."

"और तुम्हारा मिलान कितनों से खाता है?" मैंने अपने मित्र से पूछा—"बड़े शहरों के जङ्गलों में यदि इतने शिकारी भरे पड़े हैं तो बेचारी निर्बल स्त्री-शिकारों के विनाश का तो क्या ठिकाना होगा?"

"हाँ, इसकी भी गणना कर ली गई है। जिन औरतों का पीछा किया जाता है, उन चार में से एक का विनाश होकर रहता है। इस गणना में उन औरतों की तो गणना अलग ही समझी जानी चाहिए, जो अज्ञात गाँवों से आती हैं और पेरिस की इस उत्तेजना से चौंधिया जाती हैं। एक चक्र की भाँति आगे भागती रहती हैं और अन्धी होकर अनायास जाल में फँस जाती हैं। और इन सब बातों का आधार होता है बहुत ही सूक्ष्म—एक शब्द, एक क्षण विशेष, सद्भाग्य, शिकारी का चातुर्य!"

"यहाँ भी आखेट का-सा दृश्य ध्यान देने योग्य है। औरत ठीक एक शिकार के समान है—जितनी आसानी से वह वश में आ सकती है उतनी ही आसानी से निकल भी भागती है।"

—०—

डेनमार्क : : : जेन्स पिटर जेकब्सन

दो दुनिया

—:o:—

सेलज़ैक नदी ऐसी कोई सुन्दर नहीं है। उसके पूर्वीय तट पर एक छोटा-सा गाँव बसा हुआ है—दीन, हीन, उदास, मूक-वत् !

ऐसे भाग्यहीन भिक्षुकों की भाँति, जिन्हें घाट-उतराई के लिए गाँठ में पैसा न होने के कारण नदी के किनारे ही रुक जाना पड़ा है, गाँव के वे जीर्ण-शीर्ण घर कंधे से कंधा मिलाकर उस मलिन नदी के तट पर अपनी जर्जरित लकड़ियों के सहारों से निराशा के अंधकार में हाथ टटोलते हुये-से मालूम देते हैं। घास-फूस के बने छप्परों की भौंहों के नीचे घरों की वे खिड़कियाँ बाहर की ओर ताक रही हैं—उन भव्य प्रासादों को, जो नदी के उस तट पर सुदूर सोने-सरीखे प्रान्त में बन-उपवन की हरियाली के बीच एक-एक, दो-दो बने हुए हैं। उन निर्धन घरों में तो प्रकाश का भी नाम नहीं। वहाँ तो अटूट शान्ति और अन्धकार का

साम्राज्य है। वह नदी भी मानो अविराम, किन्तु मंथर गति से अपनी राग में मस्त बहती चली जाती है। पड़ोसियों के भार-स्वरूप जीवन से उसे कोई सरोकार ही नहीं।

सूर्यास्त का समय था, टिड्डी-दल से आकाश छा गया। हवा के साथ उनके परों की फुर-फुर आवाज़ उस किनारे की झाड़ियों की आवाज़ से टकराकर कभी तेज़ होती और कभी उसीमें मिल जाती।

नदी में एक नाव बढ़ी चली आ रही थी। एक दुर्बल, क्षीण-काय स्त्री नदी-तट पर अपने घर के झरोखे में सींकचों के सहारे बैठी उस नाव की ओर देख रही थी। अपने दुबले हाथ से उसने आँखों पर छाया कर रखी थी; क्योंकि जहाँ नाव थी वहाँ सूर्य की चमकती हुई सुनहली किरणें पड़ रही थीं और ऐसा मालूम होता था मानो नाव सोने के दर्पण पर तैर रही है।

संध्या के क्षीण उजाले में भी उस रमणी का पीला चेहरा चमक रहा था, मानों वह स्वयं प्रकाशमान है। जिस प्रकार रात्रि के अंधकार में भी समुद्र की लहरें फेनिल होकर श्वेत हो जाती हैं, उसी प्रकार स्पष्ट। भय से भरी हुई उसकी आँखें कुछ खोज रही थीं; उसके थके हुए चेहरे पर मन की दुर्बलता से उत्पन्न हास्य की एक क्षीण रेखा अंकित थी, तो भी उसके उभरे हुए मस्तक की रेखाओं में निराशा स्पष्ट लक्षित थी।

उस छोटे-से गाँव के गिरजाघर में घण्टा बजने लगा।

सूर्यास्त की ओर से अपनी आँख उठाकर उसने इधर-उधर देखा, मानो वह गिरजाघर के उस निनाद से बचना चाहती थी। उस अविराम नाद के उत्तर में उसे कहना पड़ा—

"मैं प्रतीक्षा नहीं कर सकती—नहीं कर सकती !"

किन्तु, आवाज़ तो आती ही रही।

किसी कष्ट से पीड़ित की भाँति वह झरोखे में चक्कर काटने लगी। निराशा की छाया और भी गहरी होगई। वह बड़े-बड़े निःश्वास लेने लगी। रुलाई आने पर भी वह रो नहीं सकती थी।

वर्षों से वह एक ऐसे कष्टदायक रोग से पीड़ित थी, जो उसे घड़ी भर भी चैन नहीं लेने देता था। उसने बहुत सी 'सयानी' औरतों की सलाह ली। बहुत से 'पवित्र' नदी-नालों में वह भटकती फिरी, किन्तु निरर्थक। अन्त में वह सेंट बर्थोलोम्यू की सितम्बर-यात्रा में भी हो आई, और वहाँ एक काने आदमी ने उसे सलाह दी कि ग्रेडलवीस के फूल, काँच का एक टुकड़ा, अनाज की भूसी, क़ब्रिस्तान की दूब और अपने बालों की एक गुच्छी कफ़न के एक टुकड़े में बाँधकर नदी पर से अपनी ओर आती हुई किसी हृष्ट-पुष्ट युवती स्त्री की ओर फेंकने से उसका रोग उसे छोड़कर उस नई स्त्री में चला जायगा।

उसके आँचल में इस समय यही टोना बँधा था। जादू के इस टोने को बाँधने के बाद यही पहली नाव उसकी ओर आ रही थी। वह झरोखे के छज्जे पर झुक गई। अब उसे साफ़ दिखाई दे रहा था। नाव में छः यात्री थे। सबके सब अपरिचित थे। सब के अग्रभाग में नाविक डाँड़ लिए खड़ा था और पतवार के समीप एक युवती स्त्री बैठी थी अपने युवक प्रेमी के पार्श्व में। दूसरे यात्री नाव के बीच में बैठे थे।

वह रोगिणी स्त्री झरोखे में पूरी झुक गई। उसके चेहरे की रेखायें तन गईं, उसका हाथ आँचल में था। उसकी छाती धड़कने लगी,

साँस तो प्रायः अवरुद्ध ही होगया। होठ काँप रहे थे, आतुरता से गाल सुर्ख हो गए। अपनी प्रज्वलित आँखों को फाड़कर वह नाव की प्रतीक्षा करने लगी।

यात्रियों की बोली स्पष्ट सुनाई देने लगी।

"मौज मज़ा?" एक ने कहा—"यह तो नास्तिकों का ख़याल है। इञ्जील में यह शब्द एक भी जगह नहीं आया है।"

"मुक्ति?" दूसरे ने पूछा।

"नहीं। मेरी बात सुनो।" एक ने कहा—"यह तो होता ही है कि वाद-विवाद में बहुधा विषय-भंग हो जाता है। अच्छा हो, हम उसी बात को छेड़ें, जो हमने शुरू की थी।"

"हाँ तो, यूनानी········"

"नहीं, पहले फ़ोनीसियन!"

"तुम्हें फ़ोनीसियनों के बारे में मालूम ही क्या है?"

"कुछ भी नहीं, तो भी हम फ़ोनीसियनों को भूल क्यों जायँ?"

"नाव उस घर के समीप पहुँच गई। ठीक उसी समय किसी ने अपनी सिगरेट सुलगाई। दियासलाई के क्षीण प्रकाश की झलक पतवार के समीप बैठी हुई रमणी पर पड़ी। प्रकाश की उस एक झलक में भी उस रमणी के अधखुले नेत्रों और अधरों पर सुख की हँसी और यौवन की आभा दिखाई दे गई। प्रकाश समाप्त हो गया। पानी में किसी वस्तु के गिरने की आवाज़ सुनाई दी, नाव आगे निकल गई।

एक वर्ष बाद। नदी के श्याम तन पर रक्ताभा फैलाने वाले कान्तिमान बादलों के बीच सूर्य उस पार डूब रहा था। तटस्थ मैदानों में

ताज़ी हवा बह रही थी। आज टिड्डी-दल नहीं था। नदी की नन्ही-नन्ही लहरों की मर्मर-ध्वनि मात्र तट के झाड़ियों से बात कर रही थी। नदी में एक नाव बढ़ी चली आ रही थी।

वह वृद्धा स्त्री नदी के किनारे खड़ी थी···। उस युवती की ओर अपना जादू-टोना फेंकते ही वह बेहोश हो गई थी। उस भयानक चित्त-विकार—अथवा पड़ोस में आए हुए नए डाक्टर—के कारण रोग कुछ शान्त होगया था। कुछ महीने तक उसकी हालत सुधरती रही और बाद में वह पूर्णतया स्वस्थ भी हो गई। निरोगिता के आनन्द में वह पागल-सी होगई, पर वह आनन्द थोड़े दिन ही रह सका। उसका चित्त उदास, दुःखी और निराशा-पूर्ण रहने लगा। उसकी आँखों के आगे रात-दिन नाव वाली उस युवती की सूरत नाचती रहती। अन्त में वह कल्पना तो विलीन हो गई, किन्तु उसे मानो वही सब प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा। युवती दिन रात रो रही है, कभी चुप भी हो जाती है, तो आँखों के ओझल नहीं होती। एक सपना-सा उसके आगे बना ही रहता—आँखे फाड़-फाड़कर वह उसकी ओर घूर रही है।

आज वह नदी-तट पर आकर खड़ी हो गई थी। उसके हाथ में एक लकड़ी थी, जिससे वह नदी के कीचड़ में 'क्रास' का चिन्ह बना रही थी। बीच-बीच में कान खड़े करके सुनती और 'क्रास' बनाती जाती।

उसी समय गिरजाघर के घंटे बज उठे।

बड़ी सावधानी से उसने अंतिम 'क्रास' बनाया। लकड़ी फेंक दी और घुटने टेककर वह प्रार्थना करने लगी। धीरे से उठकर वह नदी में घुस गई। बग़ल तक पानी में पहुँचकर उसने हाथ जोड़ लिए और नदी के

उस श्यामल जल में गोता खागई। अतल जल का प्रवाह उसे बहा ले गया। गहराई में दो-चार डुबकियाँ खिलाकर जल का वह प्रवाह उसी प्रकार गाँव और खेतों को पार करता हुआ बह गया।

नाव बहुत ही समीप पहुँच गई थी। वेही यात्री उस नाव में थे जो आज से एक वर्ष पहले थे। आज वे अपनी वैवाहिक यात्रा में जा रहे थे। पति पतवार के समीप बैठा था और वधू नाव के मध्यभाग में खड़ी थी, बदन पर सुहावने रंग का शाल और सिर पर लाल रंग की ओढ़नी ओढ़े। बिना खुले मस्तूल के सहारे खड़ी वह कुछ गुनगुना रही थी।

घर के आगे से वे जल्दी से निकल गए। उसने नाविक की ओर इशारा किया, ऊपर नभ की ओर देखकर वह गाने लगी—नभ में दौड़ लगाते हुए बादलोंपर दृष्टि लगाकर वह गाने में लीन होगई......आनन्द-मय विजय का संगीत सर्वत्र व्याप्त होगया।

नारवे : : : ब्जार्सन

पिता

जिस आदमी की कहानी यह है, वह अपने इलाके में सबसे अधिक धनवान और प्रभावशाली था।

उसका नाम था---थोर्ड ओवेरास। एक दिन वह लम्बे शरीर वाला उत्साही धनवान पादरी के निवास-स्थल में आकर उपस्थित हुआ।

"मेरे घर पुत्र उत्पन्न हुआ है," उसने कहा---"मैं उसे बप्तिस्मा के लिए लाना चाहता हूँ।"

"उसका नाम क्या होगा?"

"फिन---मेरे पिता के नाम के अनुसार।"

"और, उसके धर्म के माता-पिता कौन होंगे?"

उसने थोर्ड परिवार के अनेक मुख्य संबंधी स्त्री पुरुषों के नाम बताए।

"और भी कुछ कहना है?" पादरी ने पूछा।

वह किसान तनिक संकोच में पड़ गया।

"मैं चाहता हूँ कि उसका बप्तिस्मा मैं स्वयं अपने हाथ से करूँ"—उसने सोच-विचारकर कहा।

"सप्ताह के किसी दिन?"

"हाँ, इसी शनिवार को मध्यान्ह के बारह बजे।"

"और भी कुछ?" पादरी ने पुनः पूछा।

"और कुछ नहीं।" अपनी टोपी को सँभालकर उसने जाने की तैयारी करते हुए कहा।

पादरी उठ खड़ा हुआ। "ठहरो तो!" थोर्ड की ओर बढ़कर उसने कहा। उसका हाथ अपने हाथ में लेकर उससे चार आँखें करके उसने कहा—"भगवान् करे, बालक तुम्हारे लिए मंगलमय हो!"

सोलह वर्ष के बाद एक दिन वही थोर्ड पादरी के निवास-भवन में पुनः उपस्थित हुआ।

"निस्संदेह थोर्ड! इस आयु में भी तुम्हारा शरीर सोने के पासे सरीखा है। इतने वर्ष बाद भी तुम्हारे शरीर में एक भी परिवर्तन नहीं दिखाई देता।"

"क्योंकि, बीमारी मुझे कभी छू भी नहीं गई"—थोर्ड ने उत्तर दिया।

इसका पादरी ने कोई उत्तर नहीं दिया। किन्तु, थोड़ी देर बाद पूछा—"कहो आज यहाँ किस मतलब से आना हुआ?"

"कल मेरे बेटे का स्थापन-संस्कार करवाना है, उसी के लिए आज आया हूँ।"

"बड़ा होशियार बालक है वह !"

"मैं तो पादरी को, इससे पहले कि वह गिरजाघर के बालकों में कौन-से नम्बर पर आता है यह न देख लूँ, कुछ भी नहीं देना चाहता।"

"वह सब में अव्वल आवेगा।"

'यही मेरा अनुमान है। ये लो दस डालर पादरी साहब की भेंट-स्वरूप !"

"मेरे योग्य और भी कोई सेवा ?" थोर्ड की ओर देखकर उसने पूछा।

"और तो कुछ नहीं।"

थोर्ड वहाँ से चला गया।

आठ वर्ष और बीत गए। एक दिन पादरी के घर के बाहर हल्ला-गुल्ला सुनाई दिया। आदमियों का एक टोला उस ओर आ रहा था और उनमें सबसे आगे था थोर्ड। उसी ने सबसे पहले प्रवेश किया।

पादरी ने आँख उठाकर देखते ही उसे पहचान लिया।

"थोर्ड ! आज तो बहुत से साथियों के साथ आए हो ?" उसने कहा।

"आज आया हूँ अपने बेटे की शादी की सूचना प्रकाशित करवाने। ये मेरे पास श्रीमान् गुडमंड खड़े हैं। इन्हीं की पुत्री स्टोर्लिडन से उसका विवाह निश्चय हुआ है।"

"वह तो अपने इलाक़े में बड़ी धनवान कन्या है।"

"लोग ऐसा ही कहते हैं", अपने बालों को एक हाथ से पीछे की ओर करते हुए उसने कहा।

पादरी थोड़ी देर तक विचार-मग्न बैठा रहा। फिर उसने बिना तर्क-वितर्क किए अपने रजिस्टर में नाम-पते लिखने शुरू किए। लोगों ने उसके नीचे अपने हस्ताक्षर कर दिए। थोर्ड ने पादरी की टेबिल पर तीन डालर रख दिए।

"एक ही डालर तो चाहिए?" पादरी ने कहा।

"मुझे विदित है। मेरा यह इकलौता बेटा है। मुझे उसके विवाह में अपने दिल के अरमान पूरे करने हैं।"

पादरी ने डालर ले लिए।

"यह तीसरी बार है, थोर्ड! जब कि तुम्हें अपने बेटे के लिए यहाँ आना पड़ा है।"

"अब तो मैं उससे घुल-मिल गया हूँ।" अपनी जेबी किताब बंद करते हुए उसने पादरी से बिदाई ली।

साथ के लोग उसके साथ लौट गए।

दो सप्ताह बाद, एक दिन शांत और स्वच्छ संध्या के समय बाप-बेटा झील में नाव पर बैठकर स्टोर्लिडन के घर विवाह की बातचीत करने के लिए जा रहे थे।

"यह मोड़ सुरक्षित नहीं है—" कहकर बेटा अपनी बैठक ठीक करने के लिए उठ खड़ा हुआ।

सहसा उसके पाँवों के नीचे से नाव खसक गई और उसने अपने हाथ फैला दिए। उसके मुँह से एक चीख़ सुनाई दी और वह उलटे सिर गिर पड़ा।

"रस्सा पकड़ लो !" पिताने चिल्लाकर कहा। झट से कूद कर उसने रस्सा लटका दिया।

दस-पाँच बार हाथ-पाँव पटककर बेटा बस के बाहर होगया।

"ठहरो तो !" पिताने चिल्लाकर कहा और स्वयं तैरकर उसकी ओर बढ़ा। अंतिम बार अपना मुखड़ा दिखाकर, एक ग़ोता खाकर बेटा डूब गया।

थोर्ड को इस बात का विश्वास नहीं हुआ। नाव पकड़कर वह उस स्थल पर पहुँचा, जहाँ बेटा अंतिम बार दिखाई दिया था। वह इस विश्वास से उस स्थान को ध्यान से देख रहा था कि बेटा अभी ऊपर आता ही होगा। पानी में बुद-बुदे दिखाई दिए। कुछ और बुद-बुदे दिखाई दिए और अंत में एक बड़ा सा बुद-बुदा पानी की सतह पर आकर फूट गया। झील उसी भाँति शांत और दर्पण की भाँति निर्मल होगई।

लगातार तीन दिन और तीन रात तक लोगों ने पिता को उस स्थान के चारों ओर नाव खेते देखा। उसकी नींद-भूख सब हराम होगई। अपने पुत्र की मृत देह के लिए वह झील पर चौकसी लगा रहा था। तीसरे दिन, दिन निकलते ही उसे पानी पर शव तैरता दिखाई दिया। अपने हाथों पर उठाकर वह उसे पहाड़ी पर के अपने खेत में लेगया।

इस दुर्घटना के एक वर्ष बाद की बात है। बसंत की एक संध्या के समय पादरी ने द्वार पर कुछ आहट सुनी। पादरी ने द्वार खोल दिया। घर में प्रवेश किया एक लम्बे दुर्बल मनुष्य ने। उसके बाल सफ़ेद होगए थे और उसकी गर्दन झुकी हुई थी। वह था थोर्ड !

"इतनी देरी से घर के बाहर निकले ?" उसके सामने खड़े होकर पादरी ने कहा।

"हाँ, विलम्ब होगया।" थोर्ड उत्तर देकर बैठ गया।

पादरी भी बैठ गया, बिना बोले-चाले। बहुत देर के मौन के पश्चात् थोर्ड ने कहा—

"मेरे पास कुछ है जिसे मैं ग़रीबों को बाँट देना चाहता हूँ। अपने मृत पुत्र की स्मृति में यह सब न्यौछावर कर देना चाहता हूँ।"

वह उठ खड़ा हुआ। टेबिल पर अपनी थैली खोलकर वह पुनः बैठ गया। पादरी ने गिनना शुरू किया।

"यह तो बहुत है।" उसने कहा।

"मेरे खेत की यह आधी क़ीमत है। मैंने उसे आज बेंच डाला है।"

पादरी बहुत देर तक चुप बैठा रहा। अन्त में उसने पूछा, बहुत ही विनम्र शब्दों में—

"अब क्या करोगे, थोर्ड ?"

"कुछ न कुछ अच्छा काम ही।"

वे उसी प्रकार बैठे रहे। थोर्ड की आँखें ज़मीन पर थीं और पादरी की आँखें थोर्ड पर। सहसा पादरी ने धीरे से और विनम्रता से कहा—

"मेरा ध्यान है, अन्त में वह पुत्र तुम्हारे लिए वास्तव में मंगल-कारक सिद्ध हुआ है।"

"हाँ, मेरा भी यही ध्यान है," थोर्ड ने ऊपर की ओर देखकर कहा। दो बड़े-बड़े आँसू उसके गालों पर से लुढ़ककर नीचे गिर गए !

स्वीडन : : : ऑगस्ट स्ट्रिनबर्ग

पेट बनाम प्रेम

जब युवक गुस्तव फॉक ने लुइज़ा के साथ अपनी शादी का प्रस्ताव उसके पिता के सम्मुख उपस्थित किया, तब उस वृद्ध सज्जन ने सबसे पहले पूछा—

"तुम्हारी आमदनी कितनी है?"

"क़रीब सौ क्रोनर प्रतिमास। किन्तु, लुइज़ा—"

"और बात रहने दो," बात काटकर फॉक के भावी श्वसुर ने कहा—"तुम्हारी आमदनी तो काफ़ी नहीं है।"

"तो क्या हुआ? मेरा और लुइज़ा का प्रेम तो अटूट है, हम दोनों आपस में बहुत ही प्यार करते हैं, महाशय!"

"हो सकता है। मेरी बात का जवाब दो। साल भर में तुम बारह सौ ही तो पैदा करते हो?"

"हम दोनों का परिचय पहले-पहल लिंडिगो में हुआ था।"

"सरकारी वेतन के सिवा ऊपर की भी कुछ आमदनी है क्या?" लुइजा के पिता ने पूछा।

"हाँ, थोड़ी बहुत। मेरा तो अनुमान है कि मेरी आमदनी काफ़ी रहेगी। और, आपको मालूम ही है कि हम दोनों में स्नेह-भाव—"

"हाँ, ठीक तो है; किन्तु असली बात पर ध्यान दो।"

"ओह," विवाहेच्छुक युवक ने उत्साह-पूर्वक कहा—"फ़ुरसत के समय और काम करके भी मैं काफ़ी कमा सकूँगा।"

"क्या काम करोगे? कितना?"

"मैं फ्रेंच पढ़ा सकूँगा, अनुवाद भी कर लूँगा। प्रूफ़ ठीक करने का भी बहुत-सा काम मिल जाया करेगा।"

"कितना अनुवाद कर लिया करोगे?" हाथ में पेंसिल उठाकर वृद्ध ने पूछा।

"ठीक तो नहीं कह सकता। पर आजकल मैं एक फ्रेंच पुस्तक का अनुवाद दस क्रोनर प्रति फर्मे के हिसाब से कर रहा हूँ।"

"कितने फर्मे उसमें हैं?"

"बीस-पचीस फर्मे तो हैं ही।"

"अच्छा, अढ़ाई सौ क्रोनर, इस तरह समझ लो। और?"

"अभी से क्या कह सकता हूँ?"

"और, तुम विवाह करने चले हो? विवाह को आसान काम समझते हो क्या? मालूम है, जब परिवार बढ़ने लगेगा, तब खाने-पीने और पहनने का भी संकट पड़ जायगा।"

"किन्तु" फॉक ने आपत्ति करते हुए कहा—"बच्चे क्या इतनी जल्दी थोड़े ही होने लगेंगे ? हम दोनों का प्यार—"

"बच्चों के शुभागमन की बात तो निश्चित ही समझो"—कुछ नरम होकर लुइजा के पिता ने आगे कहा :—

"तुम दोनों शादी पर तुले हुए हो। मुझे इसमें भी संदेह नहीं कि तुम दोनों आपस में हृदय से प्यार करते हो। यह देखकर तो मुझे अपनी स्वीकृति दे ही देनी पड़ती दीखती है। किन्तु, तुम्हें अपने समय का इस प्रकार उपयोग करना चाहिए, जिससे तुम्हारी आमदनी बढ़े।"

इस स्वीकृति पर युवक फॉक आनन्दित हो उठा। अपना हर्ष प्रकट करने के लिए उसने वृद्ध के हाथ को चूम लिया। हे भगवन्, वह कितना सुखानुभव कर रहा था इस समय !—और लुइजा भी। उस दिन बाँह में बाँह डालकर जब वे घूमने के लिए निकले, तब कितने प्रसन्न और गर्वित थे वे। सभी ने इस भावी दम्पत्ति के हर्ष का लक्ष्य किया।

शाम को जब वह उससे मिलने के लिए आया, उसके पास प्रूफों का एक बण्डल था। जो वह ठीक करने के लिए ले आया था। वृद्ध पर इस बात का अच्छा प्रभाव पड़ा। इसी बात पर उस उद्यमी युवक को अपनी प्रेयसी का चुम्बन-लाभ हुआ। किन्तु, एक रात को वे दोनों नाटक में गए और लौटते समय गाड़ी में बैठकर लौटे। उस रात के मनोरंजन में दस क्रोनर पूरे हो गए। उसके बाद भी, पढ़ाने जाने के बदले वह शाम को अपनी प्रेयसी के आस-पास ही दिखाई देता।

ज्यों-ज्यों शादी का समय नज़दीक आता गया, घर-बार सजाने की चिंता बढ़ती गई। उन्होंने बढ़िया काठ के दो पलँग ख़रीदे। उनके लिए

कमख्वीदार नरम गद्दे खरीदे और पक्षियों की कोमल पाँखों की दो रजाइयाँ भी खरीदीं। लुइज़ा का केश-पाश सुनहला था, उसके लिए आसमानी रजाई ही फबती। घर सजाने वाले दुकानदारों के यहाँ वे गए। लाल छाया वाला फानूस खरीदा। वीनस की एक सुन्दर-सी प्रतिमा भी। खाने-पीने का पूरा सामान खरीदा गया—छुरी, काँटे, काँच के बर्त्तन, टेबिल, कुर्सियाँ सब कुछ। भोजनालय सजाने में उन्हें लुइज़ा की माता की भी मदद मिल गई। उस जवान वकील के लिए ये दिन दौड़-धूप के थे—कभी घर की खोज में भटकना पड़ता, कभी नौकर ढूँढ़ना पड़ता, साज-सामान की देख-रेख रखनी पड़ती, पुरजे चुकाने पड़ते।

इस दौड़-धूप में गुस्तव को कमाने की फुरसत कहाँ से मिलती? किन्तु, शादी हो जाने के बाद वह कमाई में मन लगायेगा, ऐसा उसका विश्वास था। बहुत ही किफ़ायत से काम चलायेंगे। शुरू-शुरू में दो-चार कमरों में ही रह लेंगे। बहुत बड़े मकान को सजाने का झंझट भी बहुत है। रहने की जगह तो आवश्यकता के अनुसार छोटी ही होनी चाहिए। इसीलिए उन्होंने अपना निवास-स्थान एक मकान के पहले मंज़िल पर छः सौ क्रोनर सालाना में किराए लिया। उसमें दो कमरे, एक भोजन-गृह और एक सामान-घर था। पहले तो लुइज़ा की मन्शा थी कि किसी हवादार मकान में ऊपर की मंज़िल में तीन कमरे किराए पर लिए जायँ। किन्तु, रहने की जगह में ऐसी कौन-सी बात है, चाहे जैसी जगह क्यों न हो। दरअसल, आपस में भरपूर प्रेम होना चाहिए।

कमरे सज गए। सोने का कमरा सामान से भर गया। दोनों पलंग ही सारी जगह रोककर एक दूसरे के सहारे इस प्रकार पड़े थे, मानो दो

रथ जीवन को लम्बी यात्रा एक साथ कर रहे हों। वे आसमानी रजाइयाँ, दुधिया चादरें और दोनों के नामों से अंकित तकिए अपनी नवीनता के कारण शोभा पारहे थे। लुइजा के लिए एक बड़ा-सा शीशा लगा था, और दूसरे कमरे में बारह सौ की लागत का एक पिआनो रखा था। वही भोजनालय, बैठक और लिखने पढ़ने का कमरा था। इस कमरे में भी एक सुन्दर लिखने की टेबिल, भोजन की टेबिल और उसकी कुर्सियाँ, सुनहले चौखट का एक शीशा, किताबों की एक आलमारी सजी हुई थीं।

शनिवार की रात्रि को विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ और रविवार को बहुत देर तक पति पत्नी सोते रहे। गुस्तव पहले उठा। सूर्य का उज्ज्वल प्रकाश चीरों में से दिखाई दे रहा था। किन्तु उसने परदे नहीं हटाए। लाल छाया वाले फानूस को जलाकर उसके क्षीण प्रकाश की शोभा अपनी प्रेयसी के मुख पर और वेनिस की उस प्रतिमा पर देखने लगा। वह रूपवती युवती संतुष्ट और प्रसन्न चित्त से छककर सो रही थी। नींद जल्दी टूटने का कोई कारण भी नहीं था। रविवार का दिन था, गाड़ी घोड़ों की गड़गड़ाहट भी नहीं थी। गिरजाघर के घंटे इस प्रकार बजने लगे, मानो मनुष्य और स्त्री की सृष्टि पर वे हर्ष प्रकट कर रहे हों।

लुइजा ने अँगडाई ली। गुस्तव कपड़े पहिनने के लिए दूसरे कमरे में चला गया था। खाना लाने का हुक्म देने के लिए वह रसोई-घर में गया। ताँबे और टीन के वे नए बर्त्तन कितने चमक रहे थे! और ये सब थे उसके अपने और अपनी प्रिया के। उसने नौकर को हुक्म दिया कि पड़ोस के होटल से खाना जल्दी मँगवा ले। होटल के मालिक को पहले दिन ही सूचना मिल चुकी थी। उसके यहाँ सब तैयारी थी।

शयनागार की ओर आकर पति ने आहिस्ते से आगल बजाकर पूछा—"भीतर आ जाऊँ क्या ?"

एक महीन-सी आवाज़ सुनाई दी—"ओ ! प्यारे ! बस, थोड़ी-सी देर । मैं अभी आई ।"

गुस्तव ने स्वयं टेबिल ठीक की । खाना आते सफ़ेद चादर पर वे नए-नए बरतन सजा दिए गए । बधू का वह गुलदस्ता सुइजा के पास ही पड़ा था । सबेरे की पोशाक में ज्यों ही उसने प्रवेश किया, सूर्य की किरणों ने उसका स्वागत किया । अभी तक उसकी थकावट दूर नहीं हुई थी । एक आरामकुरसी को टेबिल के समीप खींचकर वह उस पर बैठ गई । सुरा-देवी की दो चार बूँदों से उसे चेत हो गया और नमकीन मछली के एक-दो ग्रास से उसकी भूख खुल गई । देखो तो, अपनी बेटी को इस प्रकार शराब पीते देख लेगी तो माँ क्या कहेगी ? ख़ैर, यही तो विवाह हो जाने का मज़ा है । विवाह के बाद चाहे जो करो, कोई रोक-टोक नहीं है ।

युवा पति अपनी नववधू की बड़े प्रेम से ख़ातिर करता है । कितना आनन्द है ! पहले भी बहुत बार बढ़िया से बढ़िया पदार्थ खाने का अवसर आया है । पर यह आनंद तो सर्वथा नवीन और अद्भुत है । हलकी शराब का एक गिलास और ओइस्टर का एक प्लेट ख़ाली करते हुए वह यह सब सोच रहा था । दूसरी ओर मन में एक हलकी-सी वेदना हो रही थी । इस अपार हर्ष को क्या चाँदी के टुकड़ों से तौलना चाहिए ? नहीं, बिल्कुल नहीं—ख़ैर, कोई चिंता की बात नहीं । काम की क्या कमी है ? बाद में सब ठीक हो जायगा । अभी तो इन स्वादिष्ट पदार्थों ही पर ध्यान जाना चाहिए । उन क़ीमती चीज़ों को देखकर पत्नीने संकोच-पूर्वक पूछा कि इस

प्रकार कितने दिनों तक निभाव होगा ? किन्तु, गुस्तव ने उसकी निराधार बातों का प्रतीकार करते हुए उसकी दिलजमई के लिए उसके गिलास में और शराब उड़ेल दी। "रोज़-रोज़ तो ऐसा होता नहीं" उसने कहा—"जब संभव है, तब तक जीवन का आनन्द क्यों न उठाया जाय ? ओह ! जीवन कितना आनन्द मय है !"

संध्या होते ही एक सुन्दर जोड़ी गाड़ी-घर के द्वार पर आ खड़ी हुई और तब विवाहित दम्पत्ति सैर के लिए निकले। बाग़ में से जब वे निकले, तब अपनी जान-पहिचान के पैदल चलते हुए लोगों को आश्चर्य और ईर्षा से झुककर प्रणाम करते हुए देखकर लुइजा के गर्व और हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। लोग सोचते होंगे कि गुस्तव बड़ा भाग्यशाली है। उसे एक धनवान पत्नी प्राप्त हुई है। और, उन ग़रीब लोगों को पैदल चलना पड़ता है। इन कोमल गद्दों वाली गाड़ी में आराम से बैठकर घूमने निकलने में कितना मज़ा है ! विवाहित जीवन का यही तो आनन्द है।

पहला मास लगातार आमोद-प्रमोद में बीता। कभी दावत होती, कभी नाच-गान, कभी नाटक-तमाशे। और, घर पर जो समय बीतता उसका आनन्द तो सबसे निराला था। रात्रि के समय पिता के घर से लुइजा को अपने घर ले जाते समय वह एक अभूतपूर्व आनन्द का अनुभव करता। घर पहुँचकर, वे थोड़ा-सा खाते और फिर बहुत रात गए तक घुल-मिलकर बातें करते रहते। गुस्तव मितव्ययता की ओर ध्यान रखता—बातों ही में। एक दिन युवापत्नी और नौकर ने हलकी मछली और उबाले हुए आलुओं से ही काम चला लिया। उसे तो इस भोजन में भी स्वाद मालूम दिया। पर गुस्तव ने इसे अनुचित समझा। दूसरी बार जब

इन्हीं चीज़ों की बारी आई, तो उसने उसी समय एक क्रोनर ख़र्च करके बाज़ार से खाने को बढ़िया मिठाई मँगवाई। लुइजा को यह अच्छा नहीं लगा। ख़ैर; ऐसी साधारण-सी बात के लिए वह अपने पति का विरोध थोड़े ही करेगी?

कुछ ही महीने में लुइजा फाँक को एक अनोखी बीमारी होगई। उसे ज़ुकाम हो गया है क्या? हाँ, रसोई घर के धातु के बरतनों का ज़हर दौड़ गया है। डाक्टर बुलाया गया। उसने हँसकर कहा—कुछ नहीं सब ठीक है। जवान औरतों के रोग का जो निदान होता है, वही उसने किया।

रोग कम नहीं हो रहा था। गुस्तव ने उसकी बीमारी का निदान करने के लिए स्वयं वैद्यक ग्रंथों को देखना शुरू किया। आख़िर उसने रोग का निदान कर ही तो लिया। वह गरम पानी से पैर धोने लगी। महीने भर में भावी आशा के स्पष्ट चिन्ह दिखाई देने लगे। यह बात तो सहसा आ उपस्थित हुई। इतनी जल्दी का उन्हें अनुमान भी नहीं था। तो भी, माँ-बाप बनना कितना मधुर है! बच्चा होगा तो लड़का ही—यह तो निश्चित है। उसका नाम अभी से सोच रखना चाहिए। दूसरी ओर, लुइजा अपने पति को एक ओर लेकर बार-बार याद दिलाया करती कि शादी के बाद साधारण आमदनी की अपेक्षा कुछ भी अधिक आमदनी नहीं हुई है। इस प्रकार कैसे काम चलेगा? ख़ैर, अब तक तो वे बहुत ख़र्चीले रहे हैं। अब तो सुधार करना चाहिए।

दूसरे दिन वह सहायक वकील अपने प्रधान वकील के पास एक हुंडी पर सही कराने गया। बिना हुंडी के शीघ्र ही होने वाले आवश्यक ख़र्च के लिए पैसा कहाँ से मिलेगा? उसने अपने मुखिया को सब बातें

स्पष्ट कह दीं। "ठीक है" उस क़ानूनदार ने कहा—"शादी करना और परिवार को पालना-पोसना बहुत ख़र्च का काम है। मैं तो ऐसा करने में कभी समर्थ नहीं हुआ।"

फॉक को अपनी माँग पर ज़ोर देते हुए बहुत लज्जा मालूम दी और जब शाम को वह ख़ाली हाथ लौटा, तो उसे ख़बर मिली कि दो अपरिचित व्यक्ति उससे मिलने के लिए घर पर आए थे। फॉक ने अनुमान किया वे वसोम क़िले के उसके फ़ौजी मित्रों में से कोई रहे होंगे। नहीं, उसे बताया गया, वे फ़ौजी नहीं थे, वे तो बुड्ढे से थे। ओह, तब उसके स्कूल के परिचित वे दोनों व्यक्ति रहे होंगे। उसके विवाह कर लेने की बात सुनकर शायद बधाई देने के लिए आए होंगे। नौकर ने बताया कि वे स्कूल से तो नहीं आए थे, वे तो स्टॉक-होम वाले थे। उनके हाथ में छड़ियाँ थीं। बहुत ही अजनबी थे। वापस आते ही होंगे।

युवक पति बाज़ार में गया और स्ट्रॉबेरी फल ख़रीद लाया।

"देखो तो" उसने गर्व के साथ अपनी स्त्री से कहा—"डेढ़ क्रोन में ये बड़ी-बड़ी इतनी स्ट्रोबरियाँ! और इस ऋतु में! क्यों सस्ती हैं न?"

"हैं तो, पर प्यारे! इस प्रकार कबतक काम चलेगा?"

"कोई चिन्ता की बात नहीं, प्यारी! मैंने फ़ुरसत के समय दूसरा काम ठीक कर लिया है।"

"किन्तु, क़र्ज़ का क्या होगा?"

"क़र्ज़? मैं जल्दी ही एक हुंडी लिखकर देने वाला हूँ और उससे छोटे-छोटे सब क़र्ज़ चुका दूँगा।"

"इसका तो मतलब हुआ एक-नया क़र्ज़—" लुइजा ने आपत्ति करते हुए कहा।

"इससे क्या हुआ? क़र्ज़ चुकाने के लिए थोड़े दिन की फ़ुरसत मिल जायगी। पर, चिन्ता की ऐसी बात इस समय क्यों छेड़ती हो? देखतो नहीं, प्यारी! ये स्ट्रॉबेरी कितनी उम्दा हैं? इनके ऊपर शेरी का एक गिलास कितना मज़ा देगा; मालूम है?"

बढ़िया से बढ़िया शेरी की एक बोतल लाने के लिए नौकर को हुक्म हुआ।

दोपहरी की झपकी के बाद जब फॉक की स्त्री मुर्झाई हुई उठी, तो उसने माफ़ी माँगते हुए वही क़र्ज़े की बात फिर छेड़ दी। उसकी बातों पर वह नाराज़ तो नहीं हुआ न? नाराज़? नहीं, बिल्कुल नहीं। क्या घर-ख़र्च के लिए कुछ चाहिए? लुइजा ने बताया:—

"मोदी को नहीं चुकाया गया है। कसाई भी अपने पैसे माँग रहा था। गाड़ीवाला भी अपने पुर्जे चुका देने के लिए बार-बार कह रहा था।"

"यही है न?" उसने पूछा—"इनकी तो जल्दी ही—कल ही—एक-एक पाई चुकता कर दी जायगी। जाने दो इस बात को, दूसरी बात सोचो। आज शाम को बाग़ में घूमने जाओगी न? गाड़ी बिना ही चली जाओगी? ख़ैर, ट्राम भी तो बाग़ तक जाती है, उसी में चलना।"

वे बाग में गए। वहीं एलहम्बरा होटल में खाना-पीना हुआ। बड़ा आनन्द रहा। उस विशाल भोजनालय में एकत्रित लोगों ने उन्हें प्रेमियों की एक शौक़ीन जोड़ी के रूप में देखा। गुस्तव को इस बात के अनुमान

में आनन्दानुभव हुआ। पर, लुइज़ा बिल देखकर तनिक उदास हो गई। इतने में तो वे घर पर कई दिनों तक—।

महीने पर महीना बीतने लगा और असली तैयारी का समय आ उपस्थित हुआ। झूला चाहिए, बच्चे के कपड़े चाहिए—और...!

क़र्ज़ मिलना कठिन हो रहा था। गाड़ी वाले और मोदी ने उधार देना बन्द कर दिया। उन्हें भी तो अपना और अपने परिवार का पेट पालना है। कैसा है यह स्वार्थ!

आख़िर, वह दिन आ ही गया। दाई की सख़्त ज़रूरत है। सद्य-जाता कन्या को गोद में लिए ही क़र्ज़ देने वालों को मनाना पड़ता है। इस नवीन जवाबदारी के बोझ से वह दबने लगा। उसे अनुवाद का थोड़ा-सा काम मिल भी गया, तो क्या हुआ? और उतना-सा काम भी कैसे हो, ज़रा-ज़रा-सी देर में ग़लतियाँ हो रही थीं। ऐसी हालत में पड़कर बेचारा अपने श्वसुर की शरण में गया। बुड्ढे ने उसे ख़ूब सुनाया :—

"इस बार तो, ख़ैर, मैं तुम्हारी मदद कर दूँगा। पर, फिर कभी नहीं। मेरे पास भी ऐसा कौन-सा कुबेर का ख़ज़ाना है और तुम्हीं अकेले तो हो नहीं।"

बच्चे की माँ के लिए ख़ास-ख़ास चीज़ों की बहुत ज़्यादा ज़रूरत है। खाने-पीने के लिए भी क़ीमती चीज़ चाहिए। दाई को भी देना-दिलाना है।

सौभाग्य से, फ़ॉक की स्त्री जल्दी ही खड़े पैरों हो गई। उसके चेहरे का पीलापन धीरे-धीरे दूर होने लगा। उधर उसका पिता अपने जामाता को समझाता :—

"बस, अब और नहीं। नहीं तो, मिट्टी में मिल जाओगे।"

कुछ दिन तो वह छोटा-सा फॉक-परिवार प्रेम और बढ़ते हुए क़र्ज़ से घात-प्रतिघातों को सहता रहा। अन्त में दिवाले ने आकर किवाड़ खटखटाए। बुड्ढा श्वसुर आकर अपनी बेटी और बालिका को अपने घर लिवा ले गया। जाते समय उस वृद्ध के चेहरे से यह भाव स्पष्ट व्यक्त होता था कि उसने अपनी पुत्री को एक युवक को मँगनी पर दे दी थी, जिसे उसने आज एक वर्ष के बाद निरादर-पूर्वक लौटा दिया है। उसकी इच्छा के अनुकूल होता तो लुइजा गुस्तव को छोड़कर नहीं जाती। पर दूसरा उपाय भी तो नहीं था! बेचारा गुस्तव पीछे रह गया। बेलिफों से सिर फोड़ने। घर का सामान, बर्त्तन-भाँड़े सब कुछ उन्होंने साफ़ कर दिए।

जीवन की असली घाटी पार करने का मौक़ा अब आया। सबेरे प्रकाशित होने वाले एक समाचार-पत्र में उसने प्रूफ़ देखने की नौकरी कर ली, जिसमें रातको कई घन्टे तक काम करना पड़ता। वह दिवालिया क़रार नहीं दिया गया था, इसलिए उसकी सरकारी नौकरी बच गई। हाँ तरक्क़ी की अब आशा नहीं रही। श्वसुर-देव उसे अपनी स्त्री और बालिका से केवल रविवार के दिन मिलने देते, वह भी एकान्त में नहीं। संध्या को जब वह समाचार-पत्र के कार्य्यालय में जाने के लिए उठता तो, वे उसे फाटक तक पहुँचाने आते और वह उदास चित्त से बिदा होता। कौन जाने, धन-संचय और क़र्ज़ चुकाने में कितने वर्ष बीत जायँगे? और उसके बाद? क्या वह पत्नी और बालकों का भरण-पोषण कर सकेगा? शायद ही! इसी बीच में यदि ससुरजी कहीं चल बसे तो बुरी बीतेगी।

उस वृद्ध सज्जन ही का उपकार मानना चाहिए, जिसने वियोग का दुःख देकर भी पेट की चिन्ता से मुक्त किया है।

आह, मनुष्य-जीवन भी कितना कठोर और क्रूर है! वनमें चरने वाले पशु भी अपना पेट आसानी से भर लेते हैं, किन्तु मनुष्य को दो रोटी के लिये भी चिन्ता करनी पड़ती है। मेहनत मज़दूरी करनी पड़ती है। यह दुर्भाग्य ही की बात है कि इस जगत् में सबको भर पेट भोजन भी सुलभ नहीं।

—०—

पोलैंड : : : बोल्सलॉव प्रूस

तार के खम्भे

उस दिन अनाथालय में श्रीमती—ने एक अद्भुत दृश्य देखा। उन्होंने देखा—एक फटी पुस्तक के लिए चार बालक आपस में झगड़ रहे हैं। आपस में धक्का-मुक्का कर रहे हैं।

"लड़को ! यह क्या ? यह क्या ? आपस में झगड़ते क्यों हो ?" इस दृश्य से दुःखी होकर श्रीमतीजी ने कहा—"ऐसा करोगे तो आज खाने को रोटी ही नहीं मिलेगी। वहाँ कोने में जाकर कान पकड़कर घुटने टेकने होंगे !"

"इसने मेरा 'राबिन्सन क्रूसो छीन लिया।" एक ने सिसकते हुए कहा।

"झूठा कहीं का, तेरे पास हो तो है।" दूसरा बोल उठा।

"हट झूठे" तीसरे ने चिल्लाकर कहा—"बता तूने मेरे हाथ से पुस्तक क्यों छीनी ?"

अनाथालय की देख-रेख रखने वाली बहन ने श्रीमतीजी को समझाया कि कड़ी निगरानी रखने पर भी ऐसी घटनायें यहाँ होती ही रहती हैं। बच्चों को किताबें पढ़ने का शौक़ है; पर अनाथालय में किताबों की कमी है।

श्रीमतीजी के मन में एक क्षणिक जोश आया। इसकी चिन्ता भी हुई। किन्तु चिन्ता से उनका मन मलिन होता था। इसलिए उन्होंने उसे भुला देना ही ठीक समझा। उन्हें उस बात की याद उस समय आई, जब वे अपने दोस्त प्रधान-वकील के यहाँ निमंत्रण में गईं। वहाँ धार्मिक और दान-पुण्य की चर्चा हो रही थी। वहीं उन्होंने भी इस घटना का उल्लेख किया। बालकों का पुस्तक-प्रेम और बहनजी का बताया हुआ हाल कह सुनाया।

प्रधानजी ने भी उस बात को ध्यान से सुना। उन्हें भी एक प्रकार की उत्तेजना का अनुभव हुआ। उन्होंने सलाह दी कि अनाथालय में कुछ पुस्तकें भेजना ठीक होगा। उन्होंने बताया कि उनके यहां बहुत-सी किताबें यों ही पड़ी हैं, जो उन्होंने अपने बालकों के लिए ख़रीदी थीं; किन्तु, उन्हें ढूँढ़ना और निकालना उनके लिए बड़ा कठिन होगा।

उसी दिन शाम को प्रधानजी ज़—महाशय से मिले। उनका सारा जीवन ऐसी सार्व-जनिक सेवाओं में ही व्यतीत होता था। उन्होंने श्रीमती ई—की बताई हुई बात का उनके आगे उल्लेख किया और यह भी सविस्तार बता दिया कि धार्मिक कार्यों की प्रतिनिधि-स्वरूपा बहनजी ने क्या कहा था। अपनी ओर से उन्होंने कहा—"अनाथों के लिए पुस्तकें ज़रूर भेजी जानी चाहिएँ।"

"यह तो आसान बात है।" ज्ञ—महाशय बोले—"मैं कल ही 'कूरियर' के कार्यालय में जाऊँगा और अनाथालय के लिए पुस्तकों की अपील छपवा दूँगा।"

दूसरे दिन ज्ञ—महाशय बहुत ही जोश में 'कूरियर' के सम्पादकीय विभाग में पहुँचे। अनेक देवी-देवताओं के नाम पर उन्होंने अनाथालय के लिए पुस्तकों की अपील छाप देने की विनय की।

वे ठीक मौक़े से पहुँचे थे। अख़बार के लिए किसी उत्तेजना-जनक समाचार की ज़रूरत थी। संवाद-दाता उनके सामने बैठ गया और उसने एक अपील तैयार करदी। उसके शीर्षक थे—"अनाथ बालक— जनता के भरोसे—किताबों के बिना कष्ट झेल रहे हैं-उन निस्सहाय भूखे बालकों को मत भूलो।"

संतोष से सीटी बजाते हुए महाशयजी खाना खाने चले गए।

कुछ दिन बाद एक रविवार को अपने मित्र विज्ञान के प्रोफ़ेसर के साथ आते हुए मैंने सम्पादकजी के कार्यालय के सामने एक मलिन-वसन जीर्ण-शीर्ण आदमी को देखा और उसके पीछे खड़ी थी कमज़ोरी से पीली पड़ी हुई एक दुर्बल बालिका। उसकी काँख में पुस्तकों का एक बण्डल था।

"क्यों भाई, क्या काम है?"

उस मैले-कुचैले आदमी ने अपनी टोपी उठाकर नमस्कार करते हुए कायरता से कहा—"हम ये कुछ किताबें लाये हैं—महाशयजी, उन निस्सहाय भूखे बालकों के लिए, जिनका उल्लेख आपने अपने पत्र में किया था।"

पीलिया के रोग से बीमार उस लड़की के मुँहपर गर्व की जितनी लाली आ सकती थी, दिखाई दी।

मैंने उसके पास से वे किताबें ले लीं और कार्यालय के नौकर को सौंप दीं।

"क्यों भाई, तुम्हारा नाम क्या है?" मैंने पूछा।

"पर, आपको नाम से क्या काम है?" घबराकर उसने जल्दी से पूछा।

"क्यों, किताबों पर हमें दाता के नाम का तो उल्लेख करना ही होगा।"

"ओह, उसकी कोई ज़रूरत नहीं। आपकी कृपा है, महाशयजी! मैं तो एक ग़रीब आदमी हूँ। कारख़ाने में काम करता हूँ। मेरे नाम की क्या ज़रूरत है?"

अपनी दुबली लड़की की अँगुली पकड़कर वह चल दिया।

शायद विज्ञान के अध्यापक के साथ होने के कारण ही मुझे उस दिन उस नई तरकीब से तार भेजने की कला सूझी। संवाद भेजने का स्थल था अनाथालय, और सुनने वाला था वह ग़रीब श्रमजीवी। पहली जगह से जब 'होशियार' का स्वर सुनाई दिया, उसी समय दूसरा सचेत हो गया। एक ने माँग पेश की, दूसरे ने चीज़ पहुँचा दी।

बाक़ी के हम सब तो तार के खम्भे मात्र थे।

—o—

ज़ेकोस्लोवेकिया : : : जान नेरूदा

प्रेत

—:o:—

कुस्तुन्तुनिया से हम लोग सैर-सपाटे के जहाज में प्रिंकिपो के टापू में पहुँचे। जहाज पर थोड़े से मुसाफ़िर ही थे। एक था पोलिश-परिवार—माता, पिता, पुत्री और जामाता। और हम थे दो। हाँ, ठीक याद आया, जब हम लोग कुस्तुन्तुनिया और 'गोल्डन हार्न' के बीच के पुल पास थे उस समय एक जवान युनानी भी हम में आ मिला था। उसकी बगल में कागज़ों का पुलिंदा था, जिससे वह चितेरा-सा मालूम देता था। बड़े-बड़े काले बाल उसके कंधों पर लटक रहे थे। उसका चेहरा पीला पड़ा हुआ था और आँखें थीं गड्ढों में गड़ी हुईं। पहले तो वह मुझे काम का आदमी मालूम दिया, क्योंकि वह बड़ा भला था—स्थानीय बातों का उसे ज्ञान भी अच्छा था। किन्तु, वह तो अत्यधिक वाचाल था, मुझे उससे नफ़रत होगई।

वह पोलिश-परिवार तो बहुत ही भला था। माता-पिता का स्वभाव बहुत ही नरम था। बड़े मिलनसार थे वे। वह नौजवान युवक प्रेमी भी एक सुन्दर और सभ्य व्यक्ति था। लड़की की बीमारी के कारण वे लोग गरमी के दिन प्रिंकिपो में बिताने के लिए आए थे। वह दुर्बलकाय सुन्दर युवती या तो किसी भयङ्कर बीमारी से उठकर अपना स्वास्थ्य सँभाल रही थी, या किसी भयानक बीमारी का शिकार होने ही वाली थी। चलते समय वह अपने प्रेमी का सहारा लेकर चलती और बीच-बीच में सुस्ताने के लिए ठहरती जाती। उसकी क्षीण वाणी कफ खाँसी से प्रायः अवरुद्ध रहती। जब कभी खाँसी आती, चलते-चलते उसे रुक जाना पड़ता। युवक पति समवेदना की दृष्टि से उसकी ओर देखता और बदले में वह अपनी आँखें उठाकर मानो कहती—"नहीं, कुछ नहीं; मैं बहुत प्रसन्न हूँ।"

युनानो की सलाह से उस परिवार ने पहाड़ी पर एक होटल में रहना पसन्द किया। युनानी तो हमसे जहाज पहुँचते ही विदा होगया था। उस होटल का मालिक एक फरासीसी था। अपनी रुचि के अनुसार उसने मकान को भली भाँति सजा रखा था।

एक हो साथ भोजन करके, दोपहर की गरमी शांत होने के बाद, हम लोग पहाड़ की चोटी पर से चारोंओर का दृश्य देखने और साइबेरिया के उन देव-दारु के वृक्षों की छाया का आनन्द लेने के लिए चले। हम लोगों ने एक अच्छा-सा स्थान चुना ही था कि उसी समय वह युनानी दिखाई दिया। साधारण अभिवादन के बाद वह भी हम लोगों के पास ही, थोड़ी दूर पर, बैठ गया। अपने कागज़ खोलकर वह चित्र बनाने लगा।

"चट्टानों की ओर पीठ करके वह इसीलिए बैठा है कि हम उसके चित्र को न देख सकें।" मैंने कहा।

"हमें देखना ही क्यों है?" पोलैंड-वासी युवक ने कहा—"चारोंओर देखने के लिए क्या कम सौन्दर्य है?" थोड़ी देर बाद उसने कहा—"ऐसा मालूम देता है वह अपने चित्र में एक ओर अपना भी खाका खींच रहा है; खैर।"

सचमुच चारोंओर दर्शनीय सौन्दर्य विद्यमान था। प्रिंकिपो के उस स्थल से सुन्दर स्थल इस पृथ्वी पर शायद ही कोई होगा! यशस्वी चार्ल्स के समकालीन राजनीतिक शहीद इरीन ने निर्वासन का एक मास यहीं व्यतीत किया था। मैं भी एक मास तक उस रमणीक स्थल में रह लिया होता तो जीवनपर्यन्त उसकी मधुर स्मृति को नहीं भूलता। प्रिंकिपो में व्यतीत किया हुआ वह एक दिन भी मैं भूलने का नहीं।

वहाँ की उस स्वच्छ और शीतल पवन में इतनी ताज़गी और स्फूर्ति थी कि उससे तबियत अपने आप फड़कने लगी। दाहिनी ओर समुद्र के उस ओर एशियाई पहाड़ों की चोटियाँ दृष्टिगोचर हो रही थीं, और पूर्व में युरोप की नील वर्ण पर्वत-माला सुशोभित थी।

'प्रिंस के आर्चीपेलगो' नाम के नौ टापुओं में से एक 'चाकी' टापू पास ही विषण्ण स्वप्न की भाँति उन पहाड़ियों की ओट में विद्यमान था। ऐसे लोगों के लिए, जिनका दिमाग़ खराब होगया है, एक पागलखाना उस टापू के ताज की भाँति दिखाई दे रहा था।

विविध प्रकार के रङ्ग चमकाने वाले रत्न की भाँति 'मार-मोरा' का वह समुद्र भी शोभा दे रहा था। सुदूर प्रान्त में समुद्र दूध के समान

सफेद था। उसके बाद गुलाबी। दो टापुओं के बीच में नारङ्गी और पास में नील-मणि की भाँति गहरे नीले रङ्ग का था। समुद्र मानो स्वयं प्रकाशित था। कहीं भी बड़े-बड़े जहाज़ नहीं थे; केवल छोटे जहाज़ों के दो बेड़े किनारे पर अपनी पताकायें फहराते हुए खड़े थे।

पहाड़ी की उतराई खिले हुए गुलाबों से सुशोभित थी और उनकी सुगन्धि से वायुमण्डल पूरित हो रहा था। समुद्र-तट पर के 'कॉफी-घर' से संगीत-वाद्य की मधुर ध्वनि हवा के आह्लादकारी झोंकों के साथ आ रही थी।

बहुत ही सुहावना समय और स्थान था वह! मन ही मन स्वर्ग की कल्पना करते हुए हम लोग मौन भाव से यह सब निहार रहे थे। वह युवती अपने प्रेमी की गोद में सिर रखकर दूब पर लेटी हुई थी। उसके पीले लम्बे चेहरे पर हल्का-सा रङ्ग चढ़ आया और उसकी नीली आँखों से आँसू बह निकले। प्रेमी समझ गया। नीचे झुककर उसने उसे चूम लिया। उसकी माता के भी आँसू आगए और मैं—मुझे भी एक आकस्मिक पीड़ा का अनुभव हुआ।

"यहाँ तो मन और तन दोनों स्वस्थ होने चाहिए।" युवती ने कहा—"कैसा सुन्दर प्रदेश है यह!"

"शायद ही मेरा कोई शत्रु हो। हो भी, तो मैं यहाँ उसे क्षमा कर दूँ!" पिता ने कम्पित स्वर से कहा।

पुनः हम लोग मौन हो गए। हम लोगों की अद्‌भुत दशा हो रही थी—बहुत ही सुखकर अवस्था थी वह, जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

हम सभी अपने सुखमय संसार की कल्पना में लीन थे और अपने सुख-मय संसार का आनन्द दूसरों में वितरण करने के लिए उत्सुक। सभी अपने आनन्द में मग्न थे। कौन बाधा पहुँचाता! हमें मालूम ही नहीं हुआ कि घंटे भर बाद ही वह युनानी कागज-पत्र समेटकर वहाँ से चल दिया था।

अंत में जब दूरी पर संध्या का अन्धकार छाने लगा और दक्षिण दिशा एक अनुपम सौन्दर्य से सुशोभित हो गई, तब माता ने घर चलने की याद दिलाई। हम लोग निश्चिन्त बालकों की भाँति छोटे-छोटे कदम उठाते हुए होटल की ओर रवाना हुए। होटल की एक सुन्दर खिड़की में हम लोग बैठ गए।

हम लोग बैठे ही थे कि नीचे की ओर कुछ हल्ला-गुल्ला सुनाई दिया। हमारा वह युनानी होटल वाले से झगड़ रहा था और हम लोग तमाशा देख रहे थे।

वह तमाशा अधिक देर तक नहीं टिका। 'दूसरे मेहमान नहीं आए होते तो—' कहता हुआ होटल का मालिक सीढ़ी चढ़कर हमारी ओर आने लगा।

"क्यों जनाब, बताओ तो," हमारे साथी युवक ने होटल वाले से पूछा—"यह कौन आदमी है? इसका नाम क्या है?"

"उँह! इसका नाम कौन जानता है?" विषाक्त दृष्टि से नीचे की ओर देखकर होटल वाले ने कहा—"लोग तो उसे........कहते हैं।"

"वह तो चितेरा है?"

"क्यों नहीं ? वह चित्र बनाता है मृतकों के । कुस्तुन्तुनिया में, यहाँ अथवा आस-पास किसी के मरने पर उसी दिन उसके शव का चित्र इसके पास तैयार मिलता है । पहले ही यह चित्र तैयार कर लेता है । कभी नहीं चूकता—पिशाच कहीं का !"

वृद्धा माता यह सुनकर भय से चिल्ला उठी और मूर्छित होकर उसकी पुत्री उसके हाथों पर गिर पड़ी ।

एक ही छलांग में जामाता सीढ़ी से नीचे उतर गया । एक हाथ से उसने युनानी का गला पकड़ लिया और दूसरे हाथ से उसका पुलिंदा छीन लिया ।

हम लोग भी उसके पीछे नीचे पहुँचे । दोनों आदमी नीचे धूल में लोट रहे थे । कागज-पत्र चारोंओर बिखरे पड़े थे । एक कागज पर पोलैंड की एक युवती के मुख का चित्र था, उसके नेत्र बन्द थे और माथे पर फूलों का हार पड़ा था !

——:o:——

जुगोस्लेविया : : : ईवान कैंकर

बाल-वृद्ध

——:o:——

रात को सोने के पहले वह बाल-समुदाय आपस में बात करता रहता। चूल्हे के पास चबूतरे पर बैठकर जो कुछ दिमाग में आता, वे बकते रहते। उन अधखुली खिड़कियों में स्वप्नों से भरी हुई संध्या प्रवेश करती और प्रत्येक कोने में से बढ़ता हुआ अंधकार उनके लिए अनोखी अनोखी कहानियाँ अपने साथ लाता।

जो कुछ उनके दिमाग में आ जाता, उसी की वे बात करने लग जाते। किन्तु उनके दिमाग में आती प्रेम और आशा से पूर्ण प्रकाशमय बातें ही। उनके लिए भविष्य एक आनन्दमय अवकाश की भाँति था; क्रिसमस और ईस्टर के बीच के उपवास-काल की भाँति नहीं। बेल-बूटेदार आवरण के उस ओर कहीं जीवन की सुख-सरिता उछलती-कूदती निरंतर बहती रहती। बालकों की तोतली बोली के आधे शब्द

ही समझ में आते। उनकी किसी भी बात का न कोई आरंभ होता, और न कोई रूप ही। और न कोई अंत। कभी-कभी तो चारों बालक एक साथ बोल उठते। पर उससे एक दूसरे को बाधा नहीं पहुँचती। स्वर्ग के उस सौन्दर्य की ओर, जहाँ का प्रत्येक शब्द स्पष्ट और सत्य है, जहाँ की प्रत्येक गाथा नवजीवन-मय है और जहाँ की प्रत्येक कहानी का मनोहर अंत है, वे मूक अनुयायी की भाँति ताकते रहते।

बालकों के रूप-रंग में इतनी अधिक समानता थी कि साधारण अंधेरे में चार वर्ष के सबसे छोटे टोंचेक और दस वर्ष की सबसे बड़ी लड़की लोइज़्का में से एक को पहचानना कठिन हो जाता। सभी के चेहरे लम्बे और पतले थे। आँखें थीं बड़ी-बड़ी, मानो स्वयं अपने हृदय का निरीक्षण कर रही हों।

उस संध्या को किसी अज्ञात स्थान से एक अज्ञात वस्तु ने आकर उनके उस स्वर्गीय सुख में विघ्न डाल दिया था। उनके आनन्द-मंगल कथा-वार्त्ता पर उसका निर्दय प्रहार हुआ। डाक से समाचार आया था कि पिता इटली की भूमि पर खेत रहे। एक अज्ञात, अजनबी और उनकी बुद्धि की पहुँच से परे की बात उनके सम्मुख आ खड़ी हुई। एक विशालकाय बात उनके सामने खड़ी थी, पर उसके न सिर था, न पैर, न आँखें! उसका सम्पर्क न तो गिरजाघर के आगे और गली के कोलाहल-मय जीवन से था, और न चूल्हे के पास घर के उस शांत कोने से, और न किसी कथा-वार्त्ता ही से।

उसमें आनन्द नहीं था। दुःख की भी ऐसी कोई बात नहीं थी। क्योंकि यह घटना मृतकवत् थी। न तो उसके आँखे हैं, जिन्हें खोलकर वह

कुछ देख लेगी, और न जीभ ही है, जिससे वह अपनी बात बता देगी। एक बड़ी-सी काली दीवाल के समान उस विशालकाय भूत के आगे उनके विचार कायरता-पूर्वक मूक और गतिविहीन हो रहे थे।

"पर, वे कब तक वापस आ जायँगे?" चकित होकर टोंचेक ने पूछा।

लोइज़्का ने कोहनी मारकर उसकी ओर घूरकर देखते हुए कहा—"वे जब काम आ गए, तो अब कैसे लौटेंगे?"

पुनः सब मौन हो गए। वह एक बड़ी-सी काली दीवाल उनके आगे खड़ी थी और वे उसके उस ओर नहीं देख पाते थे।

"मैं भी लड़ाई में जाऊँगा।" सहसा सात वर्ष के बालक मनीचे ने इस प्रकार घोषित किया, मानो उसने ठीक बात को समझ लिया है। उसकी दृष्टि में सारी बात का मूल तत्व यही था।

"तुम तो बहुत छोटे हो!" चार वर्ष की टोंचेक ने गंभीर स्वर से कहा।

यात्री के बिस्तरे की भाँति, अपनी माता के शाल में लिपटी हुई सब से अधिक दुर्बल और रोगिणी मिल्का ने उस संशय में से अपनी कोमल वाणी से पूछा—"अच्छा, यह तो बताओ, लड़ाई है क्या? मनीचे! उसी की कहानी सुनाओ आज।"

मनीचे ने बताया—"देखो, लड़ाई होती है ऐसी—लोग आपस में छुरे चलाते हैं, तलवारों से एक दूसरे का गला काटते हैं और लम्बी-लम्बी बंदूकों से गोलियाँ मारते हैं। जो ज़्यादा गले काट पाता है, उसी

की जीत होती है। कोई इसे बुरा नहीं बताता। क्योंकि यही तो रीति है। सुन लिया? यह है लड़ाई!"

"हाय रे, वे एक दूसरे पर छुरे चलाते हैं, गला काटते हैं! ऐसा क्यों करते हैं वे? भाई!" मिल्का ने पूछा।

"बादशाह के लिए।" मनीचे ने उत्तर दिया। सब चुप हो गए।

उनकी धूमिल आँखों के आगे सुदूर धुँधले प्रान्त में गौरव से चमत्कृत एक सुदृढ़ वस्तु उन्हें दिखाई दी। वे मौन भाव से बैठे थे। साँस लेने का भी उन्हें साहस नहीं हो रहा था।

उस भार-रूप मौन को दूर करने के लिए मनीचे ने अपने विचारों को समेटकर फिर कहा—"मैं भी बैरी से बदला लेने के लिए लड़ाई में जाऊँगा।"

"बैरी क्या होता है? भाई! उसके नुकीले सींग होते हैं?" मिल्का की क्षीण वाणी ने झट से पूछा।

"ज़रूर होंगे; नहीं तो वह बैरी कैसा?" बड़ी गम्भीरता से सोच-समझ कर टोंचेक ने कहा। मनीचे भी स्पष्ट बात के संशय में पड़ गया।

"मैं तो समझता हूँ, उसके सींग—हाँ—होंगे ही!" उसने धीरे से रुकते हुए कहा।

"कभी सींग भी हो सकते हैं? वह भी हमारी तरह आदमी ही तो है।" अनमनी होकर लोइज़ा ने कहा। कुछ देर सोचकर उसने फिर कहा—"उसके तो बस, एक आत्मा नहीं है।"

एक लम्बी चुप्पी के बाद टोंचेक ने पूछा—"लड़ाई में आदमी कैसे गिरता है? इस प्रकार, पीछे की ओर?" उसने गिरने का नाट्य कर दिखाया।

"वे उसे जान से मार डालते हैं।" मनीचे ने कहा।

"पिता ने मुझे एक बंदूक ला देने को कहा था।"

"अब जब वे खेत रह गए, तो बन्दूक कैसे लायँगे?" लोइज़्का ने झिड़ककर कहा।

"उन्हें भी बैरियों ने जान से मार डाला?"

"हाँ, जान से!"

बालकों की वे बड़ी-बड़ी आँखे सामने अंधकार में उस अज्ञात, अपरिचित और दिल व दिमाग की समझ में न आने वाली बात की ओर टुकुर-टुकुर ताक रही थीं।

उसी समय झोपड़ी के बाहर एक बेंच पर बूढ़ी दादी और दादा बैठे थे। वृक्षों के झुरमुट के अँधेरे में से डूबते हुए सूरज की लाल किरणें दिखाई दे रही थीं। उस संध्या में सर्वत्र मूक शांति थी। हाँ, बीच-बीच में तबेले की ओर से कभी-कभी एक करुण क्रन्दन सुनाई देता था। यह रोदन था—बालकों की प्रौढ़ा माता का।

वे दोनों वृद्ध जन पास-पास गर्दन झुकाए बैठे थे। दोनों के हाथ मिले हुए थे और वे आँखों में आँसू भरकर दिवस के अवसान-काल के उस प्रकाश की ओर देख रहे थे। उनकी वाणी शब्द-विहीन थी।

जुगोस्लेविया : : : व्लाडीमीर ट्रूसी

फरीद

——:o:——

क्या आप कल्पना कर सकते हैं शिला-खण्डों के एक समुद्र की? जिधर दृष्टि दौड़ाइए—शिला ही शिला। सफेद, भूरी, नग्न शिलायें, आकाश से बातें करता हुईं। उस गगन-चुम्बी शिला-समूह का नाम है वेलेस। उसके नीचे, कल्पना कीजिए चट्टानों के बीच में एक झील की, अनन्त दूरी तक फैली हुई, पंकिल और उपजाऊ भूमि से भरी पूरी—उसका नाम है व्लैटो।

ऐसे रमणीय दृश्य के बीच मेरा परिचय हुआ जंगली मुर्गाबियों की घात में बैठे फरीद बे से। दोसौ कदम की दूरी पर से ही मैंने उसकी बन्दूक की आवाज़ सुन ली थी और जब संध्या का आँचल फैलने लगा, उस समय एक शिला-खण्ड के पीछे से प्रकट हुये बालचन्द्र के प्रकाश में मुझे वह मालूम दिया—शस्त्रधारी राक्षस-राज सा!

उसकी बन्दूक थी एक मीटर लम्बी और उसकी नाली थी छोटे बालक की कलाई से भी मोटी। मुझे अपने आप पर हँसी आगई। मेरे पास तो थी दुनाली, हलकी लैंकेस्टर बंदूक। किन्तु मुर्गाबियों का थैला पीठ पर लादकर जाते हुए फरीद को देखकर उसके सम्मान में मैंने टोपी उतार ली और हम दोनों में मित्रता का सूत्रपात हो गया। क्योंकि, आप जानते ही होंगे कि शिकार के समय दोस्ती का सौदा जल्दी पट जाता है। उस समय दिल उफान में रहता है। यही कारण है कि सती-साध्वी बनी रहने वाली स्त्रियों के लिए शिकार की मनाई है।

उस शरत् ऋतु में प्रतिदिन हम दोनों की मुलाकात ब्लैटा में होती। और उन्हीं दिनों हरज़े बोसनिया सैनिक-सेवा संबन्धी कानून के कारण लड़ाई के लिए हथियार उठाकर तत्पर हो गया था।

"बड़े वीर हो तुम"—फरीद ने मुझे कहा,—"इतने साहसी कि यहाँ अकेले आ जाते हो।"

मैं ज़ोर से हँस पड़ा।

"जीवन की परवा नहीं करना भी क्या वीरता है? मैं क्यों परवा करूँ? आज हूँ, कल नहीं।"

"बहुत ठीक" फरीद ने कहा। किन्तु मैंने उसकी आँखों में देखा—उसकी बातों में चतुराई थी।

इधर फौजी अफ़सर और उधर फरीद के साथी हम दोनों की दोस्ती पर अचरज करते। वह अपने सिवा किसी की चिन्ता भी नहीं करता और किसी का आदर-सत्कार भी नहीं करता। वह था एक अभि- मानी हरज़े गोविनियन, स्वातन्त्र्य और प्रभुत्व का पुजारी!

काम-काज के कारण मैं कुछ दिनों तक फरीद से नहीं मिल सका। बागियों ने नजदीक ही में हमारे एक लेफ़्टिनेन्ट और चार सिपाहियों की हत्या कर डाली थी। आततायियों की गिरफ़्तारी के लिए मोस्टर की सारी सेना भेज दी गई थी।

जुलाई के समान गरम, ऑक्टोबर के एक दिन अपराह्न के समय मैं अपने आदमियों के साथ ब्लैगज के समीप एक छोटे गाँव में पहुँचा।

गाँव के पहले घर के पास ही मैंने सैनिकों की एक भीड़ देखी। पूरी टुकड़ी मौजूद थी। कर्नल मुझे देखते ही ख़ुशी से चिल्ला उठा :—

"एक को तो हमने धर पकड़ा है!"

दिन भर के सारे श्रम को मैं भूल-सा गया। "तब तो हम अपने साथियों की जान का बदला लेकर छोड़ेंगे।"

"यह देखो, यह रहा। अभी इसकी छाती के इस पार से उस पार गोली निकल जायगी।" गोल-मटोल और लाल चेहरे वाले कर्नल 'पोल' भाई ने कहा।

मैंने आगे बढ़कर देखा—वह था फरीद बे। दीवाल के सहारे खड़ा वह आकाश की ओर ताक रहा था।

"क्या यह संभव है?"–इच्छा न होते हुए भी मैं बोल उठा,–"तुम्हारे पास क्या प्रमाण है?"

कर्नल हँस पड़ा। "प्रमाण ये रहे।"—दो आदमी सिर झुकाये एक चट्टान पर बैठे इधर-उधर आँखें फेंक रहे थे। वे दोनों फरीद बे के असामी थे, जो फौज को अपने गाँव में बुला लाए थे। यही नहीं, समान रक्त और समान भाषा वाले—उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि उन्होंने अपनी

आँखों से देखा है, फरीद् बे ने चट्टान के पीछे से निशाना साधकर हमारे अफ़्सर को मार डाला था।

मैं तो चकित हो गया। बे के प्रति उसके असामियों की पुरानी दुश्मनी से मैं परिचित था। मैंने उन चश्मदीद गवाहों की बात का विश्वास नहीं किया। यह सोचकर कि शायद अफ़्सरों ने समझने में ग़लती की होगी, मैंने उनसे प्रश्न करने शुरू किए। तो भी, उन्होंने तो उसी बात को दोहरा दिया। वे अपनी गाथा सुना ही रहे थे कि मेरे पीछे से कोई गरज उठाः—

"झूठे लबार कहीं के।"

मैंने घूमकर देखा—फरीद वहीं खड़ा था, हाथों में पड़ी थीं बेड़ियाँ, आँखें थीं उलटी हुई और सिर था आकाश की ओर।

गवाह उसकी ओर देखकर हँस रहे थे। अपना इनाम तो वे कभी जेब में दाख़िल कर चुके थे।

अब मैं गया फरीद बे के पास।

"तुम अपना बचाव क्यों नहीं करते?"

बिना मेरी ओर देखे ही उसने उत्तर दिया—

"मुझे पूछता ही कौन है? केवल उन हरामखोरों...।"

दीवाल के सहारे जब वह सीधा, लम्बा और शांत भाव से खड़ा हो गया, तब तो वह मुझे मालूम दिया एक वीर के समान, एक शहीद! मेरा कलेजा काँप उठा। मैं कर्नल की ओर घूमा, वह इस बीच में गोली चलाने के लिए सिपाहियों की टोली को तैयारी करने का हुक्म दे चुका था।

"किस दिन और किस समय अफ़्सर रैन्सो मारा गया था?"

"परसों, बुधवार को, संध्या के पहले।"

"परसों, बुधवार को अपराह्न के बाद रात्रि तक फरीद मेरे साथ ब्लैटो में शिकार खेल रहा था।"

"क्या कहा? यह भी कभी संभव है?" कर्नल ने निराश होकर कहा।

"एक अफ़सर की ज़बान का विश्वास करो।"

"और ये गवाह?"

"कुत्ते, बदमाश।"

"भेजो इन्हें जेलमें!"—

मैंने फरीद के बंधन खोल दिए। उसका तन हवा में कोमल किशलय की भाँति काँप रहा था, और उसका गला रुँधा जा रहा था।

थोड़ी देर बाद जब हम दोनों कॉफी पी रहे थे, फरीद ने शपथ-पूर्वक कहा:—

"भाई साहब, आप मुझ से जो चीज़ चाहें, उसे मैं हाज़िर करने को तैयार हूँ।"

उस दिन से हमारी मित्रता और भी घनिष्ट हो गई। फरीद मुझे आरंभ ही से प्यारा था और अब तो इस वीर, सीधे-सादे, किन्तु शाही मिजाज दोस्त को मैं भूल ही नहीं सकता था। मैंने अपने आप पूछा:–

"नेरेटवा नदी के तट पर उन पत्थर के पुलों के अतिरिक्त रोम के और कोई प्राचीन चिह्न अवशेष नहीं रहे क्या?"—

वह फरीद—मुझ से दस वर्ष छोटा फरीद—मेरी कैसी चाकरी करता था, कैसी देख-भाल रखता था! मेरी बन्दूक और मेरे शिकार का

भार भी वह मुझे नहीं उठाने देता। सारा बोझ ख़ुद उठा लेता, और जब कभी मैं उसके घर जाता, घर भर के सारे गद्दे और तकिए लाकर वह मुझे ख़ूब आराम से बैठाकर भी संतुष्ट नहीं होता—कॉफ़ी, नीबू का शरबत और तमाखू पिला-पिलाकर तो वह मुझे बीमार ही बना डालता। अब वह मेरे समीप एक शूरमा नहीं, पर बालक—अतीव प्रियजन-मात्र रह गया था।

"यदि मैं आपको खुश कर सकूँ—बस, यह जान जाऊँ कि आप सब से ज़्यादा क्या चाहते हैं!"—कहकर वह कई बार उसासें लेता।

एक दिन मुझे एक बात सूझी। सिड़ीपन और गुस्ताखी से भरा यह बेहूदा मज़ाक था या और कुछ। कैसे वह असाधारण कौतुक मन में समा गया था! मुझे अब याद नहीं। अधखुले द्वार में से जब फरीद किसी के हाथ से कॉफी का प्याला ले रहा था, तब मुझे उस आड़ में से दिखाई दी कोई अद्भुत वस्तु, जो थी पूर्व-कालीन प्रेमिका अथवा गुरूजियन कुमारियों के स्वप्न के समान। मुझे बिजली का-सा धक्का लगा। वह थी मनोमुग्धकारी बड़ी-सी आँख! एक ही क्षण में मेरे मन में एक विचार उठा और मैं बोल उठा:—

"वह देखो, फरीद, मुझे एक चीज़ चाहिए।"

"बोलो भाई, जो चाहो, तुम्हें ला दूँगा।"

पल भर तो मुझे संकोच हुआ और मैं लजा भी गया। किन्तु, औचित्य की अपेक्षा साहसिक कार्य की लालसा बलवती थी।

"मैं जब कि तुम्हारा भाई हूँ, यह ठीक नहीं कि तुम्हारी बीबी परदे में रहे। मुझे उसे एक बार दिखाओ तो सही।"

फरीद मेरे लिए कॉफ़ी डालते डालते पल भर के लिए रुक गया। उसने मेरी आँखों से आँखें मिलाईं, गम्भीरता और शान्ति पूर्वक। और तब असाधारण कोमल स्वर से उसने पूछा—

"सचमुच तुम्हारी यह इच्छा है?"

उत्सुक और चंचल मैं कह उठा—

"अवश्य।"

वह चुप हो रहा। सिर पर हाथ उठाकर, अपनी टोपी गरदन पर झुका कर, वह दोनों हाथों से अपना चेहरा और माथा पोंछने लगा। मेरे सम्मुख खड़ाहोकर वह आँगन में दृष्टि गड़ाए था। सहसा वह मेरे सामने से हट गया। किन्तु, मैंने कूदकर उसके चेहरे की ओर देखा। आँखों में आँसू लुढ़कते हुए दो बड़े-बड़े आँसुओं को उसने झटपट पोंछ लिया।

उन दो आँसुओं से मैं उस वीर की मनोवेदना को ताड़ गया। मुझे बहुत ही दुःख हुआ। मैंने कहा—

"भगवान् के नाम पर मुझे क्षमा करो। फरीद, मुझे जरा भी ज्ञान नहीं था कि मेरी बात इतनी कठोर होगी। सच कहता हूँ, विश्वास करो, मैंने इसका अनुमान भी नहीं किया था। मेरी बात सुनो। मैं उसे देखने से इन्कार करता हूँ। सच, भगवान् मेरा भला करे। मेरी बात मानो। मैंने इसे कोई महत्व दिया ही नहीं था, मैं तो केवल मज़ाक़ कर रहा था।"

मैं तो यह सब कह रहा था और फरीद रो रहा था। शान्त होकर उसने कहा—

"और इस मज़ाक़ की क़ीमत होती ज़ेडिहा का सिर!"

"क्यों, भला क्यों? तुम क्या सोच बैठे थे?"

"दूसरी बार तुमने मुझे प्राणदान दिया है।...तुम्हारी आँखें उसे देख लेतीं तो उसके बाद उसे और आँखें जीवित नहीं देखतीं, देखतीं सिर्फ़ तमंचे की आँख!"

उसी क्षण उसने अपना हाथ अलबेनिया की बनावट के तमंचे की सुन्दर चाँदी की मूठ पर रखा और मुझसे हाथ मिलाकर, इससे पहिले कि मैं उसके इरादे को जान सकूँ, उसने उसे ओठों से चूमकर माथे से लगा लिया।

जब सचमुच मैंने उसकी प्राण-रक्षा की, तो उसे धन्यवाद के लिए शब्द भी नहीं मिले। वह तो बस बार-बार मेरे हाथ को चूमने लगा।

तब, पहली बार, मुझे हेमलेट के उस कथन की यथार्थता मालूम दी, जब वह बताता है कि कैसे अतिशय प्रेम, अपनी प्रेमिका के चन्द्रवदन से वायु की एक लहर का भी स्पर्श, ईर्ष्या के बिना सहन नहीं कर सकता।

हंगरी : : : मौरुस जोकई

नाच

———:o:———

मेरी बहुत ही प्यारी इलमा ! मैं घोर निराशा में हूँ, बीमार हूँ, शैय्या में पड़ी हूँ । आह ! चार-चार का वह नाच, मैं अब फिर कभी नहीं नाचूँगी । या तो मैं कुमारियों के किसी मठ में चली जाऊँगी, नहीं तो कर लूँगी शादी अथवा और कोई नया रास्ता खोजूँगी । मेरी दशा पर तनिक ध्यान तो दो । ओह, कैसी भयानक है यह दशा ! अजीब रोमाञ्चकारी ! कथा-कहानियों में भी तुमने ऐसी बात कभी सुनी नहीं होगी ।

शायद तुमने सुना होगा कि गत सप्ताह आइस्को के युद्ध के बाद हँगेरियन फ़ौज की टुकड़ियाँ इधर से गुज़री थीं। उनके आने की ख़बर से सर्वत्र खलबली मच गई थी और लोग हो गए थे भयभीत । डर था कि वे शहर को जला देंगे, और मार-काटकर हमारे ढेर कर देंगे—हाँ, माँ तो कह रही थी कि कुछ ठिकाना नहीं वे कैसे भयानक अत्याचार कर बैठें ।

और उसने तो मुझे सलाह दी थी कि फ़ौजी आदमी मुझे ले भागे, तो अपने चेहरे को नाखूनों से चीरकर कुरूप बना लूँ। ऐसी बात तुमने कभी सुनी थी ?

खैर, बहुत दिन हुए वे राष्ट्रीय सिपाही अपने फ़ौजी बाजे बजाते हुए निकल गए। बाबा गाँव के मुखिया लोगों के साथ उनसे मिलने गए। हमारे सारे नौकर बाहर दौड़ पड़े थे उन सैनिकों को देखने के लिए। पर माँ का तो कहीं पता ही नहीं था। उसके पहले ही दिन से वह व्यस्त थी छिपने के लिए कोई जगह तजवीज़ करने में। मेरी ओर देखना अथवा मेरी बातों का उत्तर देना उसके लिये दुश्वार हो रहा था। यदि मैं उसे किसी कमरे के कोने-अँतरे में देख लेती तो उसके छिपने की जगह मालूम कर लेने के मेरे उस अपराध पर वह बरस पड़ती।

मैं रह गई अकेली। मुझे एक उपाय सूझा। बाहर मेज़ पर मैंने खाने-पीने का सामान सजा दिया। मिल सकी वैसी शराब भी ला रखी। जिससे वे फ़ौजी दूत मुझे न खाकर उन चीज़ों पर ही दाँत चलाकर संतुष्ट हो जायँ। मैंने मन ही मन निश्चय कर लिया कि वे जो कुछ माँगेंगे, उन्हें चुपचाप दे दूँगी, और उन्हें दिखा दूँगी कि मैं उनसे रत्ती भर भी भय नहीं खाती। और तब मैं बहुत ही धीरज के साथ प्रतीक्षा करने लगी—सहायता के लिए लोगों ने चीख़-पुकार की।

आखिर, आगे बढ़ते हुए सैनिकों की पदध्वनि और तलवारों की झंझनाहट गली में सुनाई देने लगी। हल्ले-गुल्ले का नाम नहीं था। प्रत्युत द्वार पर दो बार विनम्र थपथपी सुनाई दी। भय अथवा हड़बड़ी के कारण इतनी शक्ति तो नहीं रह गई थी कि कह दूँ—भीतर आ जाओ।

किन्तु, ऐसी कल्पना नहीं करना कि उन्होंने कुँदों से द्वार तोड़कर भीतर प्रवेश कर लिया हो। बिल्कुल नहीं। उन्होंने फिर एक बार द्वार खटखटाया और उस समय तक प्रतीक्षा करते रहे जब तक मैंने काँपते हुए स्वर से उन्हें भीतर आने की आज्ञा न दे दी। मैं सोचती थी, अब भीतर आवेंगे कम से कम छः बदसूरत मनहूस तातार, चौकोर सिर वाले चमड़े की टोपी पहिने। कमर तक दाढ़ी लटकती होगी। वे होंगे भालू के चमड़े की पोशाक से लैस। लूट-पाट का सामान भरने के लिए चमड़े के थैले कन्धों पर पड़े होंगे। और जैसा माँ उनका वर्णन किया करती है, वे होंगे पिस्तौलों और छुरियों से सज्जित। किन्तु मेरे आश्चर्य की कल्पना तो करो, जब मैंने इन सब की जगह देखे दो युवा सरदार। एक था गौर वर्ण और दूसरा था तनिक साँवला। किन्तु दोनों ही बड़ी भली पोशाक पहने थे, ठीक दूसरे लोगों की भाँति।

ऊपर से वे रुआँदार लबादे पहने थे और उसके नीचे था कसा हुआ कोट। चौकोर सिर और चमड़े की पोशाक का तो नाम ही नहीं था। सचमुच, वह साँवला युवक तो बहुत ही रूपवान् था। उन्होंने सबसे पहले मेरी उस असुविधा के लिए क्षमा-प्रार्थना की। उत्तर में मैंने उन्हें बता दिया कि मुझे उनके आगमन से कोई असुविधा नहीं हुई है, और मैं उनकी हर तरह से सेवा करने के लिए तत्पर हूँ। वह साँवला जवान, मेज़ पर दृष्टि डालकर, मुस्कराए बिना नहीं रह सका। वह ताड़ गया कि उसके लिए यह तैयारी मैंने पहले ही से कर रखी है। इस बात का अनुभव कर मैं तनिक सकुचा गई। किन्तु उसने तत्क्षण मेरी उलझन सुलझा दी। मेरी उस प्रस्तावित सेवा के लिए विनम्रता-पूर्वक धन्यवाद

देकर उसने निवेदन किया कि मैं उन्हें ऐसा स्थान बताऊँ जहाँ वे आराम कर सकें। क्योंकि वे बहुत ही थके हुए हैं। छः सप्ताह से एक रात भी बिछौने पर नहीं सो पाये हैं। और गत दो दिन से तो पलक मारने का भी अवकाश नहीं मिला है। दुःखी बेचारे ! मुझे उन पर दया आ रही थी—छः सप्ताह से सोने को बिछौना नहीं मिला !

"सचमुच," मैं कह उठी—"तख्ते पर पड़ रहना अथवा तम्बू में धरती पर रात बिताना तो बहुत कष्ट-प्रद रहा होगा और वह भी छः सप्ताह तक !"

वे दोनों हँस पड़े। "नङ्गी धरती पर—बरफ़ पर—खुले आसमान के नीचे," उन्होंने उत्तर दिया।

ओ, भगवान् ! सरदी के इन दिनों एक रात भी घर के बाहर बितानी पड़े तो हमारे नौकर भी मर जायँ। मैंने उन्हें मेरे साथ चलने की प्रार्थना की। दो बिछौनों वाला एक सब से बढ़िया कमरा मैंने उन्हें बता दिया। एक भी नौकर घर में नहीं था, इसलिए मैं ही बिस्तर फैलाने जा रही थी।

"नहीं, नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है ?" वे बोल उठे—"यह काम तो हम अपने आप कर लेंगे।" यह सोचकर कि वे आराम लेने की जल्दी में हैं, मैं उन्हें नमस्कार करके झटपट लौट पड़ी।

मैं अपने कमरे में पहुँची ही थी कि जिधर आई थी उसी ओर से एक भयानक चीख़ सुनाई दी—"बचाओ रे बचाओ ! डाकू आए ! हत्यारे !!"

आवाज़ पहचानी हुई थी, किन्तु भय के मारे मैं उस समय नहीं सोच सकी कि यह किसकी चीख़-पुकार है। आवाज़ आ रही थी—"बचाओ रे बचाओ ! हत्यारे आए, हत्यारे !"

उस समय की मेरी अवस्था का तुम अनुमान कर सको, तो तुम जान जाओगी कि जब तक वह आवाज कमरों में से गूँजती हुई मेरे कमरे में पहुँचकर स्पष्ट न हो गई, मैं किंकर्तव्य-विमूढ़-सी खड़ी रह गई। ओह, यह तो थी माँ। क्या हो गया उसे? कपड़े थे सारे सिमटे हुए, टोपी आ गई थी आँखों पर, एक पाँव की जूती गायब थी, चेहरे पर ऐसी ललाई थी मानों अभी आँवें में से निकलकर आ रही हो। उसे यह क्या हुआ? वह कहाँ चली गई थी? यह सब मालूम करने में मुझे थोड़ा समय लगा। क्या ख़ूब, ज़रा सोचो तो; वह उसी कमरे में छिपी थी, जिसमें मैं अपने उन दो अतिथियों को ठहरा आई थी। कुछ अनुमान कर सकती हो किस जगह? उन दो बिछौनों में से एक में, पशमीने की रजाइयों के नीचे। शेष सारी बात का अनुमान तुम स्वयं कर सकती हो। थकावट से अर्द्ध-मृत अवस्था में बिछौने पर गिरते ही उस फ़ौजी अफ़सर को कितना आश्चर्य हुआ होगा? बेचारी माँ के लिए चीख़-पुकार मचाने का तो उपयुक्त कारण था। किन्तु वाह री वहाँ छिपने की सूझ! बहुत दिक़्क़त के बाद मैं उसे शान्त कर पाई। मैंने उसे समझाने का प्रयत्न किया कि वे फ़ौजी हमें लूटने अथवा मारने के लिये नहीं आये हैं। अन्त में मुझे इतनी सफलता तो मिली कि उसने फिर से न छिपने का वादा कर लिया। मैंने उन अफ़सरों को समझा दिया कि माँ को गठिया रोग हो रहा है। इसलिए उसे वाष्प-स्नान के लिये ऊनी बिस्तरों में पड़े रहना पड़ता है।

इस बीच में, हमारे मेहमान मुश्किल से झपकी ले पाये थे कि एक अर्दली उनके लिये संदेशा लेकर आ पहुँचा।

"तुम उनसे इस वक्त नहीं मिल सकते," मैंने कहा—"वे दोनों सो रहे हैं। थोड़ी देर ठहर जाओ अथवा घूमकर आ जाना।"

"वे कहाँ सो रहे हैं?" उसने पूछा।

बिना इस बात का विचार किये कि दो दिन की अनिद्रा के बाद उन्हें यों जगा देना अनुचित होगा, वह उस कमरे की ओर बढ़ा। मैं तो सोचती थी कि इस प्रकार उनके विश्राम में बाधा देने वाले उस आदमी का वे सिर उतार लेंगे। किन्तु देखती क्या हूँ कि कुछ ही क्षण में वे कपड़े-लत्ते पहनकर बिना किसी अप्रसन्नता के उस अर्दली के पीछे हो लिये। मेजर ने उन्हें बुला भेजा था।

एक सैनिक का जीवन भी कैसा विचित्र है। बिना किसी विरोध-भाव के ये लोग कैसे अधीन हो जाते हैं?

मैं तो सैनिक बनने में सर्वथा असफल होऊँ, कारण आज्ञा का कारण जाने बिना मैं तो आज्ञा पालन के लिए हाथ भी नहीं हिलाऊँ।

आध घन्टे में सैनिक लौट आये—चेहरे पर नाखुशी अथवा नींद का निशान भी नहीं था। वे अपने कमरे में भी नहीं गये। किन्तु उन्होंने माँको और मुझे बुलाकर बहुत ही विनम्र शब्दों में सूचना दी कि सैनिक अफसरों ने आज रात में एक नाच का आयोजन किया है, जिसमें हमें आमन्त्रित किया गया है। साथ ही उन्होंने एक फ्रांके एक ज़ारदस और एक पोलोनेज़ ❀ के लिए निवेदन किया (जोड़ी का नाच तो होने वाला नहीं था), और मैंने स्वभावतः उनकी बात स्वीकार कर ली।

❀ नाच के विभिन्न प्रकार।

कार्निवाल के बाद यह हमारा पहला नाच था और वे भी मेरी ही भाँति उसके आनन्द को कल्पना कर रहे थे। उनकी आँखों में अब नींद नहीं रह गई थी।

चाहे जो हो, माँ तो अब भी बात-बात में बाधा उपस्थित कर रही थी।

"तुम्हारे पास नाच की पोशाक तो है ही नहीं।"

"वह दूधिया पोशाक है न? मेरी माँ! एक ही बार तो मैंने उसे पहना था।"

"वह तो पुराने फ़ैशन की है।"

"अपने राष्ट्रीय चिन्ह के एक छोटे-से फीते की सजावट काफ़ी होगी। सबसे सुन्दर नया फ़ैशन होगा वह—" साँवले अफ़सर ने बात काटकर कहा।

"मेरे तो पाँव में दर्द है," माँ ने अपनी बात पर अड़कर कहा।

"मेरी माँ, तुम्हारे नाचने की ऐसी ज़रूरत भी तो नहीं है।"

इस बात पर अफ़सर हँसे नहीं—शिष्टाचार के कारण। और उसी कारण माँ ने उस समय तक मुझे बुरा-भला नहीं कहा जब तक वे वहाँ से नहीं चले गये।

"मूरख लड़की," क्रोधित होकर उसने कहा—"मौत के मुँह में दौड़ कर जान-बूझकर क्यों अपना विनाश कर रही है?"

मैं समझी माँ को डर है कि मुझे सर्दी लग जायगी, क्योंकि जब कभी मैं नाच की तैयारी करती, उसे यही भय बना रहता। उसके भय को शान्त करने के लिये मैंने याद दिलाया कि जर्मन नाच नहीं होने वाला है। इस बात से तो वह और भी बिगड़ उठी।

"तुझे कुछ शऊर तो है नहीं," "उसने झिड़ककर कहा—"तू समझती होगी, यह समारोह वे नाचने के लिए ही कर रहे हैं, पगली कहीं की। यह तो सब है दिखावा। उनका असली मतलब है—शहर की छोकरियों को पकड़कर टर्की ले भागना।"

"आह, माँ! तुम नहीं जानती, लड़ाई के दिनों में अफ़सरों को शादी करने की आज्ञा नहीं है।" मैंने हँसते हुए उसे बताया।

इस बात पर तो उसने मुझे और भी भला-बुरा कहा। घर से बाहर निकाल देने की धमकी देकर वह मुझे नाच की तैयारी करने के लिए अकेली छोड़कर चली गई। संध्या तक मैं उसी की तैयारी में संलग्न रही। उस अफ़सर की सलाह के मुताबिक़ मैंने लाल-सफेद-हरा तिरंगी फीता धारण किया। केश-पाश में सजे हुए सफ़ेद-सुर्ख गुलाब तथा उनकी हरी पत्तियों से राष्ट्रीय रंगों का अनोखा आयोजन होगया। मैंने अनुमान ही नहीं किया था कि वे रंग ऐसे फबेंगे!

वे दोनों अफ़सर मैदान में हमारी प्रतीक्षा में उपस्थित थे। बहुत ही मृदु वचनों से उन्होंने हमारा स्वागत किया। इतना सुन्दर शिष्टाचार उन्होंने कहाँ से सीख लिया? अपनी व्याकुलता को दूर करने के लिए मैं हँस पड़ी।

"ख़ैर, देख लेना, इसका अन्तिम परिणाम शोक-प्रद ही होगा। रोने-धोने के सिवा और कोई उपाय नहीं रह जायगा।" माँ ने कहा। तो भी वह मेरी पोशाक व सजावट को दुरुस्त करने में तत्पर थी। यदि वे लोग मुझे ले भागे भी, तो सारी सजावट सुव्यवस्थित तो हो।

अफ़सर हमें नाच-घर में लेगए। मेरे उस राष्ट्रीय वेश-विन्यास तथा

उन दोनों सजीले जवानों के सम्पर्क से जो अद्भुत प्रभाव उत्पन्न होगा, उसका मैं मन ही मन आनन्द लूट रही थी और मैं सोच रही थी कि दूसरे सब अपरूप होंगे, तो उन सब में हमारे ये दो प्रियजन कितने लुभावने मालूम देंगे ?

किन्तु, मैंने बड़ी भूल की। मुझे बहुत ही आश्चर्य हुआ। मेरी ऐसी एक भी साथिन नहीं थी जिसने मेरे से दुगने राष्ट्रीय फीते धारण न किए हों और मेरे वे दो परिचित सैनिक भी अफ़सरों के उस समुदाय में तीसरी श्रेणी के थे। सभी समान आकर्षक, लुभावने, सुन्दर, प्रफुल्ल-वदन थे। बड़े अचरज की बात है, यही आदमी भयंकर रक्त-पात भी कर सकते हैं !

उन सब में था एक, जिसने मुझे आकर्षित कर लिया—एक मुझे ही नहीं, सभी को। वह था एक नौजवान कैप्टेन उसका वह अनोखा सुन्दर मुखड़ा और लम्बा सजीला शरीर उस पोशाक में सबके दिल को लुभा रहा था। और उसकी नृत्यकला का तो क्या कहना ! मज़ूर और ज़ारडस में वह कितनी सजीवता से नाचा ! भीड़ में से आगे बढ़कर उसे भुजाओं में भर लेने के लिए किसका जी नहीं ललचाया होगा। मैं अपनी बात नहीं कहती। उस नृत्य से भी अधिक, उस आदर-सम्मान से भी अधिक, मैं नहीं जानती, क्या था उन स्वप्निल काले नेत्रों में ! ओह, तुम उसका अनुमान नहीं कर सकती। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसने तो भरमा दिया, उत्साहित किया, पराजित कर दिया और साथ ही साथ कर दिया जादू ! घड़ी भर में नाच-घर में उपस्थित सब युवतियाँ उसके प्रेम में पागल हो गईं। मैं भी अपवाद नहीं थी। युद्ध-क्षेत्र

में भी यदि वे इतने ही अटल हैं, तो कौन उनसे लोहा ले सकता होगा ? मेरे उस मनोभाव की तनिक कल्पना तो करो, जब सहसा उसने आगे बढ़कर मुझे अपने साथ चार-चार के नाच में नाचने का सम्मान देने के लिए आमंत्रित किया।

इसे दुर्भाग्य ही की बात समझो, मैं दूसरे से वादा कर चुकी थी। उस समय कोई आकर मेरे साथी नाचने वाले को बुला ले जाता, तो मैं उसका कितना उपकार मानती ! उसे क्या न दे डालती।

"तो अगले नाच में ?" मेरे पास बैठकर कैप्टेन ने कहा।

मुझे मालूम नहीं, मैंने उत्तर दिया या नहीं दिया। तो क्या मेरी तो उस समय ऐसी अवस्था थी, जैसी सपने में उड़ने के समय होती है।

"अपने वादे को भूल न जाना।" उसने कहा।

सहसा मैं आपे में न आजाती तो शायद यह कह बैठती कि मैं तो अपने अस्तित्व ही को भूली जा रही हूँ। खैर, मैंने उदासीन वाणी से इतना-सा कह दिया कि नहीं भूलूँगी।

"आप तो मुझे जानती नहीं ?"

गाँव की कोई भोंदू होती तो उसी समय कह उठती—"सैकड़ों में ! हज़ारों में ! एक ही निगाह में !"

पर मैं ? मैं तो मानो दुनिया की एक सरल-सी बात कर रही होऊँ। अपनी छाती पर से गुलाब की एक कली उठाकर उसे देते हुए, अपनी मानसिक व्यग्रता को दबाकर, मैंने कहा—"मैं आपको इससे पहचान लूँगी।"

कैप्टेन ने कली को चूम लिया। मैंने यह देखा नहीं, पर जान लिया। उस समय उसकी उन आँखों पर मैं सारी दुनिया न्योछावर कर देती। मुझे छोड़कर वह सामने के एक दर्पण के नीचे जा बैठा। इस बार वह नाचा नहीं, अपनी विचार-धारा में निमग्न बैठा रहा। इस बीच में दो ज़ारदस और एक पोलोनेज़ के नृत्य समाप्त होगए। इसके बाद हमारे चार-चार के नाच की बारी थी। तुम अनुमान कर सकती हो कि यह समय कितना लम्बा मालूम देरहा था। प्रतीक्षा की इस अवधि का कोई अंत ही नहीं था। लोगों को इस प्रकार उन्मत्तता से नाचते हुए मैंने पहले कभी नहीं देखा था। यद्यपि उन्हें सोये तीन रातें हो गईं थीं तो भी थकावट का नाम-निशान भी नहीं था। मैं तो बटालियन के कमांडर मेजर श—से परिचय प्राप्त करके मन-बहलाव कर रही थी। वह भी था ख़ुश मिज़ाज। उसका नाम था जरमन। हँगेरियन बोलता तो टूटी-फूटी; जरमन अथवा फ्रेंच में बात करने पर भी वह तो हँगेरियन में ही उत्तर देता। इसके सिवा वह था भयंकर बहरा, गला फाड़कर बात-चीत करने की उसकी आदत थी—ऐसा मालूम देता, मानो गोलियाँ आपस में बात कर रही हैं!

लोग कहते थे। वह बहादुर लड़ाका है। पर उसकी शकल-सूरत में कोई आकर्षण नहीं था—भद्दी, बेमेल सूरत, लम्बा-पतला चेहरा, छोटे-छोटे बाल, और वह डरावनी दाढ़ी तो बिल्कुल बे मुनासिब थी। सबसे अधिक दिल्लगी की बात यह थी कि मैं जो कुछ कहती, वह सुन नहीं पाता और वह जो कुछ कहता, मैं समझ नहीं सकती। उसने मुझे बताशों की पेटी लाकर दी, और मैंने अपने शहर के हलवाइयों की शिकायत उससे की। मेरे मुँह बनाने से वह सम्भवतः यह समझ बैठा कि

किसी ने नाच में मुझसे अनुचित व्यवहार किया है और उसने उत्तर में कुछ कहा, जिससे—केवल उसके हाव-भाव से—मैं इतना ही अनुमान कर सकी कि वह अपराधी के टुकड़े-टुकड़े कर देना चाहता है। अन्यथा ऐसी परिस्थिति में दूसरा कोई तो वैसा ही हाव-भाव प्रदर्शित करता, जैसा लड़ाई में रहने वाले आदमी साधारणतः किया करते हैं।

आख़िर मेरे चार-चार के नाच की बारी आई। बैण्ड सुरीले स्वर से बजने लगा, और नाचने वाले अपनी-अपनी साथिनों को खोजने की जल्दी करने लगे। अपने साथ नाचने वाले को आगे बढ़कर, नीचे झुककर उस पुष्प को छाती से लगाते देखकर हर्ष के मारे मेरी छाती फूल उठी। मुझे भय है, उसका हाथ अपने हाथ में लेते समय मेरा हाथ काँपने लग गया था। किन्तु मैंने केवल मुस्करा कर संगीत पर एक दो आलोचनात्मक वाक्य कह दिए।

"आह, तुम तो मेरी साथिन को ले चले," सारा मज़ा किरकिरा करने वाले हाव-भाव के साथ हँसकर मेजर चिल्लाकर बोला।

जब हम पंक्ति में जाकर मिल गए, तो किसी ने पीछे से आहिस्ते से कहा—"कैसी अद्वितीय जोड़ी है यह !"

आह, इलमा, मैं कितनी खुश थी ! बाँह में बाँह डालकर जब हम खड़े थे, तब मुझे ऐसा मालूम देता था कि उसका रक्त मुझ में प्रवाहित हो रहा है और मेरा उसमें !

हम संगीत की प्रतीक्षा में थे, किन्तु उसके आरम्भ के पहले ही बाहर सड़क पर कूदते हुए घोड़ों की टाप सुनाई दी और दूर से आती हुई गोलियों से खिड़कियाँ बोल उठीं। सहसा एक धूलि-धूसरित सेनानी

नाच-घर में प्रविष्ट हुआ। उसने सूचित किया किया कि शत्रु ने बाहर की ओर आक्रमण कर दिया है।

मेजर ने गोलियों की आवाज़ सुन ली थी; जो बात वह आगत सेनानी के शब्दों से नहीं जान सका, उसके चेहरे के हाव-भाव से जान गया।

"आह, बहुत ठीक," ताली बजाकर वह चिल्ला उठा। उसकी डरावनी चेष्टाओं से मार-काट का भाव प्रकट होने लगा—"हम तो उनकी बाट ही जोह रहे थे। इन महिलाओं से हमें कुछ क्षण का अवकाश ग्रहण करना होगा। बस, कुछ ही क्षण श्रीमतियो! हम लोग अभी लौटकर आवेंगे। इतनी देर आप आराम कर लें।"

और वह अपनी तलवार सँभालने के लिए दौड़ पड़ा। सब अफ़सरों ने भी उसका अनुगमन किया और मैंने देखा—देखते-देखते उनके वे प्रसन्न, नम्र, और प्रशंसक भाव परिवर्त्तन हो गए क्रुद्ध, क्रूर, भयावह रूप में! सभी चल पड़ने के लिए आतुर हो रहे थे, मानो बहुत पहले से वे इसकी प्रतीक्षा में थे।

मेरा साथी भी मुझे छोड़कर अपनी तलवार और अपने टोप की ओर झपटा। उसकी चाल में थी सबसे अधिक दृढ़ता, आँखों में औरों की अपेक्षा अधिक उत्साह। अब तक उसके अवलोकन में मैंने हर्ष—हर्ष से भी अधिक किसी बात—का अनुभव किया था, और अब मेरे हृदय का प्याला लबा-लब भर गया प्रशंसा के उत्साह से। ज्यों ही उसने कमर में तलवार बाँधी मेरी नस-नस एक अद्भुत ताप से जलने लगी। उस समय मन करता था कि मैं भी समरांगण में उसका साथ दूँ। उसके साथ सवार होऊँ और शत्रु-सैन्य के मध्य में कूद पड़ूँ! मेरा भेंट किया हुआ गुलाब

अब भी उसके हाथ में था। टोप पहनकर उसने उसे उसमें खोंस लिया, और घूमकर वह मानों भीड़ में किसी वस्तु को खोजने लगा। हमारी आँखें चार हुईं। वह झटपट निकल गया, और नाच-घर होगया खाली।

इस बीच में हम सब इस प्रकार बैठी रहीं, मानो कुछ भी तो नहीं हुआ। मेजर हुक्म दे गया था कि उसके लौटने के पहले कोई बाहर न जाय। मेरे जीवन में वह घड़ी कितनी लम्बी थी, मैं ही जानती हूँ।

हममें से कई खिड़कियों में खड़ी होकर गोलियों की आवाज़ सुन रही थीं और उनकी दूर व समीप की आवाज़ से परिणाम का अनुभव कर रही थीं। सड़कों पर लड़ाई के अन्त का अनुमान करके भी किसी ने घर लौट जाना उचित नहीं समझा। वहीं ठहरकर सब परिणाम की प्रतीक्षा में थीं।

शीघ्र ही मार-काट की आवाज़ आगे की ओर दबती हुई सुनाई दी, और अन्त में बिल्कुल शान्त होगई। सिविलियन इससे नेशनल गार्ड्स की विजय जान गए। वे ठीक थे। पाव घण्टे में हमने सुना, वे हर्ष-नाद करते हुए लौटे चले आ रहे हैं। अफ़सर लोगों ने प्रसन्न मन से नाच-घर में प्रवेश किया। बहुतों ने अपनी पोशाक पर से कुछ साफ किया—पंक अथवा रक्त—और वे सब अपनी साथिनों की ओर दौड़ पड़े।

"नाच को कहाँ छोड़कर गए थे?" एक ने पुकारकर पूछा।

"चार-चार के नाच के प्रारंभ में।" बहुत-से एक साथ बोल उठे। सभी पंक्तियाँ सजाने लगे। मानो अभी भोजन-गृह से निकलकर आ रहे हों। मेरा साथी और मेजर, ये दो ही अनुपस्थित थे।

मेरे नेत्र व्यर्थ द्वार की ओर लगे हुए थे। प्रतिक्षण कोई न कोई प्रवेश कर रहा था, किन्तु एक वही नहीं, जिसके लिए मैं बावली हो रही थी। आखिर मेजर ने प्रवेश किया। उसने चारोंओर देखा और मुझे देखकर झटपट मेरी ओर बढ़ा। हास्य-जनक रीति से झुककर मेरे कथन की प्रतीक्षा के बिना ही बोल उठा—सुन्दरि ! तुम्हारा साथी नाचने वाला वचन पालन न कर सकने के कारण विनम्रता-पूर्वक क्षमा याचना करता है। क्या किया जाय, तुम्हारे साथ नाचने का आनन्द लूटने की इच्छा होते हुए भी वह असमर्थ है। उसके पाँव में गोली लगी है, घुटने के ऊपर से पाँव काटना ज़रूरी है।"

आह, इल्मा ! चार-चार का नाच मैं अब फिर कभी नहीं नाचूँगी ! मैं बहुत ही बीमार हूँ। मेरी निराशा का पार नहीं।

—o—

रामानिया : : : आइ० एल० काराजिएल

एक महान आविष्कार

एक दिन रविवार के प्रातःकाल शैतान ने भगवान् के सम्मुख उपस्थित होकर निवेदन किया—"पवित्रातिपवित्र देव ! आप मानव-जाति की चिन्ता में इतने रत क्यों हैं ?... क्या आपको विदित नहीं कि वे किसी काम के नहीं ?... उन्हें मेरे सुपुर्द करके आप निश्चिन्त क्यों नहीं हो जाते ? आपके लिए उनकी देख-भाल करना निरर्थक है। वे हैं मूर्ख, नादान !"

किन्तु भगवान् को उस समय इस प्रकार के बकवाद से अरुचि हो रही थी। अतएव उन्होंने झिड़ककर कहा—"भाग यहाँ से दुष्ट, दुराचारी ! मैं आज तेरी ऐसी निकम्मी बात नहीं सुनना चाहता।"

"पवित्राति—"

"क्या है ? जब मैंने उनकी सृष्टि मेरे सदृश की है, तो वे क्यों कर नादान हो सकते हैं ? कैसे ?"

"आपने उनकी अपने सदृश सृष्टि तो की है, किन्तु उनके सिर ठीक नहीं रचे। यदि आप पवित्रात्मा मुझे यह कहने की आज्ञा दें तो—"

"चुप रह! दूर हट...तू ..निराशावादी!" भगवान् कठोरता से बोले—"मुझे क्रुद्ध न कर!...ऐसी असत्य और कपोल-कल्पित गाथा लेकर क्यों आया है तू यहाँ? मेरी सृष्टि कभी पागल-नादान हो सकती है?...मैं तो उन्हें पागल नहीं मानता।"

"खैर," उस दुष्टात्मा ने कहा—"आप पवित्रात्मा सृष्टि-रचना के पश्चात् उन लोगों के बीच गए ही नहीं। इस बात का स्मरण दिलाने के लिए आप इस अधम को क्षमा करें कि उन्हीं ने आपके परम पवित्र स्वरूप का अनादर किया था।"

"क्या कहा?...मेरे स्वरूप का अनादर?...कब?" भगवान् ने पूछा; भृकुटी चढ़ाकर, विस्मृति का नाट्य करके अथवा और कुछ, कौन जाने? संभवतः वह भूल ही गए हों; क्योंकि भगवान् के लिए सब कुछ संभव है।

"क्या आपको स्मरण नहीं है? गोलगोथा पहाड़ी पर...वे दो चोर..."

"ओह, ठीक!" विषय बदलने का प्रयत्न करते हुए भगवान् ने कहा—"क्या इन दिनों तू मानव-जगत् में गया था?"

"क्यों नहीं,—मेरी जीविका के निर्वाह का और साधन ही कौन-सा है। हे सर्व शक्तिमान्! मैं रात-दिन उनके साथ रहता हूँ, निद्रा में भी। —उनका लालन-पालन कौन करता है?—उन्हें सत्पथ कौन दिखाता है? कैसे मूर्ख हैं वे! कितने दिनों से मैं उन्हें शिक्षा दे रहा हूँ, पर सब व्यर्थ। कैसे जड़-मति हैं वे!"

"चुप, चुप !" भगवान् को क्रोधित होते देखकर सन्त पीटर ने बीच में कहा—"हम तुझे भली भाँति जानते हैं। भगवान् को चाहिए प्रमाण। निरे शब्दों से काम नहीं चलेगा।—इधर आ, ज़रा कान गरम करने से तेरी अक्ल ठिकाने आयेगी !"

बेचारा शैतान क्या करता ? यह देखकर कि सन्त पीटर मज़ाक नहीं कर रहे हैं, वह वहाँ से भाग छूटा। किन्तु उसने मन ही मन कहा—"आपको प्रमाण चाहिए ? प्रमाण ? दूँगा—एक नहीं, अनेक।"

वह वहाँ से चल पड़ा। और जब सूर्यास्त हो रहा था, तब वह आ पहुँचा एक जरमन नगरी में, जो दो नदियों के बीच में शांति-पूर्वक विराज रही थी। नगर के द्वार में प्रवेश करते ही उसे प्रार्थना का नाद कर्ण-गोचर हुआ। शैतान काँपकर ठहर गया।—दुम दबाकर अपनी हथेलियों को नाखूनों से खरोंचता हुआ उस समय तक वह वहीं खड़ा रह गया, जब तक कि प्रार्थना की अंतिम ध्वनि सान्ध्य पवन में विलीन न हो गई। अँगूठों के बल चलकर उसने नगरी में प्रवेश किया, और नाभी तक लटकती हुई दाढ़ी वाले एक आदमी के समीप पहुँचकर बोलाः—

"सलाम भाई, सलाम ! क्यों, क्या हाल है जनाब गटनबर्ग ?"

(आप जानते ही हैं, शैतान से आदमियों की बोली और नाम छिपे नहीं।)

और—उन दोनों में होगई दोस्ती। इधर से उधर, उधर से इधर धक्के खाते-खाते आखिर वे पहुँचे मुर्दा ढोने की एक गाड़ी में। यहाँ बैठकर उन्होंने खूब बातें की।—किन्तु शैतान ने उस भले आदमी के कान में क्या फूँक मारी, सो तो शैतान ही जानता है। बस, इतना

कहना ही काफी होगा कि ड्यूशे की सारी रात अनिद्रा और सोचने-विचारने में बीती। और भी बहुत सी रात्रियाँ—गरीब बेचारा पलक भी नहीं मार सका। विचारों और कल्पनाओं से वह लड़ता झगड़ता रहा। कभी घुमाता, कभी मरोड़ता, भली बात को छोड़ देता, बुरी को चुन लेता। अनेक दिन और रात बीत गए। अन्त में बहुत ही अधिक कष्ट के पश्चात् उसने आविष्कार किया छापखाने का।

तब—मजबूती से पकड़ो। कागज़ छापो—और छापो—और छापो।

पहले तो काम मन्द-गति से ही हुआ। किन्तु शैतान था खयालों का खज़ाना। उसने जाँच करके देखा, पहिए बहुत धीमे चल रहे हैं। अपनी दुम समेटकर उसने धुरियों में बल भर दिया और यह देखो—तीव्र गति।—घण्टे भर में एक लाख कागज छापे बिना तो उसे संतोष ही नहीं। सभी छपे हुए, संख्या लगी हुई, ठिकाने-पते किए हुए, टिकट लगे हुए, डाक में जाने को तैयार, और अब रेल पथ पर। यहाँ भी घण्टे भर में नब्बे मील पूरे करने के लिए उसने पहियों में अपनी दुम का बल भर दिया है। ऐसी है उसकी जल्दी अपनी वस्तुओं के वितरण करने की।

शीघ्र ही सन्त पीटर स्वर्ग के द्वार पर एक भय-प्रद कर्कश स्वर सुनते हैं। मानो खुद तातारों की टोली वहाँ आगई हो—कैसी है यह सीटी और आवाज!—और यह धुँआ?

"क्या है?—क्या है?"

यह है शैतान की गाड़ी बाइबिल, ज्ञान-विज्ञान तथा कानून के ग्रन्थों, अखबारों और नए पुराने मासिक पत्रों से लदी। वह दुष्टात्मा सारे सामान को उतारकर भगवान् की ओर दौड़ पड़ता है।

भगवान् फिर कहते हैं—"अबे निकम्मे ! तू फिर आ धमका ?"

"हाँ, सर्वशक्तिमान ! फिर।"

"क्या समाचार है ?"

"एक छोटा-सा तमाशा भगवन् ! मैं ये चिथड़े लेकर उपस्थित हुआ हूँ। आपने प्रमाण माँगे थे, और मैं ये प्रमाण ले आया हूँ। देखिए, अनुग्रह करें पीटर सन्त ! ज़रा ऐनक लगाकर देखें—" शैतान ने अपनी प्रत्येक वस्तु भगवान् और सन्त पीटर को दिखाई।

भगवान् देखते हैं। सन्त पीटर देखते जाते हैं। एक दूसरे की ओर ताकते हुए अपनी दाढ़ियों को सहलाते जाते हैं।

"क्यों, मेरा कथन सत्य है न सर्वशक्तिमान् ?"

शैतान पूछता है।

भगवान् कोई उत्तर नहीं देते।

"मेरा कथन सत्य है न सन्त पीटर ?"

सन्त पीटर भी कोई उत्तर नहीं देते।

"तो क्या हुआ ?" कुछ क्षण बाद भगवान् पूछते हैं।

"तो उन्हें मुझे सौंप दीजिए।"

"अह्, जा ले ले। मुझे अकेला रहने दे !" दुःखी होकर भगवान् कह उठते हैं।

उछलता-कूदता शैतान जाने को तैयार हो जाता है।

"ठहर !—कहाँ भाग चला रे दुष्ट ?"

"उन्हें लेने।"

"क्या ?...और यह सारा कूड़ा यहीं छोड़ जायगा ?—उठा इसे ! याद रखना, यह सब लेकर फिर कभी यहाँ चला आया तो सन्त पीटर को हुक्म देकर तेरी दुम कटवा लूँगा। सुना तू ने ?"

शैतान भागा वहाँ से—दुम दबाकर, अपना सामान पीठ पर लाद कर।

इस प्रकार मानव-जाति ने सीखा पुस्तकालयों तथा विद्वत्परिषदों का निर्माण। इस भय से कि कहीं उनका ज्ञान काल के गाल में विलीन न हो जाय।

रोमानिया : : : : : : मेरी

(रोमानिया की रानी)

वेसाइल ने क्या देखा ?

रात का समय था।

मैदान में ठंडी हवा के झोंके चल रहे थे; भयङ्कर जाड़ा पड़ रहा था। दूर—बहुत दूर छोटे-छोटे तारे टिमटिमा रहे थे। मानो शीत के भय से वे भी बहुत दूर भाग गए हैं। मैदान और खेतों में सर्वत्र पड़ी हुई बरफ की सफ़ेदी से ही प्रकाश की क्षीण आभा फैली हुई थी। उस निद्रालु भूमि को तेज हवा बीच-बीच में कम्पित कर रही थी और वह उस निर्दयी से बचने के लिए कहीं-कहीं धूल के बादल बनाकर आकाश की ओर उड़ रही थी।

वह थी एक अंधकार-पूर्ण रात्रि, भयानक उदास रात—ऐसी रात, जिसकी कल्पना भी भय-प्रद है। हवा का चीत्कार रुकता, तो उस रात्रि में एक ऐसा स्वर गूँजता सुनाई देता, जिसमें युद्ध का निनाद समाया रहता।

रात्रि में कठिनता से पहचानी जाने वाली, बरफ से घुटनों तक ढकी हुई, सड़क के एक ओर प्रायः बुझी हुई अग्नि के चारोंओर सैनिकों की एक टोली बैठी हुई थी।

फेनिल लहरें जिस प्रकार चट्टानों से टकराती हैं, उसी प्रकार बरफ की बौछारों को टकराकर मानो हवा उनसे पूर्व जन्म का बदला ले रही थी। सैनिकों ने अपने कालर ऊँचे उठा लिए थे और टोपियाँ कानों पर खींच ली थीं, तो भी बरफ के उस तूफ़ान से उनका बचाव नहीं हुआ।

वे करीब १०।१२ सिपाही थे। उनमें से तीन-चार बूढ़े दढ़ियल थे, और एक जवान। चिंतातुर भाव से अग्नि की अवशिष्ट राख के पास बैठे हुए कैदियों का वे पहरा दे रहे थे। बरफ से और उससे भी अधिक अपने शत्रुओं की उस घृणा और दया-मिश्रित अपमान-जनक दृष्टि से बचाने के लिए बंदी लोग अपना मुँह घुटनों में छिपाये बैठे थे। बिना मोज़ों के उनके हाथ ठंढ के मारे फट रहे थे और शीत, दुःख या भय अथवा तीनों ही के कारण वे थर-थर काँप रहे थे।

उनके बे परवा पहरेदार उनकी ओर बहुत कम ध्यान दे रहे थे। हवा के झोंकों से बिखरे हुए वाक्यों में वे आपस में बात कर रहे थे। विशेषतः अपने जवान साथी से, जो अपनी बन्दूक का सहारा लेकर उस प्रकार खड़ा था जिस प्रकार गरमियों के दिनों में एक गड़रिया अपनी लाठी का सहारा लेकर खड़ा होता है।

वह अट्ठारह वर्ष ही का होगा। अपनी बड़ी-बड़ी भूरी आँखों में सपने का-सा भाव भरकर वह उस रात्रि को देख रहा था। बरफ के कण उड़-उड़कर उसकी टोपी पर, उसके कपड़ों पर जम रहे थे। यहाँ तक कि

उसकी सुदृढ़ भौहें और पलकें भी अछूती नहीं रहीं। बरफ हटाने के लिए बार-बार उसे अपना हाथ ऊपर उठाना पड़ता था।

"वेसाइल, आग तो बुझती जारही है।" एक बूढ़े सैनिक ने कहा—"इस मनहूस रात के खतम होने के पहले तो ऐसा मालूम होता है हम ही ख़तम हो जायँगे !"

"हाय, हम रास्ता क्यों भूल गए ?" एक ने चिंता-पूर्वक कहा।

"हमने जान-बूझकर ऐसा थोड़े ही किया," एन्ड्री स्कुट्रू नाम के उस पहले व्यक्ति ने कहा जो उस टोली का सरदार था। जितना छोटा उसका नाम था, उतना ही छोटा उसका दिल था। दूसरे उसके साथ वैसा ही अनादर का बर्त्ताव करते।

"ठंड और पाले से जमे हुए पाँवों से कोई कैदियों को भी कहाँ तक घसीटकर ला सकता है ? रात पड़ने के पहले ही हमें गाँव में पहुँच जाना चाहिए था। हम लोग नहीं पहुँच सके, यही तो आफ़त की बात है। दिन उगने के पहले ही हम लोग यहीं बरफ के नीचे जम जायँगे, तो और दूसरे बहुतों की श्रेणी में हमारा नाम भी लिख लिया जायगा और उसका दोष न भगवान् को होगा और न हमें !"

"तो किसका दोष होगा ?" किसी एक ने पूछा।

"इससे न तुम्हें मतलब है, न मुझे।" स्कुट्रू ने फटकारकर कहा।

"यह दोष है लड़ाई का !" उनमें से एक वृद्ध सैनिक पेट्रीपासा ने कहा, जो अब तक चुपचाप बैठा था।

"लड़ाई !" स्कुर्टू गरज उठा—"लड़ाई आती है या तो रूखी-सूखी गरमी की भाँति, अथवा एक बाढ़ की भाँति, जब कि पौधे पनपे हुए नहीं होते ।"

"ऐसी लड़ाई भी ?" एक ने पूछा ।

"वे जर्मन क्रूर, नर-पिशाच !" बुझती हुई आग की राख को व्यर्थ छेड़ते हुए एक ने कहा ।

"काल उन्हें खा क्यों नहीं जाता ?" कहकर स्कुर्टू ने घृणा प्रदर्शित करते हुए राख के ढेर पर थूक दिया ।

वेसाइल ने अपने बड़े साथियों की ओर देखकर कहा—"मुझे इन बन्दियों का बड़ा दुःख है ।"

"दुःख ?" एक साथ बहुत से विरोध करते हुए बोल उठे । "इन परदेशी कुत्तों के लिए दुःख ?"

"वे भी जवान हैं, और हैं अपने घरों से दूर !" वेसाइल ने सफ़ाई देते हुए कहा ।

"और हम ? हम लोग कहाँ हैं ?"

"हम तो फिर भी रोमानिया की भूमि पर तो हैं ।"

"हम यहाँ हैं, तो यह उनका दोष थोड़े ही है ?"

बर्फ़ीली हवा का एक भयानक झोंका आया और उसका प्रहार अपनी पीठ पर लेने के लिए सब इधर-उधर घूम गए ।

"जंगली जानवरों के काम की है यह रात," एक ने कहा ।

"भूत-प्रेतों के काम की," दूसरे ने कहा ।

"मरे हुए लोगों के काम की," तीसरे ने कहा ।

"वेसाइल, जलाने को लकड़ी नहीं मिली, तो हम लोग यहीं अकड़ जायँगे," स्कुट्टू ने कहा।

"इस सूखे प्रदेश में लकड़ी मिलेगी भी कहाँ ?" गड़रिए की लाठी की भाँति बन्दूक का उपयोग करते हुए वेसाइल ने उत्तर दिया।

"तुम्हारे पैरों में जवानी का दम है," पेट्रोपासा ने कहा—"और, रात भी तो इतनी अँधेरी नहीं है—"

"बरफ के कारण ही तो इतना अँधेरा नहीं है !" उस ओर से किसी एक ने कहा।

"कैसी भयानक रात है यह !" एक आह के साथ उनमें से एक दूसरे ने कहा।

"वेसाइल, तेरे पाँवों में जोश है—" पेट्रोपासा ने पुनः ज़ोर देकर कहा। और बूढ़ा स्कुट्टू, जो एक सिगरेट जलाने के प्रयत्न में था, उसकी ओर देखने लगा।

"तुम तो अभी जवान हो—सब से अधिक हट्टे-कट्टे। जाकर कहीं से लकड़ी क्यों नहीं खोज लाते ?"

"मेरा काम तो बन्दियों का पहरा देना है," विरोध करते हुए वेसाइल ने कहा। आपस में उसने पैर सटा लिए, पर अपनी जगह से टला नहीं।

"इनका पहरा तो एक कुत्ता भी दे सकता है," स्कुट्टू ने कहा—"और, मैं तुम्हारा मुखिया यहाँ किसलिए हूँ ?"

किसी ने रूखेपन से हँस दिया है।

"तेरे आदर से तेरा वृद्ध गर्वान्वित होगा !"

"रहने दो बुढ़ापे की बात" स्कुट्रू ने डपटकर कहा—"किसी ज़माने में वह भी जवान था और उसने बहुत से बच्चे पैदा किए थे। प्रायः सभी पुत्र थे।"

"कहाँ हैं वे?"

स्कुट्रू ने अपने कंधे झटकाकर विरोध-सूचक भाव प्रदर्शित किया।

"भगवान जानता है इस युद्ध के साथ—और उसके बाद—" कुछ ठहरकर उसने अस्पष्ट स्वर में कहा।

"उन्हें लड़ना आता है?" एक ने पूछा।

"वे हैं दानव के सगे भाई," अंधकार में से एक कह उठा।

"इससे हमें क्या?" दूसरे ने कहा।

"इससे तो नहीं, पर उनकी गोलियों से ज़रूर मतलब है!" स्कुट्रू ने दाँत निकालकर कहा। बहुत देर के प्रयत्न के बाद उसने सिगरेट जला ली थी।

"अब भी तुम्हें उनकी आवाज़ नहीं सुनाई देती?" वेसाइल ने पूछा।

"वज्र पड़े उन पर!" एक साथ बहुतों ने कहा और उसके बाद सब मौन होगये। उस काली रात में केवल हवा की सनसनाहट सुनाई दे रही थी।

"वेसाइल!" पेट्री ने फिर कहा—"तुम्हारे पैरों में जवानी का दम है, और रात भी इतनी अँधेरी नहीं है—"

यदि आग तापने के लिए लकड़ी नहीं मिली, तो सबेरा होने के पहले ही हम सब का ख़ातमा हो जायगा।" स्कुट्रू ने धीरे-धीरे गर्दन

हिलाते हुए स्वीकार किया—"जाओ, वेसाइल, एक जवान की तरह कंधे पर बंदूक रखकर लकड़ी खोज लाओ—कैसी ही लकड़ी क्यों न हो।"

वेसाइल ने अपने कंधे हिला दिए। "जैसी तुम्हारी मर्ज़ी!" कह कर, बिना और विरोध-बाधा के, अपनी बंदूक कंधे पर रखकर उस बर्फीले ऊँचे-नीचे स्थल में चल दिया। उसे परवा ही नहीं थी कि किधर जाना ठीक होगा। किधर भी जाय, उस मरुभूमि-सरीखे प्रदेश में लकड़ी तो मिलेगी नहीं।—रात्रि का समय था—निर्जन प्रदेश था—न कहीं झोंपड़ियाँ थीं, न पेड़-पौधे थे। कुछ भी तो नहीं—कोई पुराना लकड़ी का बना कुआँ भी तो नहीं था—उसे लकड़ी मिले भी तो कहाँ? गिरता-पड़ता अनमने मन से वेसाइल रात्रि के अंधकार को भेदता हुआ एक ओर जा रहा था।

भाँति-भाँति के विचार उसके मन में उठ रहे थे। वह अद्भुत, किन्तु सुखकर कल्पना में लीन था। उन कल्पनाओं का संबंध न तो शीतकाल की भयानक रात से था और न युद्ध-क्षेत्र से।

फल-फूलों के वृक्षों के झुरमुट में आधे छिपे हुए ग्राम को जाती हुई एक रेतीली सड़क पहाड़ की घाटी में दिखाई दी। सूर्यास्त का समय था बैलों के एक टोले को एक जवान लड़का गाँव की ओर हाँक ले जा रहा था। उसके हाथ में एक हरी डाली थी। और वह सीटी के स्वर में एक करुणा-जनक गीत की कड़ी गा रहा था—बार-बार वह उसी कड़ी को दोहरा रहा था।

"वेसाइल के ओठों ने भी वही राग अलापने का प्रयत्न किया। किन्तु सरदी के मारे वे फट गए थे। केवल दो-चार स्वर-लहरियाँ ही उन ओठों

से निकल सकीं।

वह जवान लड़का अपने जानवरों को लिए जा रहा था और उनके पाँवों से उड़ी हुई धूल उसके मुँह और हाथों पर जमती जा रही थी—

मार्ग बहुत लम्बा था। उस लड़के और उन जानवरों को—किसी को भी समय की चिंता नहीं थी।

गाँव में पहुँचने पर एक-एक करके बैल अपने-अपने घरों में जाने लगे। ज्यों ज्यों लड़का आगे बढ़ता था, बैलों की संख्या कम होती जाती थी।

अब भी वह अपनी हरी डाली की छड़ी को फटकारता हुआ उसी स्वर से सीटी बजा रहा था।

छोटे-छोटे बच्चे और मिट्टी में लथ-पथ सुअरों का परिवार, जिधर से वह गुज़रता, दौड़कर रास्ते में इधर-उधर हो जाता। सुअरों की छोटी छोटी दुम और उनकी चाल अनोखी थी। फटे-पुराने चिथड़े पहने बालकों का दल शोर मचा रहा था।

हरएक घर के आगे 'पंपकीनों' ॐ के ढेर लगे थे और प्रत्येक द्वार पर लाल रस्सियाँ लटक रही थीं। मानो जंगली पोतों की विशाल-काय मालायें लटक रही हों। धूल के बादल और संतोषमय अलस्य सारे गाँव पर छा रहा था। सर्वत्र थी शांति। और वह युवक अपनी प्रेयसी के पास लौट रहा था।

अँधेरे में किसी चीज़ से ठोकर खाकर वेसाइल गिर पड़ा। बरफ गहरी और मुलायम थी। चोट नहीं आई। किन्तु, वह सुखकर कल्पना विलीन हो गई! वह फिर उस निर्जन, एकान्त प्रदेश में लौट आया और

ॐएक प्रकार का फल

उस भयानक शीत के मारे काँपने लगा। सुदूर देश से सुनाई देने वाली गोलियों की आवाज़ ने वास्तविकता के ज्ञान से उसे आन्दोलित कर दिया।

"लकड़ी—लकड़ी, मुझे तो लकड़ी खोजनी है !" उसने सोचा— "इस वीरान जगह में लकड़ी मिलेगी भी कहाँ ? हाय, भगवन्, कैसी रात है यह ? हवा क्या है, कोड़े चल रहे हैं। और बरफ़ तो अंग-अंग में सुई चुभो रही है,—पर लकड़ी, हाय ! लकड़ी कहाँ पाऊँगा ?"

अपने प्राण-विहीन हाथों को फटकारकर वेसाइल खड़ा रह गया। भटकते-भटकते उसने सड़क छोड़ दी थी। अंधे की भाँति वह यों ही एक ओर चला जा रहा था। उसे बहुत ही कम दिखाई दे रहा था। जहाँ कहीं बरफ़ का आवरण कम था, वे स्थल दूर से कुछ अधिक काले दिखाई देते थे। जगह-जगह भाँति-भाँति के ढेर लगे थे। कहीं पत्थरों का ढेर था, कहीं मरे हुए घोड़े का कंकाल पड़ा था तो कहीं सड़ी हुई घास ही जगह रोके पड़ी थी। रात्रि की उस भयावह शांति में उन वस्तुओं से अमंगलकारी अर्थ ही निकलता था। युद्ध के समय प्रत्येक बात संभव है।—

वेसाइल सिहर उठा। कुछ क्षण पश्चात् गाँव की वह मनोहर कल्पना पुनः उठ खड़ी हुई। उसे फिर एक बार नारंगी रंग के पंपकिनों के ढेर दिखाई देने लगे और झाड़ी की ओट में से एक लड़की उस चरवाहे के संगीत की कड़ी को दोहराती सुनाई दी।—

"ओह, मुझे तो लकड़ी ढूँढ़नी चाहिए !" शांति और सुख के उस चित्र को आँखों से परे करते हुए वेसाइल बोल उठा—"साथी शीत के मारे अकड़ रहे हैं और मैं भी यों भटकता फिर रहा हूँ।"

उसने अपने चारोंओर देखा। सड़क की वह गहरी-सी पंक्ति ज़्यादा दूर नहीं दिखाई दी। उसी पर होकर आगे बढ़ना ठीक होगा।

धीरे-धीरे कष्ट-पूर्वक पाँव उठाता हुआ वह उस ओर चला। धरती ऊबड़-खाबड़ हो रही थी। वह थका हुआ था और पाँव सरदी के मारे सूने हो रहे थे।

सहसा वह कुछ देखकर चौंक पड़ा। ओह, वहाँ वह क्या है? तीन दुर्बलकाय-प्रेत पास-पास खड़े हैं—उस रात्रि के अंधकार में वे तीन एकाकी क्षीण कंकाल खड़े हैं!

उसका हृदय धड़कने लगा। हाथों में पसीना आगया। क्या हैं वे? हे ईश्वर, कितनी सुनसान भयानक रात है यह! चाहे जो हो, वह डर क्यों रहा है? प्रेत हों, तो प्रेत सही। उसका क्या बिगाड़ेंगे! इनकी अपेक्षा तो एक ज़िंदे बोश से मिलना अधिक भयानक है। किन्तु, उस समय वेसाइल का मन उन तीन अज्ञात प्राणियों की अपेक्षा जीवनधारी बोश को शायद ही अधिक भयानक समझ रहा हो।

अपने मन की दुर्भावनाओं पर विजय प्राप्त करके वेसाइल उन प्रेतों की ओर बढ़ा और वे तीनों प्रेत चुपचाप उसकी प्रतीक्षा करते हुए स्थिर खड़े रहे। वे थे तीन क्रॉस। तीन एकाकी जीर्ण-शीर्ण लकड़ी के क्रॉस—तीन निर्जन मृत्यु-शय्या!

मन ही मन मृतकों के प्रति एक प्रार्थना गुनगुनाता हुआ वेसाइल अपने हृदय का साहस बटोरकर वहाँ तक पहुँचा। वह चकित नेत्रों से उन तीन करुणाजनक प्रतिमाओं की ओर देखने लगा। वे सैनिकों की क़ब्रें हैं? औरतों की क़ब्रें हैं? अथवा छोटे बच्चों की?—उन छोटे बच्चों

की, जो भूख और शीत के मारे मर गए हैं ? हाय, लड़ाई के कारण कितने कोमल बालक भूख और शीत के मारे मर गए हैं !—

वेसाइल ने पहचान लिया—तीनों क्रॉस बने हुए थे लकड़ी के—मोटे और भारी काठ के। इस रात्रि में वह लकड़ी की खोज ही में तो निकला है !—

सहसा आशातीत धन का ख़ज़ाना पा लेने पर भी उसमें हाथ डालने का जिसे साहस नहीं हो सकता, उसीकी भाँति वेसाइल भी उन तीनों क्रॉस के पास खड़ा रह गया। लकड़ी का लोभ मन में समाया था, किन्तु उन्हें छूने का भी साहस नहीं होता था और न वहाँ से हटने ही को जी चाहता था।

उसके मनमें भयानक लोभ जाग्रत हो उठा। इन्हीं में से एक क्रॉस को उखाड़कर बुझती हुई आग को क्यों न ज़िन्दा किया जाय ? मरे हुए तो आख़िर मरे हुए ही हैं। उस गहरी नींद में अपने सिर पर होनेवाली इस बात का उन्हें पता भी नहीं लगेगा। इसे भगवान् का अनुग्रह ही समझना चाहिए कि वे ऐसी गहरी नींद ले रहे हैं। नहीं तो कोई ऐसी बात की कल्पना भी कर पाता क्या ?

आगे बढ़कर उसने पहले क्रॉस पर हाथ रखा। हाथ रखते ही उसके मन में संकल्प-विकल्पों की एक बाढ़-सी आगई—नहीं, ऐसा करना तो महान् अधर्म कार्य होगा। मृत पुरुषों का तो आदर ही करना चाहिए। जीवितों की अपेक्षा भी अधिक। यह कार्य ईश्वर और मनुष्य दोनों की दृष्टि में निन्दनीय होगा। मृत पुरुष अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर सकते। वे सभी

के दयापात्र हैं। इसीलिए गिरजाघर की वेदी की भाँति मृतकों की क़ब्रों का भी आदर करना चाहिए। एक क्रॉस पर हाथ चलाना तो सर्वथा असंभव है। वह तो किसी ऐसे प्राणी की अंतिम भेंट है, जिसे इस पृथ्वी पर किसी न किसी ने हृदय से प्यार किया है!

पुनः एक बार वेसाइल के हृदय में स्वार्थ की बात समा गई। मृतक मृतक ही तो हैं। उनके कष्टों का अंत होगया। वहाँ वे लोग लकड़ी की कमी के कारण शीत में अकड़े जा रहे हैं, जो वीरता-पूर्वक अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ हैं। एक जीवित प्राणी को मरने देने की अपेक्षा तो एक क़ब्र को खोदने देना अच्छा ही है—और वह भी देश की सेवा करने वाले वीर सैनिकों की रक्षा के लिए। यदि मृतजनों के वाणी होती, तो वे इसी समय कह उठते—ले जाओ, हमारे क्रॉस ले जाओ उन सैनिकों के लिए—देश की मान-मर्यादा की रक्षा करनेवालों के लिए—शीत-पीड़ित देश के बहादुर रखवालों के लिए—आग तापने के लिये—।

विद्युत्-वेग से वेसाइल एक क्रॉस पर टूट पड़ा। अपनी सारी शक्ति लगाकर उसने क्रॉस को उखाड़ लेना चाहा। किन्तु क्रॉस अपने स्थान पर जमा था—एक वृक्ष की भाँति—किसी पवित्र स्थल की रक्षा करने वाले जीवित प्राणी की भाँति। वेसाइल का ख़ून गरम होगया। क्रॉस उखाड़ने की उस कठिनता ने उसके सुप्त बल को जाग्रत कर दिया। एक दुर्जेय शत्रु की भाँति उसे उस क्रॉस का सामना करना पड़ा।

उस निर्जन स्थल में एक अनोखा द्वंद्व आरंभ हुआ। वह युवक सैनिक लकड़ी के क्रॉस से ज़ोर कर रहा था और क्रोध के तूफ़ान की भाँति हवा चल रही थी। उस जड़ पदार्थ ने भी अपनी स्थिति को अक्षुण्ण

बनाए रखने के लिए मानुषिक प्रयास किया और वह युवक जी-जान से ज़ोर लगा रहा था, मानो उसे एक शत्रु को पछाड़ना हो।

क्रॉस को दोनों हाथों से जीवित प्राणी की भाँति कसकर पकड़कर वेसाइल उसे हिलाने-डुलाने और ऊपर उठाने का प्रयत्न कर रहा था; किन्तु वह अविचल स्मारक टस से मस नहीं होता था। बरसाती बूँदों की भाँति पसीना उसके माथे से बहने लगा। उसने टोपी उतारकर फेंक दी और बंदूक का बोझा भी दूर कर दिया। घृणा-मिश्रित भावना से वेसाइल उस द्वंद में रत था—अपनी पूरी शक्ति लगाकर।—

सहसा क्रॉस उखड़ गया—अकस्मात् ही। वेसाइल ज़मीन पर जा कर गिरा, अपने शत्रु के साथ—लकड़ी के बने हुए उस तुच्छ शत्रु के साथ।

अब भी उसकी आँखों में युद्ध का नशा था और वह थकावट मिटाने के लिए ज़ोर-ज़ोर से साँस ले रहा था। उसकी प्रत्येक साँस एक आह के समान थी, जिसे वह रोकने में असमर्थ था। हवा के झोंके आ-आकर उस पर आक्रमण कर रहे थे और जमी हुई बरफ़ के कण उसके बदन को ढकने का प्रयत्न कर रहे थे।—

चाहे जो हो, वह जीत गया था। क्रॉस उखड़ आया था। आग जलाने के लिए उसे लकड़ी मिल गई—बहुत ठीक हुआ।—

आग बुझ गई थी। राख भी ठंडी होने को आई और उसी के साथ वार्त्तालाप भी समाप्त हो गया था। पुराने कपड़ों के बण्डलों की भाँति वे बन्दी और उनके रखवाले राख के उस ढेर के चारोंओर आफ़त के मारे हुए गूँगों के समान बैठे थे। उस कष्ट-पूर्ण रात्रि में विजयी और पराजयी में कोई भेद नहीं रह गया था।

अंधकार में से समीप आती हुई किसी की पद-ध्वनि सुनाई दी। कुछ क्षण तक तो कुछ भी दिखाई नहीं दिया। फिर सहसा वेसाइल किसी भारी और काली वस्तु को अपने पीछे घसीटता हुआ आ उपस्थित हुआ।

लकड़ी ?

सैनिकों की टोली में हर्ष की लहर दौड़ गई। वेसाइल के स्वागत में जो शब्द उनके मुँह से निकले, उनमें कष्ट-निवृत्ति के हर्ष की ध्वनि स्पष्ट थी। एक साथ बहुत से सैनिक उठ-खड़े हुए और अपनी अकड़ी हुई अँगुलियों से चकमक ढूँढ़ने लगे।

वेसाइल ने एक भी शब्द नहीं कहा। वह ज़ोर-ज़ोर से साँस ले रहा था। वापस आते समय उसे लड़ते-झगड़ते आना पड़ा—ठंडी हवा और बर्फ़ीले तूफ़ान से—और उनसे भी अधिक अपनी आत्मा से। इसीलिए उसकी वाणी से एक भी शब्द नहीं निकल रहा था। अंत में उसने उस भारी क्रॉस को प्रतीक्षा से आतुर साथियों के बीच में पटक दिया।

सब से पहले स्कुट्रू ने पहचाना कि वेसाइल क्या चीज़ उठा लाया है। एक प्रकार का शाप उसकी ज़बान से निकल पड़ा—"यह क्रॉस है ?"

उसने कहा—"क्रॉस—क्रॉस ?"

दूसरे भी उस चिर-वांछित पदार्थ को, जिसे वेसाइल ले आया था, देखने के लिए आगे बढ़े। एक साथ भाँति-भाँति की बातें होने लगीं।

बन्दियों ने भी अपने नत मुख उठाकर अपनी धूमिल आँखों से उन बात करनेवालों की ओर देखा। किन्तु, वेसाइल खड़ा था मूकवत् !—थकावट के मारे वह बरफ़ पर वहीं लेट गया।

"क्रॉस ?" स्कुर्ट्ट ने कहा—"क्रॉस उठा लाने का उसने साहस ही कैसे किया ?"

"यह भी लकड़ी ही का है और हम लोग ठंड से मरे जा रहे हैं।" किसी एक ने दबी ज़बान से कहा।

"चाहे जो हो, हम एक क्रॉस को अग्नि के मुख में नहीं दे सकते—नहीं दे सकते।"

"ऐसा करना पाप होगा।"

"वज्रपात हो जायगा।"

"मृतकों का शाप लगेगा।"

"हम लोग तो ठंडे हुए जा रहे हैं, मरने वाले तो मर गए।—"

"हम लोग ठंड के मारे यहीं सदा के लिए जम जायँगे, तो इससे उन मृत आत्माओं का क्या भला होगा ?"

"शरम नहीं आती ? एक क्रॉस को जलाने का दुःसाहस कौन करेगा ?"

नाना मुनियों ने नाना मत प्रकट किए। चुप था तो वेसाइल और वे वन्दी-गण। लज्जा, घृणा, थकावट और पश्चात्ताप की भावना से वह विकल हो रहा था। वह क्या कर सकता था ? उसे और कुछ मिला भी तो नहीं।—

उसके साथियों के क्रुद्ध-स्वर आपस के वितण्डावाद में लीन हो रहे थे। लोगों के रूखे स्वरों को वह तूफ़ानी हवा और भी अधिक रूखा बना रही थी।

"मैं ऐसा हरगिज़ नहीं होने दूँगा।" क्रोधसे पंचमस्वर में स्कुट्ट ने कहा—"प्रभु ईसा के क्रॉस को जलाने देने की अपेक्षा तुम सबके साथ यहीं—इसी स्थल में, गलकर मर जाना मैं बेहतर समझूँगा।"

उस बूढ़े ने अपनी पकड़ को नहीं छोड़ा। उसने चारोंओर देखा। उस के साथियों के मुख पर कुछ विरोध के चिन्ह थे। उसके बदन पर बहुल-सी बरफ़ इकट्ठी हो गई थी। वह योंही बदसूरत था, ठंड से नीला पड़कर और भी अधिक बदसूरत दिखाई देने लगा। बार-बार पाँव ज़मीन पर पटक्कर और हाथ इधर-उधर फटकारकर वह तूफ़ान से बचने का असफल प्रयत्न करता रहा। वह ठहरा टोली का मुखिया। फुसलाकर या डरा-धमकाकर कोई उसके इस विचार में परिवर्त्तन नहीं करवा सकता था। "मर जाना भला, बरफ़ में गल जाना भला; किन्तु प्रभु ईसाके इस पवित्र चिन्ह को जलाने का पाप-कृत्य करने की कल्पना करना भी महा-भयानक है!"

कष्ट में पड़े हुए और आधे जमे हुए उन प्राणियों में फिर चुप्पी छा गई। रास्ता भूली हुई भेड़ों की भाँति वे एक दूसरे से सटकर वहीं पड़ रहे। उस ठंडी राख के चारोंओर भुजाओं की तकिया बनाकर शत्रु और शत्रु एक साथ पड़े हुये थे। विपत्ति ने दोनों के भेद भावों को मिटा दिया था। भगवान् और रात्रि के उस असहनीय अत्याचार के आगे वे सभी मनुष्य ही तो थे।

उनसे हटकर एक ओर वेसाइल भी अनेक कष्ट उठाकर जिस क्रॉस को वहाँ उठा लाया था, उसी का सिरहाना लेकर चुपचाप पड़ा था। उसकी आँखों में नींद नहीं थी। ठंड के मारे उसकी सुदृढ़ प्रकृति भी

शिथिल पड़ गई थी, तो भी वह जीवन की उस विकट समस्या पर विचार कर रहा था।

जीवन जब सादगी से, सुख से, बिताया जा सकता है, तब फिर क्यों युद्ध हो ? क्यों कष्ट उठाये जायँ ? क्यों शीत सहा जाय ? और क्यों बलि-वेदी पर सिर कटाया जाय ? क्यों स्वर्ग में एक परमात्मा—दूर बहुत दूर ? क्यों हैं ये चिह्न-निशान, वहम-विश्वास और पारस्परिक विरोध-भाव जिनका कोई अर्थ नहीं, कोई उपयोग नहीं। दो देश क्यों कटकर मरते हैं ? मृत्यु और घृणा का यह ताण्डव-नृत्य क्यों होता है ? क्यों ? किसलिये ?—

क्रुद्ध तूफ़ानी हवा चारोंओर खूँखार हो रही थी। बीच-बीच में वेसाइल अपने प्राण-हीन हाथ उठाकर आँखों पर की बरफ़ दूर कर रहा था।

ग्रीष्म के बाद शीत क्यों आता है ? और क्यों हैं ये लौटकर न आने वाली बातें ? और क्यों है उनकी चाह ? क्यों ? किसलिये ?

वेसाइल की समझ ही में नहीं आ रहा था। वह आधा उठ बैठा। रात अँधेरी क्यों है ? इसका भी कुछ अभिप्राय होगा।

ओह ! वहाँ—वहाँ तो एक क्षीण-सा प्रकाश दिखाई देता है। क्या प्रभात हो रहा है ? क्या इस भयानक दृश्य की शीघ्र ही समाप्ति होगी ?

वेसाइल नेत्र स्थिर करके सुदूर देश में दिखाई देने वाले उस प्रकाश को ध्यान से देख रहा था। क्या यह बाल-सूर्य का प्रकाश है ? ओह, यह प्रभात ही है क्या ? यह प्रकाश तो फैलता दिखाई नहीं देता। यह तो

आगे की ओर बढ़ रहा है—सचमुच चल रहा है। उसीको ओर तो चला आ रहा है।

और बाद में जब दिवस के पूरे प्रकाश में वेसाइल, अपने साथियों को रात में उसने जो कुछ देखा था उसका हाल बताने का प्रयत्न कर रहा था, तब कोई उसकी बात पर विश्वास करने को तैयार नहीं था। उस समय वे सब तो सो रहे थे और वेसाइल जाग रहा था। तो भी पुराने ज़माने के थोमास की भाँति मनुष्य कितना शंका-शील है! विश्वास करने के लिए वह उसे स्पर्श करके देख लेना चाहता है।

वेसाइल ने देखी थी एक विभूति-मय प्रतिमा—बरफ़ पर गंभीरता से पाँव उठाती हुई, अपनी ओर आती हुई। वह मूर्ति स्वयं प्रकाशमान थी। उसमें इतना तेज और इतना आकर्षण था कि वेसाइल को आश्चर्य हो रहा था कि दूसरे उससे क्यों न जाग गए?

आगे बढ़ती हुई उस विभूति के पीछे प्रकाश और तेज की एक रेखा-सी दिखाई देती थी। उन पवित्र चरणों से अंकित पथ चमत्कृत हो रहा था। क्योंकि यह था 'मनुष्य का पुत्र', जो बरफ़ पर चलकर वेसाइल की ओर आ रहा था—वह था परमात्मा का प्यारा पुत्र।

रात्रि के अंधकार में से उस तेजोमय विभूति को प्रकट होते देखकर वेसाइल अपने घुटने टेककर विनीत होगया। टोपी उतारकर उसने अपने दोनों शिथिल हाथों को भक्ति-पूर्वक जोड़ लिया।

सारी पीड़ा, सारा मानसिक संग्राम, सारे संदेहों को वह भूल गया और भूल गया उन सब बातों को, जिनसे मन भारी हो रहा था।

अब तो वह उस अज्ञात की ओर देखने में लीन था। ओह, भूले-भटके बालक के पास स्वयं भगवान् आ रहे हैं। अवर्णनीय परमानन्द से उसके तन-मन पूरित हो गये—क्योंकि वह प्रकाशमान स्वयं आ रहा था—वेसाइल—वेसाइल—की ओर, एक सैनिक की ओर—जिसने एक मृतक का 'क्रॉस' चुरा लिया था !

किन्तु, ओह, परमात्मा के उस प्यारे पुत्र के कंधे पर भी यह क्या है ? काली-सी भारी और सुविशाल।—

उसी का क्रॉस। प्रभु ईसा भी अपना क्रॉस लिये जा रहे थे। क्यों ? किसलिए ?

बरफ़ के उस सफ़ेद आँगन पर उसके पाँव इतनी सरलता से पड़ रहे थे कि क्रॉस का कोई बोझ उन कंधों पर नहीं मालूम देता था। इधर वेसाइल तो उस बोझ को अभी तक नहीं भूला था।

वह तेजोमय प्रतिमा उस जवान सैनिक के पास नहीं रुकी। वेसाइल को दैवी-दर्शन की एक झलक-सी दिखाई दी। धीरे-धीरे वह पवित्र आत्मा, उस स्थान को पारकर जहाँ वेसाइल नत-मस्तक बैठा था, सुसुप्त सैनिकों के उस गोल में पहुँच गया और वेसाइल ने देखा— अपनी आँखों से देखा—किस प्रकार परमात्मा के प्यारे पुत्र ने अपना क्रॉस उस बुझी हुई राख के ढेर पर रख दिया और किस प्रकार एक उज्ज्वल्य-मान अग्नि-शिखा उसमें से निकली और वह क्रॉस भी एक विशाल शमादान की भाँति जलने लगा।

प्रभु ईसा स्वयं अपना 'क्रॉस' ले आया था अग्नि प्रज्वलित करने

के लिये, इसलिये कि देश की रक्षा करने वाले वीर सैनिकों की शीत से रक्षा हो !

उसके पश्चात् जो कुछ वेसाइल ने देखा उसकी क्षीण-सी स्मृति ही उसे है। घुटनों के बल चलकर वह उस परम पावन अग्नि-शिखा के समीप पहुँचकर—मूर्छित अवस्था में अवशिष्ट अग्नि के समीप पड़ गया था—।

दिन का आगमन हुआ।

एक के बाद एक सोये हुये सैनिक जागने लगे। रात्रि की जो राख ठंडी पड़ी थी, उसी में जलते हुये अंगारे और उनका वह सुखकर ताप ! कितना प्रिय और जीवन-दायक था वह ताप। शीत—तो उस विगत कष्ट की प्रेतात्मा के रूप ही में रह गया था।

प्रत्येक मनुष्य उस स्वप्न के संसार से लौटकर अनुभव कर रहा था कि कोई अलौकिक घटना हो गई है। शरीर में ख़ून फिर से बहने लगा है और हृदय आनन्द से पूरित हो गया है। कोई इसका कारण नहीं जान सका। बन्दियों के उन चिंतित नेत्रों में भी आनन्द की-सी ज्योति की अद्भुत आभा दिखाई दे रही थी।

कर्कश स्वर से बुरा-भला कहते हुए, स्कुटूं ने वेसाइल को पुकारा—क्या उसने आज्ञा का भंग किया है? जब उसका मुखिया सो रहा था तब उसने 'क्रास' को जला डाला ?

नहीं तो, क्रॉस तो वहाँ पड़ा है। उसी प्रकार एक मृतक की तरह हाथ फैलाये और उसके समीप बरफ़ के आसन पर वेसाइल घुटने टेक-कर, हाथ जोड़े हुए बाल-सूर्य का दर्शन कर रहा है।

स्कुट्टू ने पूछा—"वेसाइल ! वेसाइल, उगते हुए सूर्य की ओर क्या देख रहे हो ?"

वेसाइल उसकी ओर घूमा। उसके नेत्रों में एक अद्भुत ज्योति थी। उसने कोई उत्तर नहीं दिया—और स्कुट्टू नहीं समझ सका, उस बाल-रवि के दर्शन में वेसाइल क्या दृश्य देख रहा है।

बलगेरिया : : : दिमित्र इवानॉव

कमिश्नर का क्रिसमस

"दिन ढलने के पहले ही हम लोग पहुँच जायँगे, जनाब। वह देखिए—सामने पहाड़ी की तलेटी में गाँव दिखाई देने लगा है। क्यों, दिखाई देता है न? बस, उस टीले को पार करते ही हम लोग पहुँच जायँगे।" जवान गाड़ीवान ने अपने दुर्बल घोड़ों की पीठ पर चाबुक चलाकर उन्हें ज़ोर से चलाने का उपाय किया।

कीचड़ में लथपथ उस ग्रामीण सड़क पर चार पहियों की वह गाड़ी और भी बुरी तरह दचके खाने लगी। दिसम्बर महीने की बरसात से गीले उस सुनसान और भयावह प्रदेश में गाड़ी का जर्जरित शरीर अन्य-मनस्कता से पाँव घसीटता जा रहा था।

वह गँवार फिर एक बार घोड़ों को फटकार बताकर आराम से जमकर बैठ गया। अपनी गीली टोपी का पानी निचोड़कर वह निश्चिन्त भाव से एक राग अलापने लगा।

"छोकरे, तेरा नाम क्या है ?" भेड़िये की खाल का कोट पहने एक मोटा-ताज़ा आदमी कोच में बैठा था, उसने प्रश्न किया।

छोकरा अपनी तान में मस्त था।

"ऐ छोकरे !" ऊँचे और कठोर स्वर में उसने पुकारकर कहा।

"क्या है ?" लड़के ने घूमकर पूछा।

"नाम, तेरा नाम ? तेरा नाम क्या है ?"

"ओन्द्रा।"

"ओ हो, ओन्द्रा। तुम तो बड़े होशियार हो, लड़के। तुम सभी चालाक हो गए हो। पूरे मक्कार हो तुम गाँव के छोकरो ! झूठ बोलना और मुसाफ़िरों को ठगना ही तुम्हारा धन्धा है। और देखने में कितने भले दीखते हो ! अदालत में तुम लोगों से बहुत काम पड़ा है। देखने में हो मेमने-से भोले-भाले, पर दर असल हो तुम भेड़िये के बच्चे। ओहदे-दारों से भी चालबाज़ी करते हो ?"

"हुज़ूर, हम तो सीधे-सादे गँवार हैं। नाहक़ बदनाम हो रहे हैं। आपका ग़लत खयाल है, हम लोग ऐसे बुरे नहीं हैं, जैसा आप सोचते हैं। हमारे किसान भाई ठगते हैं अज्ञानता-वश। हाय री अज्ञानता और निर्धनता !"

"अच्छा, यह बात तुम्हारी ? ग़रीबी के कारण ? बदमाश कहीं के। अज्ञानता और निर्धनता की शिकायत करते हैं और खाते-पीते हैं भरपेट !"

"तो क्या हम अपनी अमीरी से यह कष्ट भोग रहे हैं, हुज़ूर ? आवश्यकता से अधिक सुखी हैं क्या हम ? भूल है, जनाब बिल्कुल भूल ! भरपेट खाना और पीना ? हाँ, हम लोग सब पीते तो ज़रूर हैं। किस

लिए ? चिन्ता से थोड़ी देर पिंड छुड़ाने के लिए, आनन्द उपभोग के लिए नहीं। यह बात आप अपनी किताब में लिख रखिए !"

"ऊँह, तुम भी पीकर आए दीखते हो। इतनी-सी उमर में पीने लगे। अभी तो रेखें ही नहीं भीगीं। तुम्हारे किसान—लिख रखो—सबके सब गए-गुज़रे हैं।"

"आप ही लिख दें, हुज़ूर ! हम लोगों को तो लिखना भी नहीं आता।" कहकर लड़के ने अपने अस्थि-कंकालावशिष्ट घोड़ों की पीठ पर दो-चार चाबुक जड़ दिए। वह गंभीर विचार में पड़ गया।

घोड़े भी चौंक पड़े, मानो वे भी किसी विचार में पड़े थे।

मुसाफ़िर भी अपने कोट की कालर ऊँची करके उसमें छिप-सा गया। वह भी विचार-सागर में डूब गया।

सड़क के किनारे खड़े एक सूखे झाड़ पर पंख फड़फड़ाकर एक कौआ आ बैठा। एक निर्जीव टहनी को हिलाकर उदासी से काँव-काँव करके वह भी जुगाली करने लगा। शीतकाल की वह ठंडी मनहूस हवा मानो दूसरे दिन आने वाले उदास क्रिसमस का अपशकुन उपस्थित कर रही थी। ऊपर नील नभ के नीचे तूफ़ानी बादलों का एक मोटा आवरण छाया हुआ था। भूमि कीचड़ और नमी से तर हो रही थी। उनकी आँखों के आगे ग्राम का वृक्षाच्छादित पथ, सुदूर प्रदेश का जङ्गल, नदी-नाले और पर्वत-माला जीवन-रहित और अपरूप होकर अन्धकार में विलीन होते हुए दिखाई दिए। मैदान में इधर-उधर पानी के खड्डे भरे हुए थे—शव की आँखों की भाँति धुँधले, ठंडे और चिकने !

उस मुलायम कीचड़ में गिरती-पड़ती, फिसलती वह गाड़ी आगे की ओर सरकती जा रही थी। गाड़ी पर लगे हुए एक तख़्ते की मनहूस, उदास और निर्जीव निरन्तर ध्वनि ऊनी कोट में लिपटे बैठे उन विशालकाय महाशय के कर्ण-कुहरों पर निर्दय प्रहार कर रही थी। आख़िर, धैर्य छोड़कर, कॉलर खोलकर अपना मोटा चेहरा बाहर निकालकर वह चिल्लाकर बोला—"कैसी है यह मनहूस खड़खड़ाहट? चूल्हे में जाय—"

"हुज़ूर, एक तख़्ता ढीला हो गया है। यह तो एक पढ़े-लिखे की भाँति प्रवचन कर रहा है। आप इसकी खड़खड़ाहट की क्या परवा करते हैं?"

"ओन्द्रा, तुम हो तो बड़े चालाक—चंट। जवान छोकरियों को ख़ूब फँसाना जानते होगे। मुझे सब मालूम है। तुम लोग छोटी अवस्था में विवाह कर लेते हो और एक से एक सुन्दर औरतों को फँसाए रखते हो।"

अपने इस परिहास पर हँसकर, कोट की कालर उठाकर, वह भीतर की ओर होगया।

"क्यों जनाब, किस पर आँख है? क्यों विवाहिता स्त्रियाँ ही अधिक लुभावनी होती हैं? मुझे सब मालूम है। क्यों हुज़ूर, आपको हमारे गाँव में क्या काम है?"

"मैं हूँ अदालत का कमिश्नर।"

ओन्द्रा ने घूमकर अपने मुसाफ़िर को घूरकर देखा।

"सरकारी काम के लिए?"

"और क्या ? तुम्हारे एक आदमी ने मेरे साथ चालाकी करने का उपाय किया था; किन्तु इस बार मैं उसे दुरुस्त कर दूँगा। एक सरकारी अख़बार मेरे हाथ में है। बदमाश की उसमें ख़बर लूँगा। मुझे पता लग गया है कि वह हम लोगों को धोखा दिया करता है। आज ही शाम को उसकी तलाशी लूँगा। वह भी मुझे और इस क्रिसमस को जन्म भर नहीं भूलेगा। उसके अनाज का एक दाना-दाना कुर्क करवा दूँगा—उसी को दो हाथ दिखाने के लिए नहीं; पर ऐसे सभी बदमाशों को पाठ पढ़ा देने के लिए, जो सरकारी अफ़सरों को मूर्ख बनाने से बाज़ नहीं आते। तुम व्यापारियों को ठगते हो, शहर वालों को ठगते हो, उन्हें सड़े अण्डे और बदबूदार मक्खन बेंच आते हो। ठहर रे किसान के पिल्ले! अदालत को तुम धोखा नहीं दे सकते। तुम्हें दण्ड देने की तरकीब हमें मालूम है। तुम्हारे लिए तो चाहिए कोड़ा—एक मोटा-सा रूसी बेंत। तुम्हें पाठ पढ़ाने की यही एक तरकीब है। तुम सब हो गये हो पक्के शराबी, नीच बिगड़े हुए जीव। अपना लगान बराबर नहीं चुकाते, राज्य को नुक़सान पहुँचाते हो। हमारे देश के हित में हानि पहुँच रही है। अच्छा होता, मैं दो दिन के लिए भी 'ज़ार' बन जाता और तुम सब को ठीक कर देता। तुम सब को दानव से देवता बना देता। हाँ, देवता जनाब ! देवता। हाय रे, मैं ज़ार नहीं हुआ।"

अदालती कमिश्नर साहब ने कोट के बटन खोल दिए। ऐसा मालूम दिया, मानो बच्चा अण्डा फोड़कर बाहर निकल रहा हो।

"ओह, पर कमिश्नर साहब, आपको मालूम है, भगवान ने इस सृष्टि की रचना की है। उसे स्त्रियों को दाढ़ी-मूँछ की ज़रूरत नहीं दिखाई दी।

उसने उन्हें दाढ़ी-मूँछ नहीं दी। उसे यह ठीक मालूम दिया कि गदहे को लम्बे कानों की ज़रूरत है। उसने प्रत्येक गदहे को लम्बकर्ण बना दिया।" ओन्द्रा ने बनावटी सादगी से कहा।

"बकवाद रहने दे। रास्ता काटने की ओर ध्यान दे। दिन छिपने ही वाला है। मुझे मेरे परिवार के साथ क्रिसमस मनाने के लिए समय पर पहुँचना ज़रूरी है। भाड़ा भी छोकरे, तूने कसकर लिया है—बीस किलोमीटर के तीन 'त्यू'! खूब लूटता है। जल्दी कर, सरपट हाँक, नहीं तो तेरे ये मरियल टट्टू यहीं ऊँघने लग जायँगे।

"वी—ई—वो! वी—महाशयो!" ओन्द्रा ने अपना कोड़ा हवा में फटकारकर पुकारा।

"महाशयो, तू इन टट्टुओं को महाशय कहता है? भाई कहता तो एक बात थी।" क्रोधित होकर कमिश्नर साहब ने आलोचना की।

"कमिश्नर साहब! उन्हें बुरा मालूम होगा। उन्हें 'महाशय' कहकर नहीं पुकारूँगा तो उनका अपमान होगा। क्यों, वे क्या भलेमानुस नहीं हैं? उनकी चाकरी भी तो सरकारी चाकरी से कम नहीं है। निश्चित समय पर ये दौड़ते हैं। सबेरे से उठते हैं। ठीक समय पर हम इन्हें खिलाते-पिलाते हैं। और जब अपने साज-सामान से लैस हो जाते हैं तब—ऐसा ही समझिए—वे आफ़िस जाते हैं और वहाँ शाम तक खटते रहते हैं। ठीक समय पर उन्हें खाने-पीने को और रात को समाचार पढ़ते ही सोने को मिलता है। ठीक अफ़सरों की-सी दिनचर्या है जनाब, इनको!"

"कहाँ से पी आया तू इतनी? बक-झक तो रहने दे, आगे की ओर देख। देरी हुई जाती है। तू तो बड़ा कपटी है रे छोकरे!"

"जनाब, कमिश्नर साहब, डरिए नहीं। यहाँ आस-पास जंगली जानवर नहीं हैं।" गाड़ीवान ने यह बात ऐसे ढंग से कही कि अदालत का वह माननीय ओहदेदार भय-युक्त दृष्टि से अपने चारोंओर देखने लगा।

"मुझे जंगली जानवरों का लेशमात्र भी भय नहीं है। मुझे भय है शीत का। कहीं सरदी लग गई, तो उससे पिण्ड छुड़ाना मुश्किल हो जायगा।"

कुछ देर तक दोनों मौन रहे।

"आप सरकारी काम पर जा रहे हैं न? अब की बार किसकी शामत है?" ओन्द्रा ने गंभीर भाव से मुसाफ़िर की ओर देखकर कहा।

उत्तर देने के पहले कुछ देर रुककर कमिश्नर ने कहा—"तुझे नहीं मालूम? वही ठिगने क़द और मोटी गरदनवाला स्टेनोको।"

"हाँ, जानता तो हूँ। अच्छा, आप उसी का अनाज कुर्क करेंगे? क्यों? बेचारा ग़रीब आदमी है। इस बार माफ़ कर दें। और यह क्रिसमस का मौक़ा है।"

"ग़रीब आदमी? हूँ, पक्का बदमाश!" इतना कहकर कमिश्नर चुप हो गया। अँधेरा फैलता जा रहा था। पहाड़ी के उस ओर गाँव था। घोड़े बड़ी कठिनाई से पहाड़ी पर चढ़ रहे थे। ओन्द्रा न उन्हें छेड़ता था, न अपनी चाबुक ही उठाता था। उसने बातचीत भी बंद कर दी, गीत भी उसके मुँह से नहीं निकले। वह चुपचाप किसी चिन्ता में निमग्न हो गया।

पहाड़ की चोटी पर पहुँचकर जब वे नीचे उतरने लगे, उसी समय रात हो गई। गाँव के कोई चिह्न दिखाई नहीं देते थे। कीचड़ से लथपथ

उस प्रदेश में सुई के समान चुभने वाली ठंडी हवा चल रही थी। बिखरे हुए बादल पहाड़ की ओर चढ़े चले आरहे थे। तूफ़ानी बादल फट गए थे। और नीला आकाश फिर दिखाई देने लगा। शीघ्र ही उस नील नभ के वक्षस्थल पर ठंडे और चमकते हुए तारे प्रकट हुए। हवा भयानक रूप से ठंडी हो रही थी। घोड़े चींटी की चाल चल रहे थे।

"लगा दो-चार कोड़े। हरामी, देखता क्या है? आज ठंड में जम जाने का इरादा है क्या?" विचलित होकर कमिश्नर साहब ने चिल्ला कर कहा।

ओन्द्रा ने अनमने भाव से घोड़ों को दो-चार बातें सुनाकर कोड़ा यों ही हवा में फटकार दिया। घोड़े उसी प्रकार लापरवाई से पाँव घसीटकर चल रहे थे। उनकी गति में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ—मानो उन्होंने कुछ सुना ही नहीं।

ओन्द्रा का ध्यान था ग़रीब स्टेनोको की ओर, जिसका अनाज-पात कमिश्नर सबेरे ही ज़ब्त कर लेगा।

"इस दुर्भाग्य को तुम्हीं ले आए, ओन्द्रा!" स्टेनोको उसे कहेगा। अपनी इस विपदा पर वह रोने लगेगा। हाँ, फूट-फूटकर रोने लगेगा। उसका हृदय बहुत कोमल है। ओन्द्रा उसे भली भाँति जानता है।

उस ग़रीब की सहायता करनी होगी, उसे आज ही रात को ख़बर कर देनी चाहिए, जिससे वह अपने खलियान को बुहार-भाड़कर साफ़ कर दे। नहीं तो फिर पूरे बारह महीने पेट की ज्वाला से युद्ध करने में बिताने पड़ेंगे। ज़रूर कुछ न कुछ उपाय करना ही चाहिए।

कुछ भी पहचान में नहीं आ रहा था। इधर-उधर सब जगह कीचड़ ही कीचड़ हो रहा था। सड़क भी कीचड़ में लापता हो गई थी। वे गहरे कीचड़ में धँसे जारहे थे।

ओन्द्रा ने रास खींचकर घोड़ों को खड़ा कर दिया।

"कमिश्नर साहब, मैं तो रास्ता भूल गया दीखता हूँ।" कहकर वह अंधकार में आँखें फाड़कर देखने लगा।

कमिश्नर ने गाड़ीवान की ओर घूरकर देखा, किन्तु उसके चेहरे पर दुष्टता का कोई चिह्न दिखाई नहीं दिया।

"लड़के, होश सँभाल। पीछे मुझे दोष नहीं देना। ठोंकते-ठोंकते बुद्धि ठिकाने ला दूँगा।

ओन्द्रा ने रास फटकारकर, थोड़ा घुमाकर चिल्लाकर कहा—"मज़बूती से बैठे रहिएगा हुज़ूर!" बहुत दूर पर एक जगह गाँव के दीपकों का प्रकाश दिखाई दिया। बहुत दूर से कुत्तों के भूँकने की आवाज़ भी उनके कानों में पड़ने लगी। दाहिनी ओर कुछ ही क़दम पर एक निर्मल और शांत जल का ताल चमक रहा था। घोड़े गाड़ी को उसी ओर ले भागे।

"यह क्या, यह क्या?" कमिश्नर ने पूछा।

"दलदल है, हुज़ूर दलदल। इसी में होकर गाँव का रास्ता है। घबड़ाइए नहीं, यह गहरा नहीं है। बीच-बीच में दो-चार गड्ढे हैं, बस। मैं बहुत बार इधर होकर आया हूँ। हाँ, मज़बूती से रहिएगा कमिश्नर साहब। वी—ई—वी—।

तारों से भरे हुए आसमान का प्रतिबिम्ब उस ठंडे जल में पड़ रहा था, घोड़े उसी में घुस गए। ज्यों-ज्यों दलदल बढ़ता जाता था, त्यों-त्यों

घोड़े सावधानी से क़दम बढ़ाते जाते थे। मोती के समान उस निर्मल और स्थिर जल में आन्दोलन मच गया।

"अरे गदहे ठहर!" भयभीत होकर कमिश्नर ने अपना कोट कसकर लपेटते हुए चिल्लाकर कहा—"अरे दुष्ट, मुझे यहीं डुबायेगा क्या? देखता नहीं, गाड़ी में पानी भरा जा रहा है। ठहर, ठहर!"

ओन्द्रा ठहर गया। गाड़ी पानी में आधी डूबकर फँस गई दलदल में। अभेद्य अंधकार में पानी का किनारा भी नहीं दिखाई देता था।

ओन्द्रा ने घोड़ों को ज़ोर से छेड़ते हुए पुकारा—"बढ़ो, चलो—।" उसकी तेज़ आवाज़ रात्रि के अंधकार में गूँज उठी। पास ही में दो-चार बतक चौंककर अँधेरे में एक ओर उड़ गए।

"ओहो, हमें भी दलदल की मुर्गी बनकर बाहर निकलना होगा।" ओन्द्रा ने विचार-पूर्वक कहा—"नहीं तो—"

"दुष्ट कहीं का! इस दलदल से बाहर तो निकलने दे। तेरी हड्डियों का चूरा नहीं बनाया तो क्या किया? यहाँ तो बेमौत मरना होगा, गदहे!"

"नहीं, जनाब! इसमें डूबने-मरने को कौन-सी बात है। इस भयानक अँधेरे में कोई भी रास्ता भूल सकता है। ज़रा शांति रहिए, सब ठीक हो जायगा।" कहकर ओन्द्रा दलदल की जाँच करने लगा। घोड़ों के तंग और जुआ कभी खोलकर, कभी कसकर, ज़ोर-ज़ोर से हल्ला मचाकर वह अपनी जगह पर जा बैठा। रास खींचकर घोड़ों को चलाते ही घोड़े आगे की ओर बढ़े। सहसा उनमें से एक जूए में से निकलकर दलदल में फिसल गया। दूसरा घोड़ा गाड़ी लिए खड़ा रहा।

"क्यों, इस बार क्या हुआ ?" कमिश्नर ने चिल्लाकर पूछा।

ओन्द्रा ने गिरे हुए घोड़े को पुचकारते हुए कहा—"डोरचा, ठहर डोरचा।"

किन्तु, पानी से चिपका हुआ घोड़ा ठहरने के बदले किनारे की ओर भाग निकला। देखते-देखते वह आँखों से ओझल हो गया। कमिश्नर गाड़ी में खड़ा होगया। उसके मुख पर भय की कालिमा छागई।

उसी समय ओन्द्रा दूसरे घोड़े की पीठ पर कूदकर डोरचा के पीछे यह कहता हुआ हो लिया—"डोरचा, डोरचा, ठहर—लौट आ, डोरचा!"

"तू कहाँ जा रहा है लड़के? ठहर। यह क्या करता है? बदमाश, किसान के छोकरे! खाल खिँचवा लूँगा।"

उस अंधकार में उत्तर में केवल एक हँसी सुनाई दी।

"अरे, जानवर! अब समझा तेरी चालाकी। तू मुझे यहाँ छोड़कर जा रहा है—जंगली जानवरों के मुँह में मेरी जान देने के लिए? देखो, ऐसा मत करो। मेरी विनती सुनो।" कमिश्नर ने कम्पित स्वर में प्रार्थना की।

"डरो मत, कमिश्नर साहब! डरो मत।" ओन्द्रा की बोली सुनाई दी—"यहाँ इस दलदल में जंगली जानवर हैं ही नहीं। ज़रा कपड़ा ठीक से पहन लो, जिससे सरदी का बचाव हो जाय। कल सबेरे ही—सूरज निकलते ही—मैं आऊँगा। गाड़ी में थोड़ी सूखी घास रखी है उसी का बिछौना बना लेना। रात भर गाड़ी में रहने का भाड़ा मैं आप से नहीं माँगूँगा, हुज़ूर!"

"लड़के ! मज़ाक़ मत कर," कमिश्नर ने विनय-पूर्वक कहा—"मुझे यों छोड़ मत। वापस आ, इस दलदल से बाहर निकाल।"

"जनाब, बहुत अधिक अँधेरा होगया है। कुछ भी तो नहीं दीखता। एक घोड़ा भी भाग गया है। क्या उपाय करूँ?"

अंधकार में से उड़कर आती हुई इस परिहास-पूर्ण बात को सुनकर कमिश्नर भावी कष्ट की कल्पना से, उस भयानक दलदल के बीच एकाकी खड़ा होकर रो पड़ा।

"ओन्द्रा, आ—मेहरबानी करके आ। तेरी मरज़ी आवे, सो किराया ले लेना। ख़ुश कर दूँगा तुझे, लड़के! देख, इस भयानक विपत्ति में मदद कर। यहाँ तो मैं मर जाऊँगा। मेरे भी बाल-बच्चे हैं। वे मेरी प्रतीक्षा में होंगे। क्रिसमस का दिन है। क्या तू इतना हृदय-हीन है?" निराशा से उसकी वाणी लड़खड़ाने लगी। उसने कान लगाकर सुना, कोई उत्तर नहीं मिला। उसके होश उड़ गए। उस शून्य और मूक अन्धकार में वह चिल्लाने लगा :—"अरे दुष्ट जानवर, कुत्ते, गदहे, आ, वापस आ। मुझे इस नरक से बाहर निकाल। दया कर भाई, दया कर। हाय रे मेरे बच्चो! क्रिसमस! दुष्ट छोकरे, बुरा हो तेरा।"

गाड़ी में पड़कर अपने ऊनी कोट को लपेटकर वह बालक की तरह फूट-फूटकर रोने लगा।

किन्तु, उस अँधेरी रात ने कोई उत्तर नहीं दिया।

यिद्दी : : : शॉलम ऐश

परित्यक्त

आँख खोलते ही ब्युरी कुलोक ने सुना—बच्चा रो रहा है। पड़े ही पड़े उसने अपनी स्त्री को पुकारकर कहा—"गोल्डा! यह पिल्ला रो रहा है न?"

गोल्डा ने उत्तर नहीं दिया। उसने चारोंओर देखा। वह घर में नहीं है। उसे आश्चर्य हुआ, किन्तु उसने सोचा—नहाने-धोने के लिए गई होगी। बालक को रोने से थामने के लिए उसने उसके मुँह में एक कपड़ा ठूँस दिया। उठकर वह कपड़े पहनने में लग गया।

कपड़े पहनते समय वह सोच रहा था कि उस चाँदी के शमादान का क्या दाम आ जायगा, जिसे वह फ़ोव्लीनर-गृह से उठा लाया था। भावावेश में वह 'अपनी चीज़ों' को देखने के लिए ऊपर चढ़ गया। वहाँ तो कुछ भी नहीं था। इधर-उधर सब जगह खोज डाला—सब साफ़।

जल्दी से नीचे उतरकर वह उस जगह गया, जहाँ उसकी स्त्री की चीज़ें रखी थीं। उनके ऊपर का कपड़ा उसने फाड़ डाला। उसकी चीज़ें भी ग़ायब थीं।—अब उसे मालूम होने लगा कि वह कहीं भाग तो नहीं गई है।

किसके साथ?

रलोइमा ल्लोसर के साथ?—अथवा हेइमिल गूब के साथ?—

"अच्छा—भाग जाने दो,—चूल्हे में जाय!—किसको परवा है उसकी?" दिवाल पर थूकते हुए उसने नक़ली लापरवाई दिखाते हुए स्वयं कहा—"ख़ूब रहा। क्यों जनाब, मिज़ाज ख़ुश?—ह-ह-ह-ह—"

उसने बालक की ओर घूरकर देखा।

"पर इस पिल्ले का क्या हो?" उसने विचार करते हुए कहा—"मुझे मालूम होजाय कि वह कहाँ है, तो मैं इसे उसके दरवाज़े पर पटक आऊँगा—लेजा—यह तेरा है!"

एक दुर्भावना से उसका मस्तिष्क चौंधिया गया। चेहरा सफ़ेद होगया। होठ उसने दाँतों-तले दबा लिया। उसके हाथ काँपने लगे। वह बच्चे के पास गया। वह पड़ा था नंग-धड़ंग। फटे-पुराने कम्बल का टुकड़ा भी दूर पड़ा था। हाथ मुँह में ठूँसकर वह शून्य की ओर देखता हुआ मुस्करा रहा था।—उसके रूप-रंग से उसे किसी की याद आगई, क्या उससे पुराना परिचय है?—ठीक-ठीक याद नहीं आता।—

बालक के आगे से हटकर, वह जल्दी से टोपी पहनकर, घर में ताला लगाकर, बाहर चल दिया। वह बिना विचारे निरुद्देश चला जा

रहा था। उसके मन की शांति भंग होगई थी।—बालक का रोदन उसके कानों में गूँज रहा था, मानो वह उसे पुकार-पुकारकर बुला रहा हो। वह अपनी भीतरी आँखों से बालक को अपने नन्हे-नन्हे हाथ-पाँव हिलाकर फूट-फूटकर रोते हुए देख रहा था। नहीं, उसे लौट ही चलना चाहिए।—"ओह, मैं एक बार भी उसे देख पाता!" दाँत पीसकर उसने कहा—"मैं उसका यहीं गला घोंट देता—दम घुट जाता और जीभ बाहर निकल पड़ती। बुरा हो उसका।"

एक दुकान से कुछ रोटी खरीदकर वह घर लौट आया। बालक उसी प्रकार नंग-धड़ंग पड़ा था। हँसी उसके होठों पर खेल रही थी।

"तुम्हें भी वह डाकिन क्यों न लेगई? बड़े आराम में मालूम देता है, बदमाश पिल्ला!" वह फिर घर छोड़कर चल दिया। उसके दिमाग़ में बस एक ही बात चक्कर लगा रही थी—बच्चा रो रहा है। इस बात की कल्पना से उसके हृदय में एक वेदना सी हो रही थी।

मुट्ठियाँ बाँधकर वह फिर घर आया। अबकी बार बालक ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा था—"माँ-माँ-माँ-माँ-माँ—माँ—!"

"तेरी माँ? ऊँह, जा खोज ले अपनी प्यारी माँ को!—

"उसे महामारी नहीं खा गई?"

उसने बच्चे को गोद में लेलिया। अपने छोटे-छोटे होठों से वह उत्सुकता-पूर्वक किसी चीज़ की प्रतीक्षा करने लगा।

"जहन्नुम में जाय वह", बच्चे को थपथपाते हुए उसने कहा—"चुप रहो, स्लोइमेल—बस, अब चुप रहो—और मत चिल्लाओ।"

बच्चा अपने होठों से किसी चीज़ को ढूँढ़ता रहा, हाथ हिलाता रहा,

गर्दन हिला-हिलाकर मानो कुछ कहना चाहता था। उसे छाती से लगा-कर वह दूध की चिंता में पड़ा। चूल्हे पर थोड़ा-सा दूध मिल गया। रोटी दूध में चूरकर बच्चे को चम्मच से खिलाते हुए वह उससे मीठी-मीठी बातें करता जाता था।—"खा लो, बेटे! खा लो—तेरी माँ—भाड़ में जाय वह—मुझे छोड़कर चल दी है।—एक कुतिया भी अपने पिल्ले को यों नहीं छोड़ जाती।—उसने मुझे अनाथ कर दिया है।—वह कुतिया से भी गई बीती है। रो मत बेटे, रो मत, मैं तुझे अनाथ नहीं होने दूँगा। मेरा कहना मानो, मेरा विश्वास करो।—

बालक जब चुप होगया तो उसे एक कपड़े में लपेटकर वह बाहर सड़क पर आ गया।

बाज़ार में उसके पहुँचते ही एक हलचल मच गई। बालक के साथ ब्युरी कुलोक!—अपनी ऊँची जगह से क्रेडनिक ने पुकारकर पूछा—"आहा, कुलोक, यह कच्चा-बच्चा कहाँ से पा गए?,'

क्रेडनिक की स्त्री ने, जल्दी से नीचे उतरकर, बालक की ओर हाथ बढ़ा दिए। आनन्द में मग्न होकर वह अपने आँचल से बार-बार अपने माथे का पसीना पोंछने लगी। हँस-हँसकर वह उस छोटे से शिशु को लोरी देने लगी।

कुलोक यह तुम्हारा है?—ओह, मुझे तो पता ही नहीं था।—इसकी आँखों की ओर तो देखो—क्या ठीक मरीना का-सा रूप-रंग है?—नाक तो बिल्कुल वैसीही। कैसा है यह लाल!—लाओ मुझे दो—।" बच्चे को गोद में लेकर वह उसे प्यार से उछालने लगी।

दस्यु-दल का 'प्रधान' बूढ़ा क्रेडनिक भी धीरे से उठकर बालक के समीप आगया। उसे देख-भालकर उसने कुलोक की पीठ ठोंकी।

"बच्चा तो बड़ा चंचल मालूम देता है। यह तो बड़े-बड़े परकोटों पर फुर्ती से चढ़ जायगा। क्या खूब!—इसकी माँ कौन है?"

"जहन्नुम में गई इसकी माँ!—चाँदी के शमादान लेकर वह तो न जाने कहाँ भाग गई।"

"और तुम्हारे लिए यह छोकरा छोड़ गई?"

"हाँ।"

"बहुत बुरा किया उसने—बहुत बुरा।"

"बूढ़ा अपना सिर खुजलाने लगा। छोटे क्रेडनिक ने समीप आकर कुलोक को कहा—"खूब रहा—'पेशे' को तो मारो लात और बच्चे को पालो-पोसो। तुम्हारे साथ तो उस औरत ने ख़ूब चालाकी की!"

"मेरे मामले में तुम्हें माथा-पच्ची करने से मतलब?—सब का पालने वाला एक ईश्वर है। कुलोक तो कुलोक ही रहेगा।"

बालक को गोद में लेकर वह शहर को चीरता हुआ एक ओर निकल गया। सारे रास्ते उसे ऐसा मालूम हुआ कि लोग उसकी ओर अँगुली उठा-उठाकर उसका उपहास कर रहे हैं।

नगर के बाहर जंगल में पहुँचकर वह एक शिला-खण्ड पर बैठ गया।

बालक को अपने समीप सुलाकर ब्युरी उसकी ओर कटु और ईर्षालु दृष्टि से देखने लगा। बालक अपने अँगूठे को चूसता हुआ चुपचाप उस की ओर देख रहा था, मानो किसी गंभीर विचार में निमग्न हो। कुलोक की समझ ही में नहीं आरहा था कि इस बालक का क्या किया

ाय ? एक क्षण के लिए तो उसके ध्यान में आया कि उसका परित्याग रदे। किन्तु दूसरे ही क्षण अपने ही रक्त से निर्मित उस निरीह प्राणी के ्रति दया के भाव ने उस विचार को निकाल बाहर किया। बालक को पुः गोद में लेकर, उसके सुकुमार तन को अपनी छाती से लगाकर, उसने ालक की शकल-सूरत को बड़े ध्यान से देखा। उसे उसमें अपना ही तिबिम्ब दिखाई दिया। इस विचार से उसका अंग-प्रत्यंग पुलकित हो ठा।

"छोटे कुलोक !" उसने शिशु को सुनाकर कहा—"हाँ, तुम छोटे कुलोक ही हो। बहुत ठीक। तुम बड़े होशियार होगे बेटा, ज़रूर। ऊँची दीवारों पर, हवादानों, अटारियों की खिड़कियों में चढ़ जाना तो तुम्हारे लिए बाएँ हाथ का खेल होगा। ताले तोड़ लेना, बछड़ों का चमड़ा चुरा ाना।—और तुम्हारे भी तो बाल-बच्चे होंगे—और उनकी माँ उन्हें निराधार छोड़कर भाग जायगी ?—पर, क्या तुम भी उन्हें गोद में लटकाए द्वार-द्वार पर रोटी का टुकड़ा माँगते भटकोगे ?—कौन हो तुम ?—कुलोक, मेरी तरह—तुम—मैं ?"

नदी तट पर, कोमल सिकता-समूह पर, बालक को छोड़कर वह यह ेखने के लिये एक वृक्ष की ओट में होगया कि देखें वह क्या करता है ? ालक हाथ-पाँव हिलाकर, अपना अँगूठा चूसते हुए, ठुनकता हुआ बोल रहा था—"माँ-म-माँ—माँ-म-मा-आँ—"

वह और भी दूर के एक वृक्ष की ओट में चला गया। वहाँ भी उसका रोदन सुनाई दे रहा था। इसी प्रकार एक के बाद एक वृक्ष के पीछे छिपता हुआ वह दूर निकल गया। वहाँ से न कुछ सुनाई देता था और न

कुछ दीखता था।—अब वह भागा। भागते समय भी बालक का करुण रोदन उसके कानों में गूँज रहा था। अकस्मात् उसके ध्यान में आया—"वह नदी की भीषण धारा में डुबकियाँ खा रहा होगा!"—उसका सिर घूमने लगा। हृदय में एक पीड़ा उठ खड़ी हुई।—किन्तु, वह भागता ही चला गया।

सहसा वह ठहर गया। चारों ओर देखकर पीछे की ओर लौट पड़ा

उसने देखा—बच्चा ज़ोर-ज़ोर से रो रहा है। उसने उसे गोद में उठा लिया। जंगल की बाहरी सीमा पर बनी हुई झोपड़ियों के द्वार-द्वार पर वह अपने अस्फुट स्वर से भीख माँगने के लिए चला—"इस अनाथ को कोई एक घूँट दूध पिला दे—इस अनाथ को कोई एक घूँट दूध पिला दे—"